गर्ग संहिता

Garg Samhita (Sanskrit & Hindi)

Part 2 of 5

३ गिरिराज खण्ड ४ माधुर्य खण्ड



Hindi Translation: Pandey Ram Tej Shastri

संशोधन और परिवर्धन: डा० सुरेन्द्र वर्मा

।। श्रीः ।।

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

यदुकुलगुरु श्रीगर्गमहामुनिविरचिता

श्रीगर्गसंहिता

(श्रीगर्गमहामुनिका आँखोंदेखा सम्पूर्ण श्रीकृष्णचरित्र)

पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतया 'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता

Part 2 of 5

३ गिरिराज खण्ड ४ माधुर्य खण्ड

(दशखण्डात्मिका)

Improved upload by removal of dark shadows, page alignment etc.

(Dr. S. K. Verma)

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

* श्रीकृष्णः शरणं मम *

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता

(गिरिराजखण्डः ३)

अथ प्रथमोऽध्यायः

(श्रीकृष्णके द्वारा गोवर्धनपूजनका प्रस्ताव और उसकी विधिका वर्णन)

बहुलाश्व उवाच

कथं दधार भगवान् गिरिं गोवर्द्धनं वरम्। उच्छिलींध्रं यथा बालो हस्तेनैकेन लीलया ॥ १ ॥
परिपूर्णतमस्यास्य श्रीकृष्णस्य महात्मनः। वदैतच्चरितं दिव्यमद्भुतं मुनिसत्तम ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

वार्षिकं हि करं राज्ञे यथा शक्राय वै तथा। बलिं ददुः प्रावृडंते गोपाः सर्वे कृषीवलाः ॥ ३ ॥
महेन्द्रयागसंभारचयं दृष्ट्वैकदा हरिः। नन्दं पप्रच्छ सदसि वल्लभानां च शृण्वताम् ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

शक्रस्य पूजनं ह्येतत्किं फलं चास्य विद्यते। लौकिकं वा वदन्त्येतदथवा पारलौकिकम् ॥ ५ ॥

श्रीनन्द उवाच

शक्रस्य पूजनं ह्येतद्भुक्तिमुक्तिकरं परम्। एतद्विना नरो भूमौ जायते न सुखी क्वचित् ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच

शक्रादयो देवगणाश्च सर्वतो भुंजन्ति ये स्वर्गसुखं स्वकर्मभिः।
विशन्ति ते मर्त्यपदं शुभक्षये तत्सेवनं विद्धि न मुक्तिकारणम् ॥ ७ ॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—हे देवर्षे! जैसे बालक खेलही-खेलमें गोबर-छत्तेको उखाड़कर हाथमें ले लेता है, उसी प्रकार भगवान्‌ने एक ही हाथसे महान् पर्वत गोवर्धनको लीलापूर्वक उठाकर छत्रकी भाँति धारण कर लिया था—ऐसी बात सुनी जाती है। सो यह प्रसङ्ग कैसे आया? हे मुनिसत्तम! उन परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके उसी दिव्य अद्भुत चरित्रका आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन्! जैसे खेती करनेवाले किसान राजाको वार्षिक कर देते हैं, उसी प्रकार समस्त गोप प्रतिवर्ष शरदृतुमें देवराज इन्द्रके लिये बलि (पूजा और भोग) अर्पित करते थे ॥ ३ ॥ एक समय श्रीहरिने महेन्द्रयागके लिये सामग्रीका संचय होता देख गोपसभामें नन्दजीसे प्रश्न किया। उनके उस प्रश्नको अन्यान्य गोप भी सुन रहे थे ॥ ४ ॥ श्रीभगवान् बोले—यह जो इन्द्रकी पूजा की जाती है, इसका क्या फल है? विद्वान् लोग इसका कोई लौकिक फल बताते हैं या पारलौकिक? ॥ ५ ॥ श्रीनन्दने कहा—हे श्यामसुन्दर! देवराज इन्द्रका यह पूजन भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला परम उत्तम साधन है। भूतलपर इसके बिना मनुष्य कहीं और कभी सुखी नहीं हो सकता ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले—पिताजी! इन्द्र आदि देवता अपने

भयं भवेद्वै परमेष्ठिने यतो वार्ता तु का कौ किल तत्कृतात्मनाम् ।
तस्मात्परं कालमनंतमेव हि सर्वं बलिष्ठं सुबुधा विदुः परे ॥ ८ ॥
ततस्तमाश्रित्य सुकर्मभिः परं भजेद्धरिं यज्ञपतिं सुरेश्वरम् ।
विसृज्य सर्वं मनसा कृतेः फलं व्रजेत्परं मोक्षमसौ न चान्यथा ॥ ९ ॥
गोविप्रसाध्वग्निसुराः श्रुतिस्तथा धर्मश्च यज्ञाधिपतेर्विभूतयः ।
धिष्ण्येषु चैतेषु हरिं भजन्ति ये सदा त्विहामुत्र सुखं व्रजन्ति ते ॥१०॥
समुत्थितोऽसौ हरिवक्षसो गिरिर्गोवर्धनो नाम गिरीन्द्रराजराट् ।
समागतो ह्यत्र पुलस्त्यतेजसा यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते ॥११॥
सम्पूज्य गोविप्रसुरान्महाद्रये दातव्यमद्यैव परं ह्युपायनम् ।
एष प्रियो मे मखराज एव हि न चेद्यथेच्छास्ति तथा कुरु व्रज ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

तेषां मध्येऽथ सन्नंदो गोपो वृद्धोऽतिनीतिवित् । अतिप्रसन्नः श्रीकृष्णमाह नन्दस्य शृण्वतः ॥१३॥

श्रीनन्द उवाच

हे नन्दसूनो हे तात त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः । कर्तव्या केन विधिना पूजाऽद्रेर्वद तत्त्वतः ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

आलिप्य गोमयेनापि गिरिराजभुवं ह्यधः । धृत्वाऽथ सर्वसम्भारं भक्तियुक्तो जितेन्द्रियः ॥१५॥
सहस्रशीर्षामंत्रेणाद्रये स्नानं च कारयेत् । गंगाजलेन यमुनाजलेनापि द्विजैः सह ॥१६॥
शुक्लगोदुग्धधाराभिस्ततः पञ्चामृतैर्गिरिम् । स्नापयित्वा गन्धपुष्पैः पुनः कृष्णाजलेन वै ॥१७॥

पूर्वकृत पुण्यकर्मोंके प्रभावसे ही सब ओर स्वर्गका सुख भोगते हैं। भोगद्वारा शुभ कर्मका क्षय हो जानेपर उन्हें भी मर्त्यलोकमें आना पड़ता है। अतः उनकी सेवाको आप मोक्षका साधन मत मानिये ॥ ७ ॥ जिससे परमेष्ठी ब्रह्माको भी भय प्राप्त होता है, फिर उनके द्वारा पृथ्वीपर उत्पन्न किये गये प्राणियोंकी तो बात ही क्या है, उस कालको ही श्रेष्ठ विद्वान् सबसे उत्कृष्ट, अनन्त तथा सब प्रकारसे बलिष्ठ मानते हैं ॥ ८ ॥ इसलिये उस कालका ही आश्रय लेकर मनुष्यको सत्कर्मोंद्वारा सुरेश्वर यज्ञपति परमात्मा श्रीहरिका भजन करना चाहिये। अपने सम्पूर्ण सत्कर्मोंके फलका मनसे परित्याग करके जो श्रीहरिका भजन करता है, वही परम-मोक्षको प्राप्त होता है; दूसरे किसी प्रकारसे उसको मोक्ष नहीं मिलता ॥ ९ ॥ गौ, ब्राह्मण, साधु, अग्नि, देवता, वेद तथा धर्म—ये भगवान् यज्ञेश्वरकी विभूतियाँ हैं। इनको आधार बनाकर जो श्रीहरिका भजन करते हैं, वे सदा इस लोक और परलोकमें सुख पाते हैं ॥ १० ॥ भगवान्‌के वक्षःस्थलसे प्रकट हुआ वह गिरीन्द्रोंका सम्राट् गोवर्धन नामक पर्वत महर्षि पुलस्त्यके प्रभावसे इस व्रजमण्डलमें आया है। उसके दर्शनसे मनुष्यका इस जगत्‌में पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ११ ॥ गौओं, ब्राह्मणों तथा देवताओंका पूजन करके आज ही यह उत्तम भेंटसामग्री महान् गिरिराजको अर्पित की जाय। यह यज्ञ नहीं, यज्ञोंका राजा है। यही मुझे प्रिय है। यदि आप यह काम नहीं करना चाहते तो जाइये; जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये ॥ १२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! उन गोपोंमें सन्नन्दनामक एक बड़े-बूढ़े गोप थे, जो बड़े नीतिवेत्ता थे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर नन्दजीके सुनते हुए श्रीकृष्णसे कहा ॥ १३ ॥ सन्नन्द बोले—हे नन्दनन्दन! हे तात! तुम तो साक्षात् ज्ञानकी निधि हो। गिरिराजकी पूजा किस विधिसे करनी होगी, यह ठीक-ठीक बताओ ॥ १४ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—जहाँ गिरिराजकी पूजा करनी हो, वहाँ उनके नीचेकी धरतीको गोबरसे लीप-पोतकर वहीं सब सामग्री रखनी चाहिये। इन्द्रियोंको वशमें रखकर बड़े भक्ति-भावसे 'सहस्रशीर्षा०' मन्त्र पढ़ते हुए ब्राह्मणोंके साथ रहकर गंगाजल या यमुनाजलसे गिरिराजको स्नान कराना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ फिर श्वेत गोदुग्धकी धारासे तथा पञ्चामृतसे स्नान कराकर पुनः यमुना-जलसे नहलाये। उसके बाद

वस्त्रं दिव्यं च नैवेद्यमासनं सर्वतोऽधिकम् । मालालंकारनिचयं दत्त्वा दीपावलिं पराम् ॥१८॥
ततः प्रदक्षिणां कुर्यान्नमस्कुर्यात्ततः परम् । कृतांजलिपुटो भूत्वा त्विदमेवमुदीरयेत् ॥१९॥
नमो वृन्दावनांकाय तुभ्यं गोलोकमौलिने । पूर्णब्रह्मातपत्राय नमो गोवर्द्धनाय च ॥२०॥
पुष्पांजलिं ततः कुर्यान्नीराजनमतः परम् । घंटाकांस्यमृदंगाद्यैर्वादित्रैर्मधुरस्वनैः ॥२१॥
वेदाहमेतं मंत्रेण वर्षेल्लाजैः समाचरेत् । तत्समीपे चान्नकूटं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥२२॥
कचोलानां चतुःषष्टिपञ्चपंक्तिसमन्वितम् । तुलसीदलमिश्रैश्च श्रीगंगायमुनाजलैः ॥२३॥
षट्पञ्चाशत्तमैर्भोगैः कुर्यात्सेवां समाहितः ।
ततोऽग्नीन् ब्राह्मणान्पूज्य गाः सुरान् गन्धपुष्पकैः ॥२४॥
भोजयित्वा द्विजवरान् सौगंधैर्मिष्टभोजनैः । अन्येभ्यश्चाश्वपाकेभ्यो दद्याद्भोजनमुत्तमम् ॥२५॥
गोपीगोपालवृंदैश्च गवां नृत्यं च कारयेत् । मंगलैर्जयशब्दैश्च कुर्याद्गोवर्द्धनोत्सवम् ॥२६॥
यत्र गोवर्द्धनाभावस्तत्र पूजाविधिं शृणु । गोमयैर्वर्द्धनं कुर्यात्तदाकारं परोन्नतम् ॥२७॥
पुष्पव्यूहैर्लताजालैरीषिकाभिः समन्वितः । पूजनीयः सदा मर्त्यैर्गिरिर्गोवर्द्धनो भुवि ॥२८॥
शिलासमानं पुरटं क्षिप्त्वाऽद्रौ तच्छिलां नयेत् । गृह्णीयाद्यो विना स्वर्णं स महारौरवं व्रजेत् ॥२९॥
शालग्रामस्य देवस्य सेवनं कारयेत्सदा । पातकं न स्पृशेत्तं वै पद्मपत्रं यथा जलम् ॥३०॥
गिरिराजशिलासेवां यः करोति द्विजोत्तमः । सप्तद्वीपमहीतीर्थावगाहफलमेति सः ॥३१॥
गिरिराजमहापूजां वर्षे वर्षे करोति यः । इह सर्वसुखं भुक्त्वाऽमुत्र मोक्षं प्रयाति सः ॥३२॥
इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजपूजाविधिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

गन्ध, पुष्प, वस्त्र, आसन, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, माला, आभूषण-समूह तथा उत्तम दीपमाला समर्पित करके गिरिराजकी परिक्रमा करे। इसके बाद साष्टांग प्रणाम करके, दोनों हाथ जोड़कर, इस प्रकार कहे—॥ १७–१९ ॥ 'जो श्रीवृन्दावनके अङ्कमें अवस्थित तथा गोलोकके मुकुट हैं, पूर्णब्रह्म परमात्माके छत्ररूप उन गिरिराज गोवर्धनको हमारा बारंबार नमस्कार है।' ॥ २० ॥ तदनन्तर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। उसके बाद घंटा, झाँझ और मृदङ्ग आदि मधुर ध्वनि करनेवाले बाजे बजाते हुए गिरिराजकी आरती करे ॥ २१ ॥ तदनन्तर 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्०' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए उनके ऊपर लावाकी वर्षा करे और श्रद्धापूर्वक गिरिराजके समीप अन्नकूट स्थापित करे ॥ २२ ॥ फिर चौंसठ कटोरोंको पाँच पंक्तियोंमें रक्खे और उनमें तुलसीदल-मिश्रित गङ्गा-यमुनाका जल भर दे ॥ २३ ॥ फिर एकाग्रचित्त हो गिरिराजकी सेवामें छप्पन भोग अर्पित करे। तत्पश्चात् अग्निमें होम करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा गौओं और देवताओं-पर भी गन्ध-पुष्प चढ़ाये ॥ २४ ॥ अन्तमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सुगन्धित मिष्टान्न भोजन कराकर, अन्य लोगोंको—यहाँतक कि चण्डाल भी छूटने न पायें—उत्तम भोजन दे ॥ २५ ॥ इसके बाद गोपियों और गोपोंके समुदाय गौओंके सामने नृत्य करें, मंगलगीत गायें और जय-जयकार करते हुए गोवर्धन-पूजनोत्सव सम्पन्न करें ॥२६॥ जहाँ गोवर्धन नहीं है, वहाँ गोवर्धन-पूजाकी क्या विधि है, यह सुनो। गोबरसे गोवर्धनका बहुत ऊँचा आकार बनाये ॥ २७ ॥ फिर उन्हें पुष्प-समूहों, लता-जालों और सींकोंसे सुशोभित करके, उसे ही गोवर्धन-गिरि मानकर भूतलपर मनुष्योंको सदा उसकी पूजा करनी चाहिये ॥ २८ ॥ यदि कोई गोवर्धनकी शिला ले जाकर पूजन करना चाहे तो जितना बड़ा प्रस्तर ले जाय, उतना ही सुवर्ण उस पर्वतपर छोड़ दे। जो बिना सुवर्ण दिये वहाँकी शिला ले जायगा, वह महारौरव नरकमें पड़ेगा ॥ २९ ॥ शालग्राम भगवान्‌की सदा सेवा करनी चाहिये। शालग्रामके पूजकको पातक उसी तरह स्पर्श नहीं करते, जैसे पद्मपत्रपर जलका लेप नहीं होता ॥ ३० ॥ जो श्रेष्ठ द्विज गिरिराज-शिलाकी सेवा करता है, वह सातों द्वीपोंसे युक्त भूमण्डलके तीर्थोंमें स्नान करनेका फल पाता है ॥ ३१ ॥ जो प्रतिवर्ष गिरिराजकी महापूजा करता है, वह इस लोकमें

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(गोपोंद्वारा गिरिराज-पूजनका महोत्सव)

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वचो नन्दसुतस्य साक्षाच्छ्रीनन्दसन्नन्दवरा व्रजेशाः ।
सुविस्मिताः पूर्वकृतं विहाय प्रचक्रिरे श्रीगिरिराजपूजाम् ॥ १ ॥
नीत्वा बलीन्मैथिल नन्दराजः सुतौ समानीय च रामकृष्णौ ।
यशोदया श्रीगिरिपूजनार्थं समुत्सुको गर्गयुतः प्रसन्नः ॥ २ ॥
त्वरं समारुह्य महोन्नतं गजं विचित्रवर्णं धृतहेमशृङ्खलम् ।
गोवर्द्धनान्तं प्रययौ गवां गणैः शरद्घनैः शक्र इव प्रियायुतः ॥ ३ ॥
नन्दोपनन्दा वृषभानवश्च पुत्रैश्च पौत्रैश्च सहांगनाभिः ।
समाययुः श्रीगिरिराजपार्श्वं सर्वं समानीय च यज्ञभारम् ॥ ४ ॥
सहस्रबालार्कपरिस्फुरद्द्युतिमारुह्य राधा शिबिकां सखीगणैः ।
शचीव दिव्याम्बररत्नभूषणा बभौ चकोरीभ्रमरीसमाकुला ॥ ५ ॥
समागते पार्श्वगते स्वलंकृते राजन्सखीकोटिसमावृते परे ।
सख्यौ विभाते ललिताविशाखे चन्द्राननं चालितचारुचामरे ॥ ६ ॥
एवं रमा वै विरजा च माधवी माया च कृष्णा नृप जह्नुनंदिनी ।
द्वात्रिंशदष्टौ च तथा हि षोडश सख्यश्च तासां किल यूथ आगतः ॥ ७ ॥
श्रीमैथिलानां किल कौसलानां तथा श्रुतीनामृषिरूपकाणाम् ।
तथा त्वयोध्यापुरवासिनीनां श्रीयज्ञसीतावनवासिनीनाम् ॥ ८ ॥

सम्पूर्ण सुख भोगकर परलोकमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—साक्षात् श्रीनन्दनन्दनको यह बात सुनकर श्रीनन्द और सन्नन्द आदि व्रजेश्वरगण बड़े विस्मित हुए। फिर उन्होंने पहलेका निश्चय त्यागकर श्रीगिरिराज-पूजनका आयोजन किया ॥ १ ॥ हे मिथिलेश्वर ! नन्दराज अपने दोनों पुत्र—बलराम और श्रीकृष्णको तथा भेंटपूजाकी सामग्रीको लेकर यशोदाजीके साथ गिरिराज-पूजनके लिये उत्कण्ठित हो प्रसन्नतापूर्वक गये। उनके साथ गर्गजी भी थे ॥ २ ॥ वे अपनी पत्नीके साथ बहुत ऊँचे चित्र-विचित्र वर्णोंसे रँगे हुए तथा सोनेकी साँकल धारण करनेवाले हाथीपर आरूढ़ हो, गौओंके साथ गोवर्धन पर्वतके समीप गये, मानो इन्द्राणीके साथ इन्द्र ऐरावतपर आरूढ़ हो शरद् ऋतुके श्वेत बादलोंके साथ उपस्थित हुए हों ॥ ३ ॥ नन्द, उपनन्द और वृषभानुगण अपने पुत्रों, पोतों और पत्नियोंके साथ यज्ञका सारा सम्भार लिये गिरिराजके पास आ पहुँचे ॥ ४ ॥ सहस्रों बालरविकी दीप्तिसे प्रकाशित शिबिकामें आरूढ़ हो दिव्य वस्त्रों तथा रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित श्रीराधा सखी-समुदायके साथ वहाँ आकर उसी प्रकार सुशोभित हुईं; जैसे शची चकोरी और भ्रमरियोंके साथ शोभा पाती हों ॥ ५ ॥ हे राजन् ! श्रीराधाके दोनों बगलमें आयी हुई विविध अलंकारोंसे अलंकृत तथा करोड़ों सखियोंसे आवृत दो सर्वश्रेष्ठ चन्द्रमुखी सखियाँ—ललिता और विशाखा—चारु चँवर डुलाती हुई शोभा पा रही थीं ॥ ६ ॥ हे नरेश्वर ! इसी प्रकार रमा, विरजा, माधवी, माया, यमुना और गंगा आदि बत्तीस सखियाँ, आठ सखियाँ, सोलह सखियाँ और उन सबके यूथमें सम्मिलित असंख्य सखियाँ वहाँ आयीं ॥ ७ ॥ मिथिलानिवासिनी, कोसलप्रदेशवासिनी, अयोध्यापुरनिवासिनी, श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, यज्ञसीतास्वरूपा

रमादिवैकुण्ठनिवासिनीनां तथोर्ध्ववैकुण्ठनिवासिनीनाम् ।
महोज्ज्वलद्वीपनिवासिनीनां ध्रुवादिलोकाचलवासिनीनाम् ॥ ९ ॥
समुद्रजादिव्यगुणत्रयाणामदिव्यवैमानिकजौषधीनाम् ।
जालंधरीणां च समुद्रकन्यावर्हिष्मतीजासुतलस्थितानाम् ॥१०॥
तथाप्सरःसर्वफणीन्द्रजानामासां च यूथाव्रजवासिनीनाम् ।
समाययुः श्रीगिरिराजपार्श्वं स्वलंकृताः पाणिबलिप्रदीपाः ॥११॥
गोपाश्च वृद्धाः शिशवो युवानः पीताम्बरोष्णीषकबर्हमंडिताः ।
श्रीहारगुंजावनमालिकाभी रेजुः समेता नवयष्टिवेणुभिः ॥१२॥
श्रुत्वोत्सवं शैलवरस्य मन्मुखाद्गङ्गाधरो बद्धकपर्दमंडलः ।
कपालभृन्नस्थिजभस्मरूषितः सर्पालिमालावलयैर्विभूषितः ॥१३॥
धत्तूरभंगाविषपानविह्वलो हिमाद्रिपुत्रीसहितो गणावृतः ।
आरुह्य नन्दीश्वरमादिवाहनं समाययौ श्रीगिरिराजमण्डलम् ॥१४॥
राजर्षिविप्रर्षिसुरर्षयश्च सिद्धेशयोगेश्वरहंसमुख्याः ।
आजग्मुरारादृद्रिदर्शनार्थं सहस्रशो विप्रगणाः समेताः ॥१५॥
गोवर्द्धनो रत्नशिलामयोऽभूत्सुवर्णभृंगैः परितः स्फुरद्भिः ।
मत्तालिभिर्निर्झरसुंदरीभिर्दरीभिरुच्चांगकरीव राजन् ॥१६॥
तदैव शैलाः किल मूर्तिमंतः सोपायना मेरुहिमाचलाद्याः ।
नेमुर्गिरिं मंगलपाणयस्तं गोवर्द्धनं रूपधरं गिरीन्द्राः ॥१७॥
द्विजैश्च गोवर्द्धनदेवपूजनं कृत्वाऽच्युतोक्तं द्विजवह्निगोधनम् ।
सम्पूज्य धृत्वा सुधनं महाधनं बलिं ददौ श्रीगिरये व्रजेश्वरः ॥१८॥

तथा वनवासिनी गोपियोंका समुदाय भी वहाँ आ उपस्थित हुआ ॥ ८ ॥ रमा आदि वैकुण्ठवासिनी देवियाँ, वैकुण्ठसे भी ऊपरके लोकोंमें रहनेवाली दिव्यांगनाएँ, परम उज्ज्वल श्वेतद्वीपकी निवासिनी बालाएँ और ध्रुवादि लोकों तथा लोकाचलमें रहनेवाली देवीरूपा गोपांगनाओंका दल भी वहाँ आ गया ॥ ९ ॥ जो समुद्रसे उत्पन्न लक्ष्मीकी सखियाँ थीं, दिव्य गुणत्रयमयी अंगनाएँ थीं, अदिव्य विमानचारियोंकी वनिताएँ थीं; जो ओषधिस्वरूपा थीं, जो जालंधरके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ थीं, जो समुद्र-कन्याएँ थीं तथा जो बर्हिष्मती-नगरी तथा सुतल आदि लोकोंमें निवास करनेवाली थीं, उन समस्त दिव्यांगनाओंका समुदाय गिरिराज गोवर्धनके पास आकर विराजमान हुआ ॥ १० ॥ इसी प्रकार अप्सराओं, समस्त नागकन्याओं तथा व्रज-वासिनियोंके यूथ भी वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो, हाथमें पूजन-सामग्री और प्रदीप लिये गिरिराजके पास आ पहुँचे ॥ ११ ॥ बालक, युवक और वृद्ध गोप भी पीताम्बर, पगड़ी तथा मोरपंखसे मण्डित तथा सुन्दर हार, गुञ्जा और वनमालाओंसे विभूषित हो, नूतन यष्टि तथा वेणु लिये, वहाँ आकर शोभा पाने लगे ॥ १२ ॥ गिरिराज हिमालयके मुखसे उस उत्सवका समाचार सुनकर गंगाधर शिव मस्तकपर जटा-जूट बाँधे, हाथमें कपाल लिये, अंगोंमें चिताकी भस्म लगाये, सर्पोंकी माला तथा कंगनोंसे विभूषित हो, भाँग, धतूर और विष पीकर मत्त हुए, गिरिराजनन्दिनी उमाके साथ आदिवाहन नन्दीश्वरपर आरूढ़ हो, प्रमथगणोंसे घिरे हुए, गिरिराज-मण्डलमें आये ॥ १३ ॥ १४ ॥ मुख्य-मुख्य राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, सिद्धेश्वर, हंस आदि योगेश्वर तथा सहस्रों ब्राह्मण-वृन्द गिरिराजका दर्शन करनेके लिये आस-पास एकत्र हो गये ॥ १५ ॥ गोवर्धन पर्वतकी एक-एक शिला रत्नमयी हो गयी। उसके सुवर्णमय शृंग चारों ओर अपनी दीप्ति फैलाने लगे। हे राजन्! वह पर्वत मतवाले भ्रमरों तथा निर्झर-शोभित कन्दराओंसे उन्नतकाय गजराजकी शोभा धारण करने लगा ॥ १६ ॥ उसी समय मेरु और हिमालय आदि गिरीन्द्र दिव्य रूप धारण करके, भेंट और मांगलिक

नन्दोपनन्दैर्वृषभानुभिश्च गोपीगणैर्गोपगणैः प्रहर्षितः ।
गायद्भिरानर्तनवाद्यतत्परैश्चकार कृष्णोऽद्रिवरप्रदक्षिणाम् ॥१९॥
देवेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षं जनेषु वर्षत्सु च लाजसङ्घम् ।
रेजे महाराज इवाध्वरे जनैर्गोवर्धनो नाम गिरीन्द्रराजराट् ॥२०॥
कृष्णोऽपि साक्षाद्व्रजशैलमध्याद्धृत्वाऽतिदीर्घं किल चान्यरूपम् ।
शैलोऽस्मि लोकानिति भाषयन्सन् जघास सर्वं कृतमन्नकूटम् ॥२१॥
गोपालगोपीगणवृन्दमुख्या ऊचुः स्वयं वीक्ष्य गिरेः प्रभावम् ।
दातुं वरं तत्र समुद्यतं तं सुविस्मिता हर्षितमानसास्ते ॥२२॥
ज्ञातोऽसि गोपैर्गिरिराजदेवः प्रदर्शितो नन्दसुतेन साक्षात् ।
नो गोधनं वा किल बन्धुवर्गो वृद्धिं समायातु दिने दिने कौ ॥२३॥
तथाऽस्तु चोक्त्वा गिरिराजराजो गोवर्द्धनो दिव्यवपुर्दधानः ।
किरीटकेयूरमनोहराङ्गः क्षणेन तत्रान्तरधीयताराात् ॥२४॥
नन्दोपनन्दा वृषभानवश्च बलः सुचन्द्रो वृषभानुराजः ।
श्रीनन्दराजश्च हरिश्च गोपा गोप्यश्च सर्वा निजगोधनैश्च ॥२५॥
द्विजाश्च योगेश्वरसिद्धसङ्घाः शिवादयश्चान्यजनाश्च सर्वे ।
नत्वाऽथ सम्पूज्य गिरिं प्रसन्नाः स्वं स्वं गृहं जग्मुरनिच्छया च ॥२६॥
श्रीकृष्णचन्द्रस्य परं चरित्रं गिरीन्द्रराजस्य महोत्सवं च ।
मया तवाग्रे कथितं विचित्रं नृणां महापापहरं पवित्रम् ॥२७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गिरिराजमहोत्सववर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

वस्तुएँ हाथमें लिये मूर्तिमान् गोवर्धनको प्रणाम करने लगे ॥ १७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी बतायी हुई विधिके अनुसार द्विजोंद्वारा गोवर्धन-पूजन सम्पन्न करके, ब्राह्मणों, अग्नियों तथा गोधनकी सम्यक् पूजा करनेके पश्चात्, व्रजेश्वर नन्दने गिरिराजकी सेवामें बहुत-सा धन तथा बहुमूल्य भेंट-सामग्री प्रस्तुत की ॥ १८ ॥ नन्द, उपनन्द, वृषभानु, गोपीवृन्द तथा गोपगण नाचने, गाने और बाजे बजाने लगे। उन सबके साथ हर्षसे भरे हुए श्रीकृष्णने गिरिराजकी परिक्रमा की ॥ १९ ॥ तब आकाशसे देवता फूल बरसाने लगे और भूतल-वासी जनसमुदाय लाजा (लावा या खील) छींटने लगा। उस यज्ञमें गिरीन्द्रोंका सम्राट् गोवर्धन लोगोंसे घिरकर किसी महाराजके समान सुशोभित होने लगा ॥ २० ॥ साक्षात् श्रीकृष्ण भी व्रजस्थित शैल गोवर्धन-के बीचसे एक दूसरा विशाल रूप धारण करके निकले और 'मैं गिरिराज गोवर्धन हूँ'—यों कहते हुए वहाँका सारा अन्नकूट भोग लगाने लगे ॥ २१ ॥ गोपालों और गोपियोंके समुदायमें जो मुख्य-मुख्य लोग थे, उन्होंने गिरिका यह प्रभाव अपनी आँखों देखा तथा गिरिराजको वहाँ वर देनेके लिये उद्यत देख सब-के-सब आश्चर्यचकित हो उठे। सबके मनमें अपूर्व उल्लास छा गया ॥ २२ ॥ उस समय गोपोंने कहा—हे प्रभो! आज हमने जान लिया कि आप साक्षात् गिरिराज देवता हैं। आज स्वयं नन्दनन्दनने हमें आपके दर्शनका अवसर दिया है। आपकी कृपासे हमारा गोधन और बन्धुवर्ग प्रतिदिन इस भूतलपर वृद्धिको प्राप्त हो ॥ २३ ॥ 'ऐसा ही होगा'—यों कहकर किरीट और केयूर आदि आभूषणोंसे मनोहर अंगवाले दिव्यरूपधारी गिरि-राज गोवर्धन क्षणभरमें वहाँ उनके निकट ही अन्तर्धान हो गये ॥ २४ ॥ तब नन्द, उपनन्द, वृषभानु, बलराम, वृषभानुराज, सुचन्द्र, श्रीनन्दराज, श्रीहरि एवं समस्त गोप-गोपीगण अपने गोधनोंके साथ वहाँसे चले ॥ २५ ॥ ब्राह्मण, योगेश्वर-समुदाय, सिद्धसंघ, शिव आदि देवता तथा अन्य सब लोग गिरिराजको प्रणाम

अथ तृतीयोऽध्यायः

(श्रीकृष्णका गोवर्धन पर्वतको उठाकर इन्द्रके द्वारा क्रोधपूर्वक करायी गयी घोर जलवृष्टिसे गोपोंकी रक्षा करना)

श्रीनारद उवाच

अथ मन्मुखतः श्रुत्वा स्वात्मयागस्य नाशनम् । गोवर्द्धनोत्सवं जातं कोपं चक्रे पुरन्दरः ॥ १ ॥
सांवर्तकं नाम गणं प्रलये मुक्तबंधनम् । इन्द्रो व्रजविनाशाय प्रेषयामास सत्वरम् ॥ २ ॥
अथ मेघगणाः क्रुद्धा ध्वनंतश्चित्रवर्णिनः । कृष्णाभाः पीतभाः केचित्केचिच्च हरितप्रभाः ॥ ३ ॥
इन्द्रगोपनिभाः केचित्केचित्कर्पूरवत्प्रभाः । नानाविधाश्च ये मेघा नीलपंकजसुप्रभाः ॥ ४ ॥
हस्तितुल्यान्वारिबिन्दून् ववृषुस्ते मदोद्धताः । हस्तिशुंडासमाभिश्च धाराभिश्चंचलाश्च ये ॥ ५ ॥
निपेतुः कोटिशश्चाद्रिकूटतुल्योपला भृशम् । वाता ववुः प्रचण्डाश्च क्षेपयंतस्तरून् गृहान् ॥ ६ ॥
प्रचण्डा वज्रपातानां मेघानामंतकारिणाम् । महाशब्दोऽभवद्भूमौ मैथिलेन्द्र भयंकरः ॥ ७ ॥
ननाद तेन ब्रह्माण्डं सप्तलोकैर्बिलैः सह । विचेलुर्दिग्गजास्तारा ह्यपतन्भूमिमण्डलम् ॥ ८ ॥
भयभीता गोपमुख्याः सकुटुंबा जिगीषवः । शिशून्स्वान्स्वान्पुरस्कृत्य नंदमंदिरमाययुः ॥ ९ ॥
श्रीनन्दनन्दनं नत्वा सबलं परमेश्वरम् । ऊचुर्व्रजौकसः सर्वे भयार्ताः शरणं गताः ॥१०॥

गोपा ऊचुः

राम राम महाबाहो कृष्ण कृष्ण व्रजेश्वर । पाहि पाहि महाकष्टादिन्द्रदत्तान्निजान्जनान् ॥११॥
हित्वेन्द्रयागं त्वद्वाक्यात्कृतो गोवर्द्धनोत्सवः । अद्य शक्रे प्रकुपिते कर्तव्यं किं वदाशु नः ॥१२॥

और उनका पूजन करके प्रसन्नतापूर्वक अनिच्छासे अपने-अपने घरको गये ॥ २६ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्रके इस उत्तम चरित्रका तथा गिरिराजराजके उस विचित्र महोत्सवका मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया। यह पावन प्रसंग बड़े-बड़े पापोंको हर लेनेवाला है ॥ २७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर मेरे मुखसे अपने यज्ञका लोप तथा गोवर्धन-पूजनोत्सवके सम्पन्न होनेका समाचार सुनकर देवराज इन्द्रने बड़ा क्रोध किया ॥ १ ॥ उन्होंने उस सांवर्तक नामक मेघगणको, जिसका बन्धन केवल प्रलयकालमें खोला जाता है, बुलाकर तत्काल व्रजका विनाश कर डालनेके लिये भेजा ॥ २ ॥ आज्ञा पाते ही विचित्र वर्णवाले मेघगण रोषपूर्वक गर्जन करते हुए चले। उनमें कोई काले, कोई पीले और कोई हरे रंगके थे ॥ ३ ॥ किन्हींकी कान्ति इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक कीड़ोंकी तरह लाल थी। कोई कपूरके समान सफेद थे और कोई नील कमलके समान नीली प्रभासे युक्त थे ॥ ४ ॥ इस तरह नाना रंगोंके मेघ मदोन्मत्त हो हाथीके समान मोटी वारिधाराओंकी वर्षा करने लगे। कुछ चञ्चल मेघ हाथीकी सूँड़के समान मोटी धाराएँ गिराने लगे ॥ ५ ॥ पर्वतशिखरके समान करोड़ों प्रस्तरखण्ड वहाँ बड़े वेगसे गिरने लगे। साथ ही प्रचण्ड आँधी चलने लगी, जो वृक्षों और घरोंको उखाड़ फेंकती थी ॥ ६ ॥ हे मैथिलेन्द्र ! प्रलयंकर मेघों तथा वज्रपातोंका महाभयंकर शब्द व्रजभूमिपर व्याप्त हो गया ॥७॥ उस भयंकर नादसे सातों लोकों और पातालोंसहित सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा, दिग्गज विचलित हो गये और आकाशसे भूतलपर तारे टूट-टूटकर गिरने लगे ॥ ८ ॥ अब तो प्रधान-प्रधान गोप भयभीत हो, प्राण बचानेकी इच्छासे अपने-अपने शिशुओं और कुटुम्बको आगे करके नन्दमन्दिर आये ॥ ९ ॥ बलरामसहित परमेश्वर श्रीनन्दनन्दनको शरणमें जाकर समस्त भयभीत व्रजवासी उन्हें प्रणाम करके कहने लगे ॥ १० ॥ गोप बोले—हे महाबाहु राम ! हे राम !! और हे व्रजेश्वर कृष्ण ! हे कृष्ण !! इन्द्रके दिये हुए इस महान् कष्टसे आप अपने जनोंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ तुम्हारे कहनेसे हमलोगोंने इन्द्रयाग छोड़कर गोवर्धन पूजाका उत्सव मनाया, इससे आज इन्द्रका कोप बहुत बढ़ गया है। अब शीघ्र बताओ, हमें क्या

श्रीनारद उवाच

व्याकुलं गोकुलं वीक्ष्य गोपीगोपालसंकुलम् । सवत्सकं गोकुलं च गोपानाह निराकुलः ॥१३॥

श्रीभगवानुवाच

मा भैष्ट यातादिृतटं सर्वैः परिकरैः सह । वः पूजा ग्रहृता येन स रक्षां संविधास्यति ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा स्वजनैः सार्द्धमेत्य गोवर्धनं हरिः । समुत्पाट्य दधाराद्रिं हस्तेनैकेन लीलया ॥१५॥

यथोच्छिलींध्रं शिशुरश्रमो गजः स्वपुष्करेणैव च पुष्करं गिरिम् ।

धृत्वा बभौ श्रीव्रजराजनन्दनः कृपाकरोऽसौ करुणामयः प्रभुः ॥१६॥

अथाह गोपान्विशताद्रिगर्तं हे तात मातर्व्रजवल्लभेशाः ।

सोपस्करैः सर्वधनैश्च गोभिरत्रैव शक्रस्य भयं न किंचित् ॥१७॥

इत्थं हरेर्वचः श्रुत्वा गोपा गोधनसंयुताः । सकुटुंबोपस्करैश्च विविशुः श्रीगिरेस्तलम् ॥१८॥

वयस्या बालकाः सर्वे कृष्णोक्ताः सबला नृपः । स्वान्स्वांश्च लगुडानद्रेरवष्टंभान्प्रचक्रिरे ॥१९॥

जलौघमागतं वीक्ष्य भगवांस्तद्गिरेरधः । सुदर्शनं तथा शेषं मनसाऽऽज्ञां चकार ह ॥२०॥

कोटिसूर्यप्रभं चाद्रेरूर्ध्वं चक्रं सुदर्शनम् । धारासंपातमपिवदगस्त्य इव मैथिल ॥२१॥

अधोऽधस्तं गिरेः शेषः कुण्डलीभूत आस्थितः । रुरोध तज्जलं दीर्घं यथा वेला महोदधिम् ॥२२॥

सप्ताहं सुस्थिरस्तस्थौ गोवर्धनधरो हरिः । श्रीकृष्णचंद्रं पश्यंतः चकोरा इव ते स्थिताः ॥२३॥

मत्तमैरावतं नागं समारुह्य पुरन्दरः । ससैन्यः क्रोधसंयुक्तो व्रजमण्डलमाययौ ॥२४॥

दूराच्चिक्षेप वज्रं स्वं नंदगोष्ठजिघांसया । स्तंभयामास शक्रस्य सवज्रं माधवो भुजम् ॥२५॥

करना चाहिये ? ॥ १२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! गोपी और ग्वालोंसे युक्त गोकुलको व्याकुल देख तथा बछड़ोंसहित गो-समुदायको भी पीड़ित निहार, भगवान् बिना किसी घबराहटके बोले ॥ १३ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—आपलोग डरें नहीं। समस्त परिकरोंके साथ गिरिराजकी तलहटीमें चलें। जिन्होंने तुम्हारी पूजा ग्रहण की है, वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ १४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यों कहकर श्रीहरि स्वजनोंके साथ गोवर्धनके पास गये और उस पर्वतको उखाड़कर एक ही हाथसे खेल-खेलमें ही धारण कर लिया ॥ १५ ॥ जैसे बालक बिना श्रमके ही गोबर-छत्ता उठा लेता है; अथवा जैसे हाथी अपनी सूँड़से कमलको अनायास उखाड़ लेता है; उसी प्रकार कृपालु करुणामय प्रभु श्रीव्रजराजनन्दन गोवर्धन पर्वतको धारण करके सुशोभित हुए ॥ १६ ॥ फिर वे गोपोंसे बोले—'हे मैया ! हे बाबा ! हे व्रजवल्लभेश्वरगण ! आप सब लोग सारी सामग्री, सम्पूर्ण धन तथा गौओंके साथ गिरिराजके गर्तमें घुस जाइये। यही एक ऐसा स्थान है, जहाँ इन्द्रका कोई भय नहीं है' ॥ १७ ॥ श्रीहरिका यह वचन सुनकर गोधन, कुटुम्ब तथा अन्य समस्त उपकरणोंके साथ वे गोवर्धन पर्वतके गड्ढेमें चले गये ॥ १८ ॥ हे नरेश्वर ! श्रीकृष्णका अनुमोदन पाकर बलरामजी-सहित समस्त सखा ग्वाल-बालोंने पर्वतको रोकनेके लिये अपनी-अपनी लाठियोंको लगा दिया ॥ १९ ॥ पर्वतके नीचे जलप्रवाहको आता देख भगवान्‌ने मन-ही-मन सुदर्शनचक्र तथा शेषका स्मरण करके उसके निवारणके लिये आज्ञा प्रदान की ॥ २० ॥ हे मिथिलेश्वर ! उस पर्वतके ऊपर स्थित हो, कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी सुदर्शनचक्र गिरती हुई जलकी धाराओंको उसी प्रकार पीने लगा, जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको पी लिया था ॥ २१ ॥ उस पर्वतके नीचे शेषनागने चारों ओरसे गोलाकार स्थित हो, उधर आते हुए जलप्रवाहको उसी तरह रोक दिया, जैसे तटभूमि समुद्रको रोके रहती है ॥ २२ ॥ गोवर्धनधारी श्रीहरि एक सप्ताहतक सुस्थिरभावसे खड़े रहे और समस्त गोप चकोरोंकी भाँति श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर निहारते हुए बैठे रहे ॥ २३ ॥ तदनन्तर मतवाले ऐरावत हाथीपर चढ़कर, अपनी सेना साथ ले, रोषसे भरे हुए देवराज इन्द्र व्रजमण्डलमें आये ॥ २४ ॥ उन्होंने दूरसे ही नन्दव्रजको नष्ट कर डालनेकी इच्छासे अपना वज्र

भयभीतस्तदा शक्रः सांवर्तकगणैः सह । दुद्राव सहसा देवैर्यथेभः सिंहताडितः ॥२६॥
तदैवार्कोदयो जातो गता मेघा इतस्ततः । वाता उपरताः सद्यो नद्यः स्वल्पजला नृप ॥२७॥
विपंकं भूतलं जातं निर्मलं खं बभूव ह । चतुष्पदाः पक्षिणश्च सुखमापुस्ततस्ततः ॥२८॥
हरिणोक्तास्तदा गोपा निर्ययुर्गिरिगर्ततः । स्वं स्वं धनं गोधनं च समादाय शनैः शनैः ॥२९॥
निर्यातेति वयस्यांश्च प्राह गोवर्द्धनोद्धरः । ते तमाहुश्च निर्गच्छ धारयामोऽद्रिमोजसा ॥३०॥
इति वादपरान् गोपान् गोवर्द्धनधरो हरिः । तदर्द्धं च गिरेर्भारं प्रादात्तेभ्यो महामनाः ॥३१॥
पतितास्तेन भारेण गोपबालाश्च निर्बलाः ॥३२॥
करेण तान् समुत्थाप्य स्वस्थाने पूर्ववद्गिरिम् । सर्वेषां पश्यतां कृष्णः स्थापयामास लीलया ॥३३॥

तदैव गोपीगणगोपमुख्याः सम्पूज्य कृष्णं नृप नन्दसूनुम् ।
गन्धाक्षताद्यैर्दधिदुग्धभोगैर्ज्ञात्वा परं नेमुरतीव सर्वे ॥३४॥
नन्दो यशोदा नृप रोहिणी च बलश्च सन्नन्दमुखाश्च वृद्धाः ।
आलिंग्य कृष्णं प्रददुर्धनानि शुभाशिषा संयुयुजुर्घृणार्ताः ॥३५॥
संश्लाघ्य तं गायनवाद्यतत्परा नृत्यन्त आरान्नृप नन्दनन्दनम् ।
आजग्मुरेव स्वगृहान्व्रजौकसो हरिं पुरस्कृत्य मनोरथं गताः ॥३६॥
तदैव देवा ववृषुः प्रहर्षिताः पुष्पैः शुभैः सुन्दरनन्दनोद्भवैः ।
जगुर्यशः श्रीगिरिराजधारिणो गन्धर्वमुख्या दिवि सिद्धसंघाः ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गोवर्द्धनोद्धरणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चलानेकी चेष्टा की। किंतु माधव श्रीकृष्णने वज्रसहित उनकी भुजाको स्तम्भित कर दिया ॥ २५ ॥ फिर तो इन्द्र भयभीत हो गये और जैसे सिंहकी चोट खाकर हाथी भागे, उसी प्रकार वे सांवर्तक मेघों तथा देवताओंके साथ सहसा भाग चले ॥ २६ ॥ हे नरेश्वर ! उसी समय सूर्योदय हो गया। बादल इधर-उधर छँट गये। हवाका वेग रुक गया और नदियोंमें बहुत थोड़ा पानी रह गया ॥ २७ ॥ पृथ्वीपर पङ्कका नाम भी नहीं था। आकाश निर्मल हो गया। चौपाये और पक्षी सब ओर सुखी हो गये ॥ २८ ॥ तब भगवान्‌की आज्ञा पाकर समस्त गोप पर्वतके गर्तसे अपना-अपना गोधन लेकर धीरे-धीरे बाहर निकले ॥ २९ ॥ उसके बाद गोवर्धन-धारीने अपने सखाओंसे कहा—'तुमलोग भी निकलो।' तब वे बोले—'नहीं, हमलोग अपने बलसे पर्वतको रोके हुए हैं; तुम्हीं निकल जाओ ॥ ३० ॥ उन सबको इस तरहकी बातें करते देख महामना गोवर्धनधारी श्रीहरिने पर्वतका आधा भार उनपर डाल दिया ॥ ३१ ॥ बेचारे निर्बल गोपबालक उस भारसे दबकर गिर पड़े ॥ ३२ ॥ तब उन सबको उठाकर श्रीकृष्णने उनके देखते-देखते पर्वतको पहलेकी ही भाँति लीला-पूर्वक रख दिया ॥ ३३ ॥ हे नरेश्वर ! उस समय प्रमुख गोपियों और प्रधान-प्रधान गोपोंने नन्दनन्दनका गन्ध और अक्षत आदिसे पूजन करके उन्हें दही-दूधका भोग अर्पित किया और उनको परमात्मा जानकर सबने उनके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! नन्द, यशोदा, रोहिणी, बलराम तथा सन्नन्द आदि वृद्ध गोपोंने श्रीकृष्णको हृदयसे लगाकर धनका दान किया और दयासे द्रवित हो, उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान किये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके, समस्त व्रजवासी सफलमनोरथ हो नन्दनन्दनके समीप गाने, बजाने और नाचने लगे तथा उन श्रीहरिको आगे करके अपने घरको लौटे ॥ ३६ ॥ उसी समय हर्षसे भरे हुए देवता वहाँ नन्दनवनके सुन्दर-सुन्दर फूलोंकी वर्षा करने लगे तथा आकाशमें खड़े प्रधान-प्रधान गन्धर्व और सिद्धोंके समुदाय गोवर्धनधारीके यश गाने लगे ॥ ३७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराज-खण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(इन्द्र द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति तथा सुरभि और ऐरावत द्वारा उनका अभिषेक)

श्रीनारद उवाच

अथ देवगणैः सार्द्धं शक्रस्तत्र समागतः ।
गतमानो गिरौ कृष्णं रहसि प्रणनाम ह ॥ १ ॥

इन्द्र उवाच

त्वं देवदेवः परमेश्वरः प्रभुः पूर्णः पुराणः पुरुषोत्तमोत्तमः ।
परात्परस्त्वं प्रकृतेः परो हरिर्मां पाहि पाहि द्युपते जगत्पते ॥ २ ॥
दशावतारो भगवांस्त्वमेव रिरक्षया धर्मगवां श्रुतेश्च ।
अद्यैव जातः परिपूर्णदेवः कंसादिदैत्येन्द्रविनाशनाय ॥ ३ ॥
त्वन्मायया मोहितचित्तवृत्तिं मदोद्धतं हेलनभाजनं माम् ।
पितेव पुत्रं द्युपते क्षमस्व प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४ ॥

ॐनमो गोवर्द्धनोद्धरणाय गोविन्दाय गोकुलनिवासाय गोपालाय गोपालपतये गोपीजनभर्त्रे गिरिगजोद्धर्त्रे करुणानिधये जगद्विधये जगन्मङ्गलाय जगन्निवासाय जगन्मोहनाय कोटिमन्मथ-मन्मथाय वृषभानुसुतावराय श्रीनन्दराजकुलप्रदीपाय श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय तेऽसंख्यब्रह्मांडपतये गोलोकधामधिषणाधिपतये स्वयम्भगवते सबलाय नमस्ते नमस्ते ॥ ५ ॥

श्रीनारद उवाच

इति शक्रकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । सर्वा सिद्धिर्भवेत्तस्य संकटान्न भयं भवेत् ॥ ६ ॥
इति स्तुत्वा हरिं देवं सर्वैर्देवगणैः सह । कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रणनाम पुरन्दरः ॥ ७ ॥
अथ गोवर्द्धने रम्ये सुरभिर्गौः समुद्रजा । स्नापयामास गोपेशं दुग्धधाराभिरात्मनः ॥ ८ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर गर्व गल जानेके कारण देवराज इन्द्र देवताओंके साथ उस पर्वतपर आये और एकान्तमें श्रीकृष्णको प्रणाम करके उनसे बोले ॥ १ ॥ इन्द्रने कहा—आप देवताओंके भी देवता, सर्वसमर्थ, पूर्ण परमेश्वर, पुराण पुरुष, पुरुषोत्तमोत्तम, प्रकृतिसे परे तथा परात्पर श्रीहरि हैं। स्वर्गके स्वामी हे जगत्पते ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ २ ॥ धर्म, गौ तथा वेदकी रक्षा करनेके लिये दस अवतार धारण करनेवाले भगवान् आप ही हैं। इस समय भी आप परिपूर्णतम देवता कंसादि दैत्यराजोंके विनाशके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३ ॥ आपकी मायासे जिसकी चित्तवृत्ति मोहित है, जो मदसे उन्मत्त और अवहेलनाका पात्र है, वही मैं आपका अपराधी इन्द्र हूँ। हे द्युपते ! जैसे पिता पुत्रके अपराधको क्षमा कर देता है, उसी प्रकार आप मुझ अपराधीको क्षमा करें ॥४॥ हे देवेश्वर ! हे जगन्निवास ! मुझपर प्रसन्न होइये। गोवर्धनको उठानेवाले आप गोविन्दको नमस्कार है। गोकुलनिवासी गोपालको नमस्कार है। गोपालोंके पति, गोपीजनोंके भर्ता और गिरिराजके उद्धर्ताको नमस्कार हैं। करुणाकी निधि, जगत्के विधाता, विश्वमङ्गलकारी तथा जगत्के निवासस्थान आप परमात्माको प्रणाम है। जो विश्वविमोहन तथा करोड़ों कामदेवोंके भी मनको मथ देनेवाले हैं, उन वृषभानुनन्दिनीके स्वामी तथा नन्दराज-कुलदीपक परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। असंख्य ब्रह्माण्डोंके पति, गोलोकधामके अधिपति एवं बलरामके साथ रहनेवाले आप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णको बारंबार नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—इन्द्रद्वारा किये गये इस स्तोत्रका जो प्रातःकाल उठकर पाठ करेगा, उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ सुलभ होंगी और उसे किसी संकटसे भय नहीं होगा ॥ ६ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करके देवराज इन्द्रने हाथ जोड़कर समस्त देवताओंके साथ उन्हें प्रणाम किया ॥ ७ ॥ इसके बाद क्षीरसागरसे उत्पन्न

शुंडादण्डैश्चतुर्भिश्च द्युगंगाजलपूरितैः । श्रीकृष्णं स्नापयामास मत्त ऐरावतो गजः ॥ ९ ॥
ऋषिभिः श्रुतिभिः सर्वैर्देवगन्धर्वकिन्नराः ।
तुष्टुवुस्ते हरिं राजन् हर्षिताः पुष्पवर्षिणः ॥१०॥
कृष्णाभिषेके संजाते गिरिर्गोवर्द्धनो महान् । द्रवीभूतोऽवहद्राजन् हर्षानन्दादितस्ततः ॥११॥
प्रसन्नो भगवांस्तस्मिन्कृतवान्हस्तपंकजम् । तद्धस्तचिह्नमद्यापि दृश्यते तद्गिरौ नृप ॥१२॥
तत्तीर्थं च परं भूतं नराणां पापनाशनम् ।
तदेव पादचिह्नं स्यात्तत्तीर्थं विद्धि मैथिल ॥१३॥
एतावत्तस्य तत्रैव पादचिह्नं बभूव ह । सुरभेः पादचिह्नानि बभूवुस्तत्र मैथिल ॥१४॥
द्युगङ्गाजलपातेन कृष्णस्नानेन मैथिल । तत्र वै मानसी गङ्गा गिरौ जाताऽघनाशिनी ॥१५॥
सुरभेर्दुग्धधाराभिर्गोविन्दस्नानतो नृप । जातो गोविन्दकुण्डोऽद्रौ महापापहरः परः ॥१६॥
कदाचित्तस्मिन्दुग्धस्य स्वादुत्वं प्रतिपद्यते ।
तत्र स्नात्वा नरः साक्षाद्गोविन्दपदमाप्नुयात् ॥१७॥
प्रदक्षिणीकृत्य हरिं प्रणम्य वै दत्त्वा बलींस्तत्र पुरन्दरादयः ।
जयध्वनिं कृत्य सुपुष्पवर्षिणो ययुः सुराः सौख्ययुतास्त्रिविष्टपम् ॥१८॥
कृष्णाभिषेकस्य कथां शृणोति यो दशाश्वमेधावभृथाधिकं फलम् ।
प्राप्नोति राजेन्द्र स एव भूयसः परं पदं याति परस्य वेधसः ॥१९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णाभिषेको नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सुरभि गौने उस सुरम्य गोवर्धन पर्वतपर आकर अपनी दुग्धधारासे गोपेश्वर श्रीकृष्णको स्नान कराया ॥ ८ ॥ फिर मत्त गजराज ऐरावतने गङ्गाजलसे भरी हुई चार सूँड़ोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक किया ॥ ९ ॥ हे राजन् ! फिर हर्षोल्लाससे भरे हुए सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व और किंनर ऋषियोंको साथ ले वेद-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक पुष्पवर्षा करते हुए श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ १० ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णका अभिषेक सम्पन्न हो जानेपर वह महान् पर्वत गोवर्धन हर्ष एवं आनन्दसे द्रवीभूत होकर सब ओर बहने लगा ॥ ११ ॥ तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उसके ऊपर अपना हस्तकमल रक्खा। हे नरेश्वर ! उस पर्वतपर भगवान्‌के हाथका वह चिह्न आज भी दृष्टिगोचर होता है ॥ १२ ॥ वह परम पवित्र तीर्थ हो गया, जो मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाला है। वहीं चरणचिह्न भी है। हे मैथिल ! उसे भी परम तीर्थ समझो ॥ १३ ॥ जहाँ हस्तचिह्न है, वहीं उतना ही बड़ा चरणचिह्न भी बना हुआ है। हे मैथिल ! उसी स्थानपर सुरभि देवीके चरणचिह्न भी बन गये ॥ १४ ॥ हे मिथिलेश्वर ! श्रीकृष्णके स्नानके निमित्त जो आकाशगङ्गाका जल गिरा, उससे वहीं 'मानसी गङ्गा' प्रकट हो गयीं, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली हैं ॥ १५ ॥ हे नरेश्वर ! सुरभिकी दुग्ध-धाराओंसे गोविन्दने जो स्नान किया, उससे उस पर्वतपर 'गोविन्दकुण्ड' प्रकट हो गया, जो बड़े-बड़े पापोंको हर लेनेवाला परमपावन तीर्थ है ॥ १६ ॥ कभी-कभी उस तीर्थके जलमें दूधका-सा स्वाद प्रकट होता है। उसमें स्नान करके मनुष्य साक्षात् गोविन्दके धामको प्राप्त होता है ॥१७॥ इस प्रकार वहाँ श्रीहरिकी परिक्रमा करके, उन्हें प्रणामपूर्वक बलि (पूजोपहार) समर्पित करनेके पश्चात्, इन्द्र आदि देवता जय-जयकारपूर्वक पुष्प बरसाते हुए बड़े सुखसे स्वर्गलोकको लौट गये ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र ! जो श्रीकृष्णाभिषेककी इस कथाको सुनता है, वह दस अश्वमेध यज्ञोंके अवभृथ-स्नानसे भी अधिक पुण्य-फलको पाता है। फिर वह परम-विधाता परमेश्वर श्रीकृष्णके परमपदको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखंडे 'प्रियंवदा' भाषा-टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(गोपोंका श्रीकृष्णके विषयमें संदेहमूलक विवाद)

श्रीनारद उवाच

एकदा सर्वगोपाला गोप्यो नन्दसुतस्य तत् । अद्भुतं चरितं दृष्ट्वा नन्दमाहुर्यशोमतीम् ॥ १ ॥
हे गोपराज त्वद्वंशे कोऽपि जातो न चाद्रिधृक् । न क्षमस्त्वं शिलां धर्तुं सप्ताहं हे यशोमति ॥ २ ॥
क्व सप्तहायनो बालः क्वाद्रिराजस्य धारणम् । तेन नो जायते शंका तव पुत्रे महाबले ॥ ३ ॥
अयं बिभ्रद्गिरिवरं कमलं गजराडिव । उच्छिलींध्रं यथा बालो हस्तेनैकेन लीलया ॥ ४ ॥
गौरवर्णा यशोदे त्वं नन्द त्वं गौरवर्णधृक् । अयं जातः कृष्णवर्ण एतत्कुलविलक्षणम् ॥ ५ ॥
यद्वाऽस्तु क्षत्रियाणां तु बाल एतादृशो यथा । बलभद्रे न दोषः स्याच्चन्द्रवंशसमुद्भवे ॥ ६ ॥
ज्ञातेस्त्यागं करिष्यामो यदि सत्यं न भाषसे । गोपेषु चास्य वोत्पत्तिं वद चेन्न कलिर्भवेत् ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा गोपालवचनं यशोदा भयविह्वला । नन्दराजस्तदा प्राह गोपान् क्रोधप्रपूरितान् ॥ ८ ॥

श्रीनंद उवाच

गर्गस्य वाक्यं हे गोपा वदिष्यामि समाहितः । येन गोपगणा यूयं भवताशु गतव्यथाः ॥ ९ ॥
ककारः कमलाकांतो ऋकारो राम इत्यपि । षकारः षड्गुणपतिः श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥१०॥
णकारो नारसिंहोऽयमकारो ह्यक्षरोऽग्निभुक् । विसर्गौ च तथा ह्येतौ नरनारायणावृषी ॥११॥
संप्रलीनाश्च षट् पूर्णा यस्मिञ्च्छब्दे महात्मनि । परिपूर्णतमे साक्षात्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥१२॥
शुक्लो रक्तस्तथा पीतो वर्णोऽस्यानुयुगं धृतः । द्वापरांते कलेरादौ बालोऽयं कृष्णतां गतः ॥१३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—एक समय गोपों और गोपियोंने नन्दनन्दनके उस अद्भुत चरित्रको देखकर यशोदासहित नन्दके पास जाकर कहा ॥ १ ॥ गोप बोले—हे यशोमय गोपराज ! तुम्हारे वंशमें पहले कभी कोई भी ऐसा बालक नहीं उत्पन्न हुआ था, जो पर्वत उठा ले ॥ २ ॥ तुम स्वयं तो एक शिलाखण्ड भी सात दिनतक नहीं उठाये रह सकते। कहाँ तो सात वर्षका बालक और कहाँ उसके द्वारा इतने बड़े गिरिराजको हाथपर उठाये रखना। इससे तुम्हारे इस महाबली पुत्रके विषयमें हमें शङ्का होती है ॥ ३ ॥ जैसे गजराज एक कमल उठा ले और जैसे बालक गोबरछत्ता हाथमें ले ले, उसी तरह इसने खेल-ही-खेलमें एक हाथसे गिरिराजको उठा लिया था ॥ ४ ॥ हे यशोदे ! तुम गोरी हो, और नन्दजी ! तुम भी सुवर्णसदृश गौरवर्णके हो, किन्तु यह बालक श्यामवर्णका उत्पन्न हुआ है। इसका रूप-रंग इस कुलके लोगोंसे सर्वथा विलक्षण है ॥ ५ ॥ यह बालक तो ऐसा है, जैसे क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हो। बलभद्रजी भी विलक्षण हैं, किन्तु इनकी विलक्षणता कोई दोषकी बात नहीं; क्योंकि इनका जन्म चन्द्रवंशमें हुआ है ॥ ६ ॥ यदि तुम सच-सच नहीं बताओगे तो हम तुम्हें जातिसे बहिष्कृत कर देंगे। अथवा यह बताओ कि गोकुलमें इसकी उत्पत्ति कैसे हुई ? यदि नहीं बताओगेतो हमसे तुम्हारा झगड़ा होगा ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—गोपोंकी बात सुनकर यशोदाजो तो भयसे काँप उठीं, किन्तु उस समय क्रोधसे भरे हुए गोपगणोंसे नन्दराज इस प्रकार बोले ॥ ८ ॥ श्रीनन्दजीने कहा—हे गोपगण ! मैं एकाग्रचित्त होकर गर्गजीकी कही हुई बात तुम्हें बता रहा हूँ, जिससे तुम्हारे मनकी चिन्ता और व्यथा शीघ्र दूर हो जायगी ॥ ९ ॥ पहले 'कृष्ण' शब्दके अक्षरोंका अभिप्राय सुनो—" 'ककार' कमलाकान्तका वाचक है; 'ऋकार' रामका बोधक है; 'षकार' श्वेतद्वीपनिवासी षड्विध ऐश्वर्य-गुणोंके स्वामी भगवान् विष्णुका वाचक है ॥ १० ॥ 'णकार' साक्षात् नरसिंहस्वरूप है; 'अकार' उस अक्षर पुरुषका बोधक है, जो अग्निको भी पी जाता है। अन्तमें जो 'विसर्ग' नामक दो बिन्दु हैं, ये 'नर' और 'नारायण' ऋषियोंके प्रतीक हैं ॥ ११ ॥ ये छहों पूर्ण तत्त्व जिस परिपूर्णतम परमात्मामें लीन हैं, वही साक्षात् 'कृष्ण' है। इसी अर्थमें इस बालकका नाम 'कृष्ण' रक्खा गया है ॥ १२ ॥ युगके अनुसार इसका

तस्मात्कृष्ण इति ख्यातो नाम्नायं नंदनंदनः। वसवश्चेंद्रियाणीति तद्देवश्चित्त एव हि ॥१४॥
तस्मिन्यश्चेष्टते सोऽपि वासुदेव इति स्मृतः ॥१५॥
वृषभानुसुता राधा या जाता कीर्तिमंदिरे। तस्याः पतिरयं साक्षात्तेन राधापतिः स्मृतः ॥१६॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम्। असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोके धाम्नि राजते ॥१७॥
सोऽयं तव शिशुर्जातो भारावतरणाय च। कंसादीनां वधार्थाय भक्तानां पालनाय च ॥१८॥
अनन्तान्यस्य नामानि वेदगुह्यानि भारत। लीलाभिश्च भविष्यंति तत्कर्मसु न विस्मयः ॥१९॥
इति श्रुत्वात्मजे गोपाः संदेहं न करोम्यहम्। वेदवाक्यं ब्रह्मवचः प्रमाणं हि महीतले ॥२०॥

गोपा ऊचुः

यद्यागतस्तव गृहे गर्गाचार्यो महामुनिः। तत्क्षणे नामकरणे नाहूता ज्ञातयस्त्वया ॥२१॥
स्वगृहे नामकरणं भवता च कृतं शिशोः। तव चैतादृशी रीतिर्गुप्तं सर्वं गृहेऽपि यत् ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदंतस्ते गोपा निर्गता नंदमंदिरात्। वृषभानुवरं जग्मुः क्रोधपूरितविग्रहाः ॥२३॥
वृषभानुवरं साक्षान्नंदराजसहायकम्। प्राहुर्गोपगणाः सर्वे ज्ञातेर्मदसमन्विताः ॥२४॥

गोपा ऊचुः

वृषभानुवर त्वं वै ज्ञातिमुख्यो महामनाः। नंदराजं त्यज ज्ञातेर्हे गोपेश्वर भूपते ॥२५॥

श्रीवृषभानुवर उवाच

को दोषो नंदराजस्य ज्ञातेस्तं संत्यजाम्यहम्। गोपेष्टो ज्ञातिमुकुटो नंदराजो मम प्रियः ॥२६॥

वर्ण सत्ययुगमें 'शुक्ल', त्रेतामें 'रक्त' तथा द्वापरमें 'पीत'वर्ण होता आया है। इस समय द्वापरके अन्त और कलियुगके आदिमें यह बालक 'कृष्ण' रूपको प्राप्त हुआ है, इस कारण यह नन्दनन्दन 'कृष्ण' नामसे विख्यात है। पाँच ज्ञानेद्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित्त—ये तीन प्रकारके अन्त:करण 'आठ वसु' कहे गये हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ इसके अधिष्ठाता भी इसी नामसे प्रसिद्ध हैं। इन वसुओंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित होकर ये श्रीकृष्णदेव ही चेष्टा करते हैं, इसलिये इन्हें 'वासुदेव' कहा गया है ॥१५॥ 'वृषभानुनन्दिनी राधा, जो कीर्तिके भवनमें प्रकट हुई है, उसके साक्षात् पति ये ही हैं; इसलिये इन्हें 'राधापति' भी कहा गया है ॥ १६ ॥ ये साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं और सर्वत्र व्यापक होते हुए भी स्वरूपसे गोलोकधाममें विराजते हैं ॥१७॥ हे नन्द! वे ही ये भगवान् भूतलका भार उतारने, कंसादि दैत्योंको मारने तथा भक्तोंका पालन करनेके लिये तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं ॥ १८ ॥ हे भरतवंशी नन्द! इस बालकके अनन्त नाम हैं, जो वेदोंके लिये भी गोपनीय हैं तथा लीलाओंके अनुसार और भी बहुत से नाम विख्यात होंगे। अत: इसके कितने ही महान् विलक्षण कर्म क्यों न हों, उनके सम्बन्धमें कोई विस्मय नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥ हे गोपगण! अपने पुत्रके विषयमें गर्गजीकी कही हुई इस बातको सुनकर मैं कभी संदेह नहीं करता; क्योंकि पृथ्वीपर वेद-वाक्य और ब्राह्मण-वचन ही प्रमाण हैं'' ॥ २० ॥ गोप बोले—जब महामुनि गर्गाचार्य तुम्हारे घर आये थे, तब उसी समय नामकरण-संस्कारमें तुमने भाई-बन्धुओंको क्यों नहीं बुलाया? ॥ २१ ॥ चुपचाप अपने घरमें ही बालकका नामकरण-संस्कार कर लिया! यह तुम्हारी अच्छी रीति है कि सारा कार्य घरमेंही गुप-चुप कर लिया जाय ॥ २२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! यों कहकर क्रोधसे भरे हुए गोप नन्दमन्दिरसे निकलकर वृषभानुवरके पास गये ॥ २३ ॥ वृषभानुवर नन्दराजके साक्षात् सहायक थे, तथापि इसकी परवाह न करके जातीय संघटनके बलसे उन्मत्त गोप उनके पास जाकर बोले ॥ २४ ॥ गोपोंने कहा—हे वृषभानुवर! तुम हमारे ज्ञातिवर्गमें प्रधान और महामनस्वी हो। अत: हे गोपेश्वर भूपाल! तुम नन्दराजको जातिसे अलग कर दो ॥ २५ ॥ वृषभानुवर बोले—नन्दराजका क्या दोष है, जिससे मैं उनको त्याग दूँ? नन्दराज तो समस्त गोपोंके प्रिय, अपनी जातिके मुकुट तथा मेरे भी

श्रीगोपा ऊचुः

न चेत्त्यजसि तं राजंस्त्यजामस्त्वां व्रजौकसः । त्वद्गृहे वर्धिता कन्योद्वाहयोग्या महामुने ॥२७॥
भवता ज्ञातिमुख्येन संपदुन्मदशालिना । न दत्ता वरमुख्याय कलुषं तव विद्यते ॥२८॥
अद्य त्वां ज्ञातिसंभ्रष्टं पृथङ्मन्यामहे नृप । न चेच्छीघ्रं नंदराजं त्यज त्यज महामते ॥२९॥

श्रीवृषभानुवर उवाच

गर्गस्य वाक्यं हे गोपा वदिष्यामि समाहितः । येन गोपगणा यूयं भवताशु गतव्यथाः ॥३०॥
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशः परात्परः । तस्मात्परो वरो नास्ति जातो नंदगृहे शिशुः ॥३१॥
भुवो भारावताराय कंसादीनां वधाय च । ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णो बभूव जगतीतले ॥३२॥
श्रीकृष्णपट्टराज्ञी या गोलोके राधिकाऽभिधा । त्वद्गेहे साऽपि संजाता त्वं न जानासि तां पराम् ३३
अहं न कारयिष्यामि विवाहमनयोर्नृप । तयोर्विवाहो भविता भाण्डीरे यमुनातटे ॥३४॥
वृंदावनसमीपे च निर्जने सुंदरे स्थले । परमेष्ठी समागत्य विवाहं कारयिष्यति ॥३५॥
तस्माद्राधां गोपवर विद्ध्यर्द्धाङ्गीं परस्य च । लोकचूडामणेः साक्षाद्राज्ञीं गोलोकमंदिरे ॥३६॥
यूयं सर्वेऽपि गोपाला गोलोकादागता भुवि । तथा गोपीगणा गावो गोकुले राधिकेच्छया ॥३७॥
एवमुक्त्वा गते साक्षाद्गर्गाचार्ये महामुनौ । तद्दिनादथ राधायां सन्देहं न करोम्यहम् ॥३८॥
वेदवाक्यं ब्रह्मवचः प्रमाणं हि महीतले । इति वः कथितं गोपाः किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ॥३९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे गोपविवादो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

परम प्रिय हैं ॥ २६ ॥ गोप बोले—हे राजन् ! हे महामते ! यदि तुम नन्दराजको नहीं छोड़ोगे तो हम सब व्रजवासी तुम्हें छोड़ देंगे। तुम्हारे घरमें कन्या बड़ी आयुकी होकर विवाहके योग्य हो गयी है ॥ २७ ॥ तुमने हमारी जातिके प्रधान होकर भी धन-सम्पत्तिके मदसे मतवाले हो अबतक उसे किसी श्रेष्ठ वरके हाथमें नहीं सौंपा है, इसलिये तुम्हारे ऊपर पाप चढ़ा हुआ है ॥ २८ ॥ हे महामते नरेश ! आजसे हम तुम्हें जातिभ्रष्ट तथा अपनेसे अलग मान लेंगे; नहीं तो शीघ्र नन्दराजको छोड़ दो, छोड़ दो ॥ २९ ॥ वृषभानुवरने कहा—हे गोपगण ! मैं एकाग्रचित्त होकर गर्गजीकी कही हुई बात बता रहा हूँ; जिससे शीघ्र ही तुम्हारी चिन्ता-व्यथा दूर हो जायगी ॥ ३० ॥ उन्होंने बताया है—"असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, लोकेश्वर, परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण नन्दगृहमें बालक होकर अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३१ ॥ उनसे बढ़कर श्रीराधाके लिये कोई वर नहीं है। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे भूमिका भार उतारने और कंसादिका वध करनेके लिये भूतलपर श्रीकृष्णका अवतार हुआ है ॥ ३२ ॥ गोलोकमें 'श्रीराधा' नामकी जो श्रीकृष्णकी पटरानी हैं, वे ही तुम्हारे घरमें कन्यारूपसे अवतीर्ण हुई हैं। उन 'परा देवी'को तुम नहीं जानते ॥ ३३ ॥ मैं इन दोनोंका विवाह नहीं कराऊँगा। इनका विवाह यमुनातटपर भाण्डीर-वनमें होगा ॥ ३४ ॥ वृन्दावनके समीप निर्जन सुन्दर स्थलमें साक्षात् ब्रह्माजी पधारकर श्रीराधा तथा श्रीकृष्णका विवाह-कार्य सम्पन्न करायेंगे ॥३५॥ अतः हे गोपप्रवर ! तुम श्रीराधाको लोकचूडामणि साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्णकी अर्धाङ्गस्वरूपा एवं गोलोक-धामकी महारानी समझो ॥ ३६ ॥ तुम समस्त गोपगण भी गोलोकसे इस भूतलपर आये हो। इसी तरह गोपियाँ और गौएँ भी श्रीराधाकी इच्छासे ही गोलोकसे गोकुलमें आयी हैं।" ॥ ३७ ॥ यों कहकर साक्षात् महामुनि गर्गाचार्य जब चले गये, उसी दिनसे श्रीराधाके विषयमें मैं कभी कोई संदेह या शङ्का नहीं करता ॥ ३८ ॥ इस भूतलपर ब्राह्मणवचन वेदवाक्यवत् प्रमाण हैं। हे गोपो ! यह सब रहस्य मैंने तुम्हें सुना दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे 'प्रियंवदा'भाषा-टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(गोपोंका वृषभानुवरके वैभवकी प्रशंसा करके नन्दनन्दनकी भगवत्ताका परीक्षण करनेके लिये उद्योग)

श्रीनारद उवाच

वृषभानुवरस्येदं वचः श्रुत्वा व्रजौकसः । ऊचुः पुनः शान्तिगता विस्मिता मुक्तसंशयाः॥ १ ॥

गोपा ऊचुः

समीचीनं वरो राजन् राधेयं तु हरिप्रिया । तत्प्रभावेण ते दीर्घं वैभवं दृश्यते भुवि ॥ २ ॥

सहस्रशो गजा मत्ताः कोटिशोऽश्वाश्च चंचलाः । रथाश्च देवधिष्ण्याभाः शिबिकाः कोटिशः शुभाः॥३॥

कोटिशः कोटिशो गावो हेमरत्नमनोहराः । मन्दिराणि विचित्राणि रत्नानि विविधानि च॥ ४ ॥

सर्वं सौख्यं भोजनादि दृश्यते सांप्रतं तव । कंसोऽपि धर्षितो जातो दृष्ट्वा ते बलमद्भुतम् ॥ ५ ॥

कान्यकुब्जपतेः साक्षाद्भलंदननृपस्य च । जामाता त्वं महावीर कुबेर इव कोशवान् ॥ ६ ॥

त्वत्समं वैभवं नास्ति नन्दराजगृहे क्वचित् । कृषीवलो नन्दराजो गोपतिर्दीनमानसः ॥ ७ ॥

यदि नन्दसुतः साक्षात्परिपूर्णतमो हरिः । सर्वेषां पश्यतां नस्तत्परीक्षां कारय प्रभो ॥ ८ ॥

श्रीनारद उवाच

तेषां वाक्यं ततः श्रुत्वा वृषभानुवरो महान् । चकार नन्दराजस्य वैभवस्य परीक्षणम् ॥ ९ ॥

कोटिदामानि मुक्तानां स्थूलानां मैथिलेश्वर । एकैका येषु मुक्ताश्च कोटिमौल्याः स्फुरत्प्रभाः॥१०॥

निधाय तानि पात्रेषु वृणानैः कुशलैर्जनैः । प्रेषयामास नन्दाय सर्वेषां पश्यतां नृप ॥११॥

नन्दराजसभां गत्वा वृणानाः कुशला भृशम् । निधाय दामपात्राणि नन्दमाहुः प्रणम्य तम् ॥१२॥

वृणाना ऊचुः

विवाहयोग्यां नवकंजनेत्रां कोटीन्दुबिम्बद्युतिमादधानाम् ।
विज्ञाय राधां वृषभानुमुख्यश्चक्रे विचारं सुवरं विचिन्वन् ॥१३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! वृषभानुवरकी यह बात सुनकर समस्त व्रजवासी शान्त हो गये । उनका सारा संशय दूर हो गया तथा उनके मनमें बड़ा विस्मय हुआ ॥ १ ॥ गोप बोले—हे राजन् ! तुम्हारा कथन सत्य है । निश्चय ही यह राधा श्रीहरिकी प्रिया है । इसीके प्रभावसे भूतलपर तुम्हारा वैभव अधिक दिखायी देता है ॥ २ ॥ हजारों मतवाले हाथी, चञ्चल घोड़े तथा देवताओंके विमान सदृश करोड़ों सुन्दर रथ और शिबिकाएँ तुम्हारे यहाँ सुशोभित होती हैं ॥ ३ ॥ इतना ही नहीं, सुवर्ण तथा रत्नोंके आभूषणोंसे आभूषित कोटि-कोटि मनोहर गौएँ, विचित्र भवन, नाना प्रकारके मणिरत्न, भोजन-पान आदिका सर्वविध सौख्य—यह सब इस समय तुम्हारे घरमें प्रत्यक्ष देखा जाता है । तुम्हारा अद्‌भुत बल देखकर कंस भी पराभूत हो गया है ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे महावीर ! तुम कान्यकुब्ज देशके स्वामी साक्षात् राजा भलन्दनके जामाता हो तथा कुबेरके समान कोषाधिपति हो ॥ ६ ॥ तुम्हारे समान वैभव नन्दराजके घरमें भी नहीं है । नन्दराज तो किसान, गोयूथके अधिपति और दीन हृदयवाले हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! यदि नन्दके पुत्र साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि हैं तो हम सबके सामने नन्दके वैभवकी परीक्षा कराइये ॥ ८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उन गोपोंकी बात सुनकर महान् वृषभानुवरने नन्दराजके वैभवकी जाँच की ॥ ९ ॥ हे मैथिलेश्वर ! उन्होंने स्थूल मोतियोंके एक करोड़ हार लिये, जिनमें पिरोया हुआ एक-एक मोती एक-एक करोड़ स्वर्णमुद्राके मोलपर मिलनेवाला था और उन सबकी प्रभा दूरतक फैल रही थी ॥ १० ॥ हे नरेश्वर ! उन सबको पात्रोंमें रखकर बड़े कुशल वर वरणकारी लोगोंद्वारा सब गोपोंके देखते-देखते वृषभानुवरने नन्दराजके यहाँ भेजा ॥ ११ ॥ नन्दराजकी सभामें जाकर अत्यन्त कुशल वर-वरणकर्ता लोगोंने मौक्तिक-हारोंके पात्र उनके सामने रख दिये और प्रणाम करके उनसे कहा ॥ १२ ॥ वर-वरणकर्ता बोले—हे नन्दराज ! जिसके

तवांगजं दिव्यमनंगमोहनं गोवर्द्धनोद्धारणदोःसमुद्भटम् ।
संवीक्ष्य चास्मान्वृषभानुवंदितः संप्रेषयामास विशाम्पते प्रभो ॥१४॥
वरस्य चांके भरणाय पूर्वं मुक्ताफलानां निचयं गृहाण ।
इतश्च कन्यार्थमलं प्रदेहि सैषा हि चास्मत्कुलजा प्रसिद्धिः ॥१५॥

श्रीनारद उवाच

दृष्ट्वा द्रव्यं परो नंदो विस्मितोऽपि विचारयन् । प्रष्टुं यशोदां तत्तुल्यं नीत्वा चान्तःपुरं ययौ ॥१६॥
चिरं दध्यौ तदा नन्दो यशोदा च यशस्विनी । एतन्मुक्तासमानं तु द्रव्यं नास्ति गृहे मम ॥१७॥
लोके लज्जा गता सर्वा हासः स्याचेद्धनोद्धृतम् ।
किं कर्तव्यं तत्प्रति यच्छ्रीकृष्णोद्वाहकर्मणि ॥१८॥
ततोऽयोग्यं तद्ग्रहणं पश्चात्कार्यं धनागमे । एवं चिन्तयतस्तस्य नन्दस्यैव यशोदया ॥१९॥
अलक्ष्य आगतस्तत्र भगवान्वृजिनार्दनः । नीत्वा दामशतं तेषु बहिःक्षेत्रेषु सर्वतः ॥२०॥
मुक्ताफलानि चैकैकम्प्राक्षिपत्स्वकरेण वै । यथा बीजानि चान्नानां स्वक्षेत्रेषु कृषीवलः ॥२१॥
अथ नन्दोऽपि गणयन् कलिकानिचयं पुनः । शतं न्यूनं च तद्दृष्ट्वा संदेहं स जगाम ह ॥२२॥

श्रीनन्द उवाच

नास्ति पूर्वं यत्समानं तत्रापि न्यूनतां गतम् । अहो कलंको भविता ज्ञातिषु स्वेषु सर्वतः ॥२३॥
अथवा क्रीडनार्थं हि कृष्णो यदि गृहीतवान् । बलदेवोऽथवा बालस्तौ पृच्छे दीनमानसः ॥२४॥

नेत्र नूतन विकसित कमलके समान शोभा पाते हैं तथा जो मुखमें करोड़ों चन्द्रमण्डलोंकी-सी कान्ति धारण करती है, उस अपनी पुत्री श्रीराधाको विवाहके योग्य जानकर वृषभानुवरने सुन्दर वरकी खोज करते हुए यह विचार किया है कि तुम्हारे पुत्र मदनमोहन श्रीकृष्ण दिव्य वर हैं। वे गोवर्धन पर्वतको उठानेमें समर्थ, दिव्य भुजाओंसे सम्पन्न तथा उद्भट वीर हैं। हे प्रभो! हे वैश्यप्रवर !! यह सब देख और सोच-विचारकर वृषभानुवन्दित वृषभानुवरने हम सबको यहाँ भेजा है ॥ १३ ॥ १४ ॥ आप वरकी गोद भरनेके लिये पहले कन्यापक्षकी ओरसे यह मौक्तिकराशि ग्रहण कीजिये। फिर इधरसे भी कन्याकी गोद भरनेके लिये पर्याप्त मौक्तिकराशि प्रदन कीजिये। यही हमारे कुलकी प्रसिद्ध रीति है ॥ १५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उस द्रव्यराशिको देखकर उत्कृष्ट नन्दराज बड़े विस्मित हुए; तो भी वे कुछ विचारकर यशोदाजीसे 'उसके तुल्य रत्नराशि है या नहीं' इस बातको पूछनेके लिये वह सब सामान लेकर अन्तःपुरमें गये ॥ १६ ॥ वहाँ उस समय नन्द और यशस्विनी यशोदाने चिरकालतक विचार किया, किंतु (अन्ततोगत्वा) इसी निष्कर्षपर पहुँचे कि 'इस मौक्तिकराशिके बराबर दूसरी कोई द्रव्यराशि मेरे घरमें नहीं है ॥ १७ ॥ आज लोगोंमें हमारी सारी लाज गयी। हमलोगोंकी सब ओर हँसी उड़ायी जायगी। इस धनके बदलेमें हम दूसरा कौन-सा धन दें ? क्या करें ? श्रीकृष्णके विवाहके निमित्त हमारे द्वारा क्या किया जाना चाहिये ? ॥ १८ ॥ पहले तो जो कुछ वरके लिये आया है, उसे ग्रहण कर लेना चाहिये। तदनन्तर अपने पास धन आनेपर वधूके लिये उपहार भेजा जायगा।' ऐसा विचार करते हुए नन्द और यशोदाजीके पास भगवान् अघमर्दन श्रीकृष्ण अलक्षितभावसे आ गये। आते ही उन मौक्तिक-हारोंमेंसे सौ हार उन्होंने घरसे बाहर खेतोंमें ले जाकर, अपने हाथसे मोतीका एक-एक दाना लेकर, उन्होंने उसी भाँति सारे खेतमें छींट दिया, जैसे किसान अपने खेतोंमें अनाजके दाने बिखेर देता है ॥ १९-२१ ॥ तदनन्तर नन्द जब उन मुक्तामालाओंकी गणना करने लगे, तब उनमें सौ मालाओंकी कमी देखकर उनके मनमें संदेह हुआ ॥ २२ ॥ नन्दजी बोले—हाय ! पहले तो मेरे घरमें जिस रत्नराशिके समान दूसरी कोई रत्नराशि थी ही नहीं; उसमें भी अब सौकी कमी हो गयी। अहो ! चारों ओरसे भाई-बन्धुओंके बीच मुझपर बड़ा भारी कलंक लगाया जायगा ॥ २३ ॥ अथवा यदि श्रीकृष्ण या बलरामने खेलनेके लिये उसमेंसे कुछ मोती निकाल लिये हों तो अब दीनचित्त होकर

श्रीनारद उवाच

इत्थं विचार्य नन्दोऽपि कृष्णं पप्रच्छ सादरम् । प्रहसन् भगवान् नन्दं प्राह गोवर्द्धनोद्धरः ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

कृषीवला वयं गोपाः सर्वबीजप्ररोहकाः । क्षेत्रे मुक्ताप्रबीजानि विकीर्णीकृतवाहनम् ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वाथ स्वात्मजेनोक्तं तं निर्भर्त्स्य व्रजेश्वरः । तानि नेतुं तत्सहितस्तत्क्षेत्राणि जगाम ह ॥२७॥
तत्र मुक्ताफलानां तु शाखिनः शतशः शुभाः । दृश्यंते दीर्घवपुषो हरित्पल्लवशोभिताः ॥२८॥
मुक्तानां स्तवकानां तु कोटिशः कोटिशो नृप । संघा विलंबिता रेजुर्ज्योतींषीव नभःस्थले ॥२९॥
तदाऽतिहर्षितो नन्दो ज्ञात्वा कृष्णं परेश्वरम् । मुक्ताफलानि दिव्यानि पूर्वस्थूलसमानि च ॥३०॥
तेषां तु कोटिभाराणि निधाय शकटेषु च । ददौ तेभ्यो वृणानेभ्यो नन्दराजो व्रजेश्वरः ॥३१॥
ते गृहीत्वाऽथ तत्सर्वं वृषभानुवरं गताः । सर्वेषां शृण्वतां नन्दवैभवं प्रजगुर्नृप ॥३२॥
तदाऽतिविस्मिताः सर्वे ज्ञात्वा नन्दसुतं हरिम् । वृषभानुवरं नेमुर्निःसन्देहा व्रजौकसः ॥३३॥
राधा हरेः प्रिया ज्ञाता राधायाश्च प्रियो हरिः । ज्ञातो व्रजजनैः सर्वैस्तद्दिनान्मैथिलेश्वर ॥३४॥
मुक्ताक्षेपः कृतो यत्र हरिणा नन्दसूनुना । मुक्तासरोवरस्तत्र जातो मैथिल तीर्थराट् ॥३५॥
एकं मुक्ताफलस्यापि दानं तत्र करोति यः । लक्षमुक्तादानफलं समाप्नोति न संशयः ॥३६॥
एवं ते कथितो राजन् गिरिराजमहोत्सवः । भुक्तिमुक्तिप्रदो नृणां किं भूयःश्रोतुमिच्छसि ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे हरिपरीक्षणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

में उन्हीं दोनों बालकोंसे पूछूँगा ॥ २४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार विचारकर नन्दने श्रीकृष्णसे उन मोतियोंके विषयमें आदरपूर्वक पूछा। तब जोरसे हँसते हुए गोवर्धनधारी भगवान् श्रीकृष्ण नन्दसे बोले ॥ २५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—बाबा! हम सारे गोप किसान हैं, जो खेतोंमें सब प्रकारके बीज बोया करते हैं; अतः हमने खेतमें मोतीके बीज बिखेर दिये हैं ॥ २६ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! बेटेके मुँहसे यह बात सुनकर व्रजेश्वर नन्दने डाँट बतायी और उन सबको चुन-बीनकर लानेके लिये उनके साथ खेतोंमें गये ॥ २७ ॥ वहाँ मुक्ताफलके सैकड़ों सुन्दर वृक्ष दिखायी देने लगे, जो हरे-हरे पल्लवोंसे सुशोभित और विशालकाय थे ॥ २८ ॥ हे नरेश्वर! जैसे आकाशमें झुंड-के-झुंड तारे शोभा पाते हैं, उसी प्रकार उन वृक्षोंमें कोटि-कोटि मुक्ताफलोंके गुच्छे समूह-के-समूह लटके हुए सुशोभित हो रहे थे ॥ २९ ॥ तब हर्षसे भरे हुए व्रजेश्वर नन्दराजने श्रीकृष्णको परमेश्वर जानकर पहलेके समान ही मोटे-मोटे दिव्य मुक्ताफल उन वृक्षोंसे तोड़ लिये और उनके एक कोटि भार गाड़ियोंपर लदवाकर उन वर-वरणकर्ताओंको दे दिये। हे नरेश्वर! वह सब लेकर वे वरदर्शी लोग वृषभानुवरके पास गये और सबके सुनते हुए नन्दराजके अनुपम वैभवका वर्णन करने लगे ॥ ३०–३२ ॥ उस समय सब गोप बड़े विस्मित हुए। नन्दनन्दनको साक्षात् श्रीहरि जानकर समस्त व्रजवासियोंका संशय दूर हो गया और उन्होंने वृषभानुवरको प्रणाम किया ॥ ३३ ॥ हे मिथिलेश्वर! उसी दिनसे व्रजके सब लोगोंने यह जान लिया कि श्रीराधा श्रीहरिकी प्रियतमा है और श्रीहरि श्रीराधाके प्राणवल्लभ हैं ॥ ३४ ॥ हे मिथिलापते! जहाँ नन्दनन्दन श्रीहरिने मोती बिखेरे थे, वहाँ 'मुक्ता-सरोवर' प्रकट हो गया, जो तीर्थोंका राजा है ॥ ३५ ॥ जो वहाँ एक मोतीका भी दान करता है, वह लाख मोतियोंके दानका फल पाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ३६ ॥ हे राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे गिरिराज-महोत्सवका वर्णन किया, जो मनुष्योंके लिये भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ३७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(गिरिराज गोवर्धनसम्बन्धी तीर्थोंका वर्णन)

बहुलाश्व उवाच

कति मुख्यानि तीर्थानि गिरिराजे महात्मनि । एतद्ब्रूहि महायोगिन् साक्षात्त्वं दिव्यदर्शनः ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

राजन् गोवर्द्धनः सर्वः सर्वतीर्थवरः स्मृतः । वृन्दावनं च गोलोकमुकुटोऽद्रिः प्रपूजितः ॥ २ ॥
गोपगोपीगवां रक्षाप्रदः कृष्णप्रियो महान् । पूर्णब्रह्मातपत्रो यस्तस्मात्तीर्थवरस्तु कः ॥ ३ ॥
इन्द्रयागं विनिर्भर्त्स्य सर्वैर्निजजनैः सह । यत्पूजनं समारेभे भगवान् भुवनेश्वरः ॥ ४ ॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशः परात्परः ॥ ५ ॥
यस्मिन्स्थितः सदा क्रीडामर्भकैः सह मैथिल । करोति तस्य माहात्म्यं वक्तुं नालं चतुर्मुखः ॥ ६ ॥
यत्र वै मानसी गंगा महापापौघनाशिनी । गोविन्दकुण्डं विशदं शुभं चन्द्रसरोवरम् ॥ ७ ॥
राधाकुण्डः कृष्णकुण्डो ललिताकुण्ड एव च । गोपालकुंडस्तत्रैव कुसुमाकर एव च ॥ ८ ॥
श्रीकृष्णमौलिसंस्पर्शान्मौलिचिह्ना शिलाऽभवत् । तस्या दर्शनमात्रेण देवमौलिर्भवेज्जनः ॥ ९ ॥
यस्यां शिलायां कृष्णेन चित्राणि लिखितानि च ।
अद्यापि चित्रिता पुण्या नाम्ना चित्रशिला गिरौ ॥१०॥
यां शिलामर्भकैः कृष्णो वादयन् क्रीडने रतः । वादनी सा शिला जाता महापापौघनाशिनी ॥११॥
यत्र श्रीकृष्णचन्द्रेण गोपालैः सह मैथिल । कृता वै कंदुकक्रीडा तत्क्षेत्रं कंदुकं स्मृतम् ॥१२॥
दृष्ट्वा शक्रपदं याति नत्वा ब्रह्मपदं च तत् । विलुठन् यस्य रजसा साक्षाद्विष्णुपदं व्रजेत् ॥१३॥

बहुलाश्वने पूछा—हे महायोगिन् ! आप साक्षात् दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न हैं; अतः यह बताइये कि महात्मा गिरिराजके आस-पास अथवा उनके ऊपर कितने मुख्य तीर्थ हैं ? ॥१॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! समूचा गोवर्धन पर्वत ही सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ माना जाता है। वृन्दावन साक्षात् गोलोक है और गिरिराजको उसका मुकुट बताकर सम्मानित किया गया है ॥ २ ॥ वह पर्वत गोपों, गोपियों तथा गौओंका रक्षक एवं महान् कृष्णप्रिय है। जो साक्षात् पूर्णब्रह्मका छत्र बन गया, उससे श्रेष्ठ तीर्थ दूसरा कौन है ? ॥ ३ ॥ भुवनेश्वर एवं साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णने, जो असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकके स्वामी तथा परात्पर पुरुष हैं, अपने समस्त जनोंके साथ इन्द्रयागको धता बताकर जिसका पूजन आरम्भ किया, उस गिरिराजसे अधिक सौभाग्यशाली तीर्थ कौन होगा ? ॥४॥५॥ हे मैथिल ! जिस पर्वतपर स्थित होकर भगवान् श्रीकृष्ण सदा ग्वाल-बालोंके साथ क्रीड़ा करते हैं, उसकी महिमाका वर्णन करनेमें तो चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं ॥६॥ जहाँ बड़े-बड़े पापोंकी राशिका नाश करनेवाली मानसी गङ्गा विद्यमान हैं, विशद गोविन्दकुण्ड तथा शुभ्र चन्द्रसरोवर शोभा पाते हैं ॥ ७ ॥ जहाँ राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, ललिताकुण्ड, गोपालकुण्ड तथा कुसुमसरोवर सुशोभित हैं, उस गोवर्धनकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णके मुकुटका स्पर्श पाकर जहाँकी शिला मुकुटके चिह्नसे सुशोभित हो गयी, उस शिलाका दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य देवशिरोमणि हो जाता है। जिस शिलापर श्रीकृष्णने चित्र अङ्कित किये हैं, वह चित्रित और पवित्र 'चित्रशिला' नामकी शिला आज भी गिरिराजके शिखरपर दृष्टिगोचर होती है ॥ ९ ॥ १० ॥ बालकोंके साथ क्रीड़ामें संलग्न श्रीकृष्णने जिस शिलाको बजाया था, वह महान् पापसमूहोंका नाश करनेवाली शिला 'वादिनी शिला' (बाजनी शिला) के नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ११ ॥ हे मैथिल ! जहाँ श्रीकृष्णने ग्वाल-बालोंके साथ कन्दुक-क्रीड़ा की थी, उसे 'कन्दुकक्षेत्र' कहते हैं ॥ १२ ॥ वहाँ 'शक्रपद' और 'ब्रह्मपद' नामक तीर्थ भी हैं, जिनका दर्शन और जिन्हें प्रणाम करके मनुष्य इन्द्रलोकमें जाता है। जो वहाँकी धूलमें लोटता है, वह साक्षात् विष्णुपदको प्राप्त होता है

गोपानामुष्णिषाण्यत्र चोरयामास माधवः । औष्णिपं नाम तत्तीर्थं महापापहरं गिरौ ॥१४॥

तत्रैकदा वै दधिविक्रयार्थं विनिर्गतो गोपवधूसमूहः ।
श्रुत्वा क्वणन्नूपुरशब्दमाराद्रुरोध तन्मार्गमनंगमोही ॥१५॥
वंशीधरो वेत्रवरेण गोपैः पुरश्च तासां विनिधाय पादम् ।
मह्यं करादानधनाय दानं देहीति गोपीर्निजगाद मार्गे ॥१६॥

गोप्य ऊचुः

वक्रस्त्वमेवासि समास्थितः पथि गोपार्भकैर्गोरसलम्पटो भृशम् ।
मात्रा च पित्रा सह कारयामो बलाद्भवंतं किल कंसबन्धने ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

कंसं हनिष्यामि महोग्रदण्डं सबांधवं मे शपथो गवां च ।
एवं करिष्यामि यदोः पुरे बलान्नेष्ये सदाहं गिरिराजभूमेः ॥१८॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा दधिपात्राणि बालैर्नीत्वा पृथक् पृथक् । भूपृष्ठे पोथयामास सानन्दं नन्दनन्दनः ॥१९॥
अहो एष परं धृष्टो निर्भयो नन्दनन्दनः । निरंकुशो भाषणीयो वने वीरः पुरेऽबलः ॥२०॥
ब्रुवामहे यशोदायै नन्दाय च किलाद्य वै । एवं वदंत्यस्ता गोप्यः सस्मिताः प्रययुर्गृहान् ॥२१॥
नीपपालाशपत्राणां कृत्वा द्रोणानि माधवः । जघास बालकैः सार्द्धं पिच्छलानि दधीनि च ॥२२॥
द्रोणाकाराणि पत्राणि बभूवुः शाखिनां तदा । तत्क्षेत्रं च महापुण्यं द्रोणं नाम नृपेश्वर ॥२३॥
दधिदानं तत्र कृत्वा पीत्वा पत्रधृतं दधि । नमस्कुर्यान्नरस्तस्य गोलोकान्न च्युतिर्भवेत् ॥२४॥
नेत्रे त्वाच्छाद्य यत्रैव लीनोऽभून्माधवोऽर्भकैः । तत्र तीर्थं लौकिकं च जातं पापप्रणाशनम् ॥२५॥

॥ १३ ॥ जहाँ माधवने गोपोंकी पगड़ियाँ चुरायी थीं, वह महापापहारी तीर्थ उस पर्वतपर 'औष्णीष' नामसे प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥ एक समय वहाँ दधि बेचनेके लिये गोपवधुओंका समुदाय आ निकला। उनके नूपुरोंकी झनकार सुनकर मदनमोहन श्रीकृष्णने निकट आकर उनकी राह रोक ली ॥ १५ ॥ वंशी और वेत्र धारण किये श्रीकृष्णने ग्वाल-बालोंद्वारा उनको चारों ओरसे घेर लिया और स्वयं उनके आगे पैर रखकर मार्गमें उन गोपियोंसे बोले—'इस मार्गपर हमारी ओरसे कर वसूल किया जाता है, सो तुमलोग हमारा दान दे दो' ॥ १६ ॥ गोपियाँ बोलीं—तुम बड़े टेढ़े हो, जो ग्वाल-बालोंके साथ राह रोककर खड़े हो गये। तुम बड़े गोरस-लम्पट हो। हमारा रास्ता छोड़ दो, नहीं तो माँ-बापसहित तुमको हम बलपूर्वक राजा कंसके कारागारमें डलवा देंगी ॥ १७ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—अरी! तुम कंसका क्या डर दिखाती हो? मैं गौओंकी शपथ खाकर कहता हूँ, महान् उग्रदण्ड धारण करनेवाले कंसको मैं उसके बन्धु-बान्धवों सहित मार डालूँगा; अथवा मैं उसे मथुरासे गोवर्धनकी घाटीमें खींच लाऊँगा ॥१८॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! यों कहकर बालकोंद्वारा पृथक्-पृथक् सबके दहीपात्र मँगवाकर नन्दनन्दनने बड़े आनन्दके साथ भूमिपर पटक दिये ॥ १९ ॥ गोपियाँ परस्पर कहने लगीं—'अहो! यह नन्दका लाला तो बड़ा ही ढीठ, निडर और निरङ्कुश है। इसके साथ तो बात भी नहीं करनी चाहिये। यह गाँवमें तो निर्बल बना रहता है और वनमें आकर वीर बन जाता है ॥ २० ॥ हम आज ही चलकर यशोदाजी और नन्दरायजीसे कहती हैं।'—यों कहकर गोपियाँ मुस्कराती हुई अपने घर लौट गयीं ॥ २१ ॥ इधर माधवने कदम्ब और पलाशके पत्तेके दोने बनाकर बालकोंके साथ चिकना चिकना दही ले-लेकर खाया ॥ २२ ॥ तबसे वहाँके वृक्षोंके पत्ते दोनेके आकारके होने लग गये। हे नृपेश्वर! वह परम पुण्य क्षेत्र 'द्रोण' नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २३ ॥ जो मनुष्य वहाँ दहीदान करके स्वयं भी पत्तेमें रखखे हुए दहीको पीकर उस तीर्थको नमस्कार करता है, उसकी गोलोकसे कभी च्युति नहीं होती ॥ २४ ॥ जहाँ नेत्र मूँदकर माधव बालकोंके साथ लुका-छिपीके खेल खेलते थे, वहाँ

कदम्बखण्डतीर्थं च लीलायुक्तं हरेः सदा। तस्य दर्शनमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥२६॥
यत्र वै राधया रासे शृंगारोऽकारि मैथिल। तत्र गोवर्द्धने जातं स्थले शृंगारमण्डलम् ॥२७॥
येन रूपेण कृष्णेन धृतो गोवर्द्धनो गिरिः। तद्रूपं विद्यते तत्र नृप शृङ्गारमण्डलम् ॥२८॥
अब्दाश्चतुःसहस्राणि तथा चाष्टौ शतानि च। गतास्तत्र कलेरादौ क्षेत्रे शृङ्गारमण्डले ॥२९॥
गिरिराजगुहामध्यात्सर्वेषां पश्यतां नृप। स्वतः सिद्धं च तद्रूपं हरेः प्रादुर्भविष्यति ॥३०॥
श्रीनाथं देवदमनं तं वदिष्यन्ति सज्जनाः। गोवर्द्धने गिरौ राजन् सदा लीलां करोति यः ॥३१॥
ये करिष्यंति नेत्राभ्यां तस्य रूपस्य दर्शनम्। ते कृतार्था भविष्यंति मैथिलेन्द्र कलौ जनाः ॥३२॥
जगन्नाथो रंगनाथो द्वारकानाथ एव च। बद्रीनाथश्चतुष्कोणे भारतस्यापि पर्वते ॥३३॥
मध्ये गोवर्द्धनस्यापि नाथोऽयं वर्तते नृप। पवित्रे भारते वर्षे पंच नाथाः सुरेश्वराः ॥३४॥
सद्धर्ममण्डपस्तम्बा आर्तत्राणपरायणाः। तेषां तु दर्शनं कृत्वा नरो नारायणो भवेत् ॥३५॥
चतुर्णां भुवि नाथानां कृत्वा यात्रां नरः सुधीः। न पश्येद्देवदमनं स न यात्राफलं लभेत् ॥३६॥
श्रीनाथं देवदमनं पश्येद्गोवर्द्धने गिरौ। चतुर्णां भुवि नाथानां यात्रायाः फलमाप्नुयात् ३७॥
ऐरावतस्य सुरभेः पादचिह्नानि यत्र वै। तत्र नत्वा नरः पापी वैकुण्ठं याति मैथिल ॥३८॥
हस्तचिह्नं पादचिह्नं श्रीकृष्णस्य महात्मनः। दृष्ट्वा नत्वा नरः कश्चित्साक्षात्कृष्णपदं व्रजेत् ॥३९॥
एतानि नृप तीर्थानि कुंडाद्यायतनानि च। अंगानि गिरिराजस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजतीर्थवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

'लौकिक' नामक पापनाशन तीर्थ हो गया ॥ २५ ॥ श्रीहरिकी लीलासे युक्त जो 'कदम्बखण्ड' नामक तीर्थ है, वहाँ सदा ही श्रीकृष्ण लीलारत रहते हैं। उस तीर्थका दर्शन करनेमात्रसे नर नारायण हो जाता है ॥ २६ ॥ हे मैथिल! जहाँ गोवर्धनपर रासमें श्रीराधाने शृङ्गार धारण किया था, वह स्थान 'शृङ्गारमण्डल' के नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २७ ॥ हे नरेश्वर! श्रीकृष्णने जिस रूपसे गोवर्धन पर्वतको धारण किया था, उनका वही रूप शृङ्गारमण्डल-तीर्थमें विद्यमान है ॥ २८ ॥ जब कलियुगके चार हजार आठ सौ वर्ष बीत जायँगे, तब शृङ्गारमण्डल क्षेत्रमें गिरिराजकी गुफाके मध्यभागसे सबके देखते-देखते श्रीहरिका स्वतःसिद्ध रूप प्रकट होगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे नरेश्वर! देवताओंका अभिमान चूर्ण करनेवाले उस स्वरूपको सज्जन पुरुष 'श्रीनाथजी' के नामसे पुकारेंगे। हे राजन्! गोवर्धन पर्वतपर श्रीनाथजी सदा ही लीला करते हैं ॥ ३१ ॥ हे मैथिलेन्द्र! कलियुगमें जो लोग अपने नेत्रोंसे श्रीनाथजीके रूपका दर्शन करेंगे, वे कृतार्थ हो जायँगे ॥ ३२ ॥ भगवान् भारतके चारों कोनोंमें क्रमशः जगन्नाथ, श्रीरङ्गनाथ, श्रीद्वारकानाथ और श्रीबद्रीनाथके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ३३ ॥ हे नरेश्वर! भारतके मध्यभागमें भी वे गोवर्धननाथके नामसे विद्यमान हैं। इस प्रकार पवित्र भारतवर्षमें ये पाँचों नाथ देवताओंके भी स्वामी हैं ॥ ३४ ॥ ये पाँचों नाथ सद्धर्मरूपी मण्डपके पाँच खंभे हैं और सदा आर्तजनोंकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। उन सबका दर्शन करके नर नारायण हो जाता है ॥ ३५ ॥ जो विद्वान् पुरुष इस भूतलपर चारों नाथोंकी यात्रा करके मध्यवर्ती देवदमन श्रीगोवर्धननाथका दर्शन नहीं करता, उसे यात्राका फल नहीं मिलता ॥ ३६ ॥ जो गोवर्धन पर्वतपर देवदमन श्रीनाथका दर्शन कर लेता है, उसे पृथ्वीपर चारों नाथोंकी यात्राका फल प्राप्त हो जाता है ॥ ३७ ॥ हे मैथिल! जहाँ ऐरावत हाथी और सुरभि गौके चरणोंके चिह्न हैं, वहाँ नमस्कार करके पापी मनुष्य भी वैकुण्ठधाममें चला जाता है ॥ ३८ ॥ जो कोई भी मनुष्य महात्मा श्रीकृष्णके हस्तचिह्न और चरणचिह्नका दर्शन कर लेता है, वह साक्षात् श्रीकृष्णके धाममें जाता है ॥ ३९ ॥ हे नरेश्वर! ये तीर्थ, कुण्ड और मन्दिर गिरिराजके अङ्गभूत हैं; उनको बता दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ४० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

(विभिन्न तीर्थोंमें गिरिराजके विभिन्न अङ्गोंकी स्थितिका वर्णन)

श्रीबहुलाश्व उवाच

केषु केषु तदङ्गेषु किं किं तीर्थं समाश्रितम् । वद देव महादेव त्वं परावरवित्तमः ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

यत्र यस्य प्रसिद्धिः स्यात्तदंगं परमं विदुः । क्रमतो नास्त्यंगचयो गिरिराजस्य मैथिल ॥ २ ॥
यथा सर्वगतं ब्रह्म सर्वांगानि च तस्य वै । विभूतेर्भावतः शश्वत्तथा वक्ष्यामि मानद ॥ ३ ॥
शृङ्गारमण्डलस्याधो मुखं गोवर्द्धनस्य च । यत्रान्नकूटं कृतवान् भगवान् व्रजवासिभिः ॥ ४ ॥
नेत्रे वै मानसी गंगा नासा चन्द्रसरोवरः । गोविन्दकुण्डो ह्यधरश्चिबुकं कृष्णकुण्डकः ॥ ५ ॥
राधाकुण्डं तस्य जिह्वा कपोलौ ललितासरः । गोपालकुण्डः कर्णश्च कर्णान्तः कुसुमाकरः ॥ ६ ॥
मौलिचिह्ना शिला तस्य ललाटं विद्धि मैथिल । शिरश्चित्रशिला तस्य ग्रीवा वै वादनी शिला ॥ ७ ॥
कांदुकं पार्श्वदेशश्च औष्णिपं कटिरुच्यते । द्रोणतीर्थं पृष्ठदेशे लौकिकं चोदरे स्मृतम् ॥ ८ ॥
कदम्बखण्डमुरसि जीवः शृङ्गारमण्डलम् । श्रीकृष्णपादचिह्नं तु मनस्तस्य महात्मनः ॥ ९ ॥
हस्तचिह्नं तथा बुद्धिरैरावतपदं पदम् । सुरभेः पादचिह्नेषु पक्षौ तस्य महात्मनः ॥१०॥
पुच्छकुण्डे तथा पुच्छं वत्सकुंडे बलं स्मृतम् । रुद्रकुण्डे तथा क्रोधं कामं शक्रसरोवरे ॥११॥
कुबेरतीर्थे चोद्योगं ब्रह्मतीर्थे प्रसन्नताम् । यमतीर्थे ह्यहंकारं वदन्तीत्थं पुराविदः ॥१२॥
एवमंगानि सर्वत्र गिरिराजस्य मैथिल । कथितानि मया तुभ्यं सर्वपापहराणि च ॥१३॥
गिरिराजविभूतिं च यः शृणोति नरोत्तमः । स गच्छेद्धाम परमं गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥१४॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—हे महाभाग ! हे देव !! आप पर, अपर—भूत और भविष्यके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः बताइये, गिरिराजके किन-किन अङ्गोंमें कौन-कौन-से तीर्थ विद्यमान हैं ? ॥ १ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! जहाँ जिस अङ्गकी प्रसिद्धि है, वही गिरिराजका उत्तम अङ्ग माना गया है। क्रमशः गणना करनेपर कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जो गिरिराजका अङ्ग न हो ॥ २ ॥ हे मानद ! जैसे ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है और सारे अङ्ग उसीके हैं, उसी प्रकार विभूति और भावकी दृष्टिसे गोवर्धनके जो शाश्वत अङ्ग माने जाते हैं, उनका मैं वर्णन करूँगा ॥ ३ ॥ शृङ्गारमण्डलके अधोभागमें श्रीगोवर्धनका मुख है, जहाँ भगवान्‌ने व्रजवासियोंके साथ अन्नकूटका उत्सव किया था ॥ ४ ॥ 'मानसी गङ्गा' गोवर्धनके दोनों नेत्र हैं, 'चन्द्रसरोवर' नासिका, 'गोविन्दकुण्ड' अधर और 'श्रीकृष्णकुण्ड' चिबुक है ॥ ५ ॥ 'राधाकुण्ड' गोवर्धनकी जिह्वा और 'ललितासरोवर' कपोल है। 'गोपालकुण्ड' कान और 'कुसुमसरोवर' कर्णान्तभाग है ॥ ६ ॥ हे मिथिलेश्वर ! जिस शिलापर मुकुटका चिह्न है, उसे गिरिराजका ललाट समझो। 'चित्रशिला' उनका मस्तक और 'वादिनीशिला' उनकी ग्रीवा है ॥ ७ ॥ 'कन्दुकतीर्थ' उनका पार्श्वभाग है और 'उष्णीषतीर्थ'को उनका कटिप्रदेश बतलाया जाता है। 'द्रोणतीर्थ' पृष्ठदेशमें और 'लौकिकतीर्थ' पेटमें है ॥ ८ ॥ 'कदम्बखण्ड' हृदयस्थलमें है। 'शृङ्गारमण्डलतीर्थ' उनका जीवात्मा है। 'श्रीकृष्ण-चरण-चिह्न' महात्मा गोवर्धनका मन है ॥ ९ ॥ 'हस्तचिह्नतीर्थ' बुद्धि तथा 'ऐरावतचरणचिह्न' उनका चरण है। सुरभिके चरणचिह्नोंमें महात्मा गोवर्धनके पंख हैं ॥ १० ॥ 'पुच्छकुण्ड'में पूँछकी भावना की जाती है। 'वत्सकुण्ड'में उनका बल, 'रुद्रकुण्ड'में क्रोध तथा 'इन्द्रसरोवर'में कामकी स्थिति है ॥ ११ ॥ 'कुबेरतीर्थ' उनका उद्योग-स्थल और 'ब्रह्मतीर्थ' प्रसन्नताका प्रतीक है। पुराणवेत्ता पुरुष 'यमतीर्थ'में गोवर्धनके अहंकारकी स्थिति बताते हैं ॥ १२ ॥ हे मैथिल ! इस प्रकार मैंने तुम्हें सर्वत्र गिरिराजके अङ्ग बताये, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं ॥ १३ ॥ जो नरश्रेष्ठ गिरिराजकी इस विभूतिको सुनता है, वह योगिजनदुर्लभ 'गोलोक'नामक

समुत्थितोऽसौ हरिवक्षसो गिरिर्गोवर्द्धनो नाम गिरीन्द्रराजराट् ।
समागतो ह्यत्र पुलस्त्यतेजसा यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते ॥१५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गिरिराजविभूतिवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

(गिरिराज गोवर्धनकी उत्पत्तिका वर्णन)

श्रीबहुलाश्व उवाच

अहो गोवर्द्धनः साक्षाद्गिरिराजो हरिप्रियः । तत्समानं न तीर्थं हि विद्यते भूतले दिवि ॥ १ ॥
कदा बभूव श्रीकृष्णवक्षसोऽयं गिरीश्वरः । एतद्वद महाबुद्धे त्वं साक्षाद्धरिमानसः ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

गोलोकोत्पत्तिवृत्तान्तं शृणु राजन्महामते । चतुष्पदार्थदं नृणामाद्यलीलासमन्वितम् ॥ ३ ॥
अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः । परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्प्रभुः ॥ ४ ॥
प्रत्यग्धामा स्वयंज्योती रममाणो निरन्तरम् । यत्र कालः कलयतामीश्वरो धाममानिनाम् ॥ ५ ॥
राजन्न प्रभवेन्माया न महांश्च गुणः कुतः । न विशंति क्वचिद्राजन् मनश्चित्तो मतिर्ह्यहम् ॥ ६ ॥
स्वधाम्नि ब्रह्म साकारमिच्छया व्यरचीकरत् । प्रथमं चाभवच्छेषो बिसश्वेतो बृहद्वपुः ॥ ७ ॥
तदुत्संगे महालोको गोलोको लोकवन्दितः । यं प्राप्य भक्तिसंयुक्तः पुनरावर्तते न हि ॥ ८ ॥
असंख्यब्रह्माण्डपतेर्गोलोकाधिपतेः प्रभोः । पुनः पादाब्जसंभूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ ९ ॥
पुनर्वामांसतस्तस्य कृष्णाऽभूत्सरितां वरा । रेजे शृङ्गारकुसुमैर्यथोष्णिङ्मुद्रिता नृप ॥१०॥

परमधाममें जाता है ॥ १४ ॥ गिरिराजोंका भी राजा गोवर्धन पर्वत श्रीहरिके वक्षःस्थलसे प्रकट हुआ है और पुलस्त्यमुनिके तेजसे इस व्रजमण्डलमें उसका शुभागमन हुआ है। उसके दर्शनसे मनुष्यका फिर इस लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता ॥ १५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥

श्रीबहुलाश्व बोले—हे देवर्षे! महान् आश्चर्यकी बात है, गोवर्धन साक्षात् पर्वतोंका राजा एवं श्रीहरिको बहुत ही प्रिय है। उसके समान दूसरा तीर्थ न तो इस भूतलपर है और न स्वर्गमें ही है ॥१॥ हे महामते! आप साक्षात् श्रीहरिके हृदय हैं। अतः अब यह बताइये कि यह गिरिराज श्रीकृष्णके वक्षःस्थलसे कब प्रकट हुआ ॥ २ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन्! हे महामते! गोलोकके प्राकट्यका वृत्तान्त सुनो—यह श्रीहरिकी आदिलीलासे सम्बद्ध है और मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाला है ॥ ३ ॥ प्रकृतिसे परे विद्यमान साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण सर्वसमर्थ, निर्गुण पुरुष एवं अनादि आत्मा हैं ॥ ४ ॥ उनका तेज अन्तर्मुखी है। वे स्वयंप्रकाश प्रभु निरन्तर रमणशील हैं, जिनपर धामाभिमानी गणनाशील देवताओंका ईश्वर 'काल' भी शासन करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ हे राजन्! माया भी जिनपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती, उनपर महत्तत्त्व और सत्त्वादि गुणोंका वश तो चल ही कैसे सकता है! हे राजन्! उनमें कभी मन, चित्त, बुद्धि और अहंकारका भी प्रवेश नहीं होता ॥ ६ ॥ उन्होंने अपने संकल्पसे अपने ही स्वरूपमें साकार ब्रह्मको व्यक्त किया। सबसे पहले विशालकाय शेषनागका प्रादुर्भाव हुआ, जो कमलनालके समान श्वेतवर्णके हैं ॥ ७ ॥ उन्हींकी गोदमें लोकवन्दित महालोक गोलोक प्रकट हुआ, जिसे पाकर भक्तियुक्त पुरुष फिर इस संसारमें नहीं लौटता ॥ ८ ॥ फिर असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति गोलोकनाथ भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दसे त्रिपथगा गङ्गा प्रकट हुईं ॥ ९ ॥ हे नरेश्वर! तत्पश्चात् श्रीकृष्णके बायें कंधेसे सरिताओंमें श्रेष्ठ यमुनाजीका प्रादुर्भाव हुआ, जो शृंगार-कुसुमोंसे उसी प्रकार सुशोभित हुईं, जैसे

श्रीरासमण्डलं दिव्यं हेमरत्नसमन्वितम् । नानाशृङ्गारपटलं गुल्फाभ्यां श्रीहरेः प्रभोः ॥११॥
सभाप्रांगणवीथीभिर्मंडपैः परिवेष्टितः । वसन्तमाधुर्यधरः कूजत्कोकिलसंकुलः ॥१२॥
मयूरैः षट्पदैर्व्याप्तः सरोभिः परिसेवितः ।
जातो निकुंजो जंघाभ्यां श्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥१३॥
वृन्दावनं च जानुभ्यां राजन्सर्ववनोत्तमम् । लीलासरोवरः साक्षादूरुभ्यां परमात्मनः ॥१४॥
कटिदेशात्स्वर्णभूमिर्दिव्यरत्नखचित्प्रभा । उदरे रोमराजिश्च माधव्यो विस्तृता लताः ॥१५॥
नानापक्षिगणैर्व्याप्ता ध्वनद्भ्रमरभूषिताः । सुपुष्पफलभारैश्च नताः सत्कुलजा इव ॥१६॥
श्रीनाभिपंकजात्तस्य पंकजानि सहस्रशः । सरःसु हरिलोकस्य तानि रेजुरितस्ततः ॥१७॥
त्रिवलिप्रांततो वायुर्मन्दगाम्यतिशीतलः । जत्रुदेशाच्छुभा जाता मथुरा द्वारकापुरी ॥१८॥
भुजाभ्यां श्रीहरेर्जाताः श्रीदामाद्यष्ट पार्षदाः । नन्दाश्च मणिबंधाभ्यामुपनन्दाः कराग्रतः ॥१९॥
श्रीकृष्णबाहुमूलाभ्यां सर्वे वै वृषभानवः । कृष्णरोमसमुद्भूताः सर्वे गोपगणा नृप ॥२०॥
श्रीकृष्णमनसो गावो वृषा धर्मधुरन्धराः । बुद्धेर्यवसगुल्मानि बभूवुर्मैथिलेश्वर ॥२१॥
तद्वामांसात्समुद्भूतं गौरं तेजः स्फुरत्प्रभम् । लीला श्रीर्भूश्च विरजा तस्माज्जाता हरेः प्रियाः॥२२॥
लीलावती प्रिया तस्य तां राधां तु विदुः परे ।
श्रीराधाया भुजाभ्यां तु विशाखा ललिता सखी ॥२३॥
सहचर्यस्तथा गोप्यो राधारोमोद्भवा नृप । एवं गोलोकरचनां चकार मधुसूदनः ॥२४॥

छपी हुई पगड़ीके वस्त्रकी शोभा होती है ॥ १० ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीहरिके दोनों गुल्फों (टखनों या घुटनों) से हेमरत्नोंसे युक्त दिव्य रासमण्डल और नाना प्रकारके शृंगार-साधनोंके समूहका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ११ ॥ इसके बाद महात्मा श्रीकृष्णकी दोनों पिंडलियोंसे निकुञ्ज प्रकट हुआ, जो सभाभवनों, आँगनों, गलियों और मण्डपोंसे घिरा हुआ था। वह निकुञ्ज वसन्तकी माधुरी धारण किये हुए था। उसमें कूजते हुए कोकिलोंकी मधुरध्वनि सर्वत्र व्याप्त थी ॥ १२ ॥ मोर, भ्रमर तथा विविध सरोवरोंसे भी वह परिशोभित एवं परिसेवित दिखायी देता था। हे राजन्! भगवान्‌के दोनों घुटनोंसे सम्पूर्ण वनोंमें उत्तम श्रीवृन्दावनका आविर्भाव हुआ। साथ ही उन साक्षात् परमात्माकी दोनों जाँघोंसे लीला-सरोवर प्रकट हुआ ॥ १३ ॥ १४ ॥ उनके कटिप्रदेशसे दिव्य रत्नोंद्वारा जटित प्रभामयी स्वर्णभूमिका प्राकट्य हुआ और उनके उदरमें जो रोमावलियाँ हैं, वे ही विस्तृत माधवी लताएँ बन गयीं ॥ १५ ॥ उन लताओंमें नाना प्रकारके पक्षियोंके झुंड सब ओर फैलकर कलरव कर रहे थे। गुंजार करते हुए भ्रमर उन लता-कुञ्जोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। वे लताएँ सुन्दर फूलों और फलोंके भारसे इस प्रकार झुकी हुई थीं, जैसे उत्तम कुलकी कन्याएँ लज्जा और विनयके भारसे नतमस्तक रहा करती हैं ॥ १६ ॥ भगवान्‌के नाभिकमलसे सहस्रों कमल प्रकट हुए, जो हरिलोकके सरोवरोंमें इधर-उधर सुशोभित हो रहे थे ॥ १७ ॥ भगवान्‌के त्रिबली-प्रान्तसे मन्दगामी और अत्यन्त शीतल समीर प्रकट हुआ और उनके गलेकी हँसुलीसे 'मथुरा' तथा 'द्वारका'—इन दो पुरियोंका प्रादुर्भाव हुआ ॥ १८ ॥ श्रीहरिकी दोनों भुजाओंसे 'श्रीदामा' आदि आठ पार्षद उत्पन्न हुए। कलाइयोंसे 'नन्द' और कराग्रभागसे 'उपनन्द' प्रकट हुए ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णकी भुजाओंके मूलभागोंसे समस्त वृषभानुओं-का प्रादुर्भाव हुआ। हे नरेश्वर! समस्त गोपगण श्रीकृष्णके रोमसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २० ॥ श्रीकृष्णके मनसे गौओं तथा धर्मधुरंधर वृषभोंका प्राकट्य हुआ। हे मैथिलेश्वर! उनकी बुद्धिसे घास और झाड़ियाँ प्रकट हुईं ॥ २१ ॥ भगवान्‌के बायें कंधेसे एक परम कान्तिमान् गौर तेज प्रकट हुआ; जिससे लीला, श्री, भूदेवी, विरजा तथा अन्यान्य हरिप्रियाएँ आविर्भूत हुईं ॥ २२ ॥ भगवान्‌की प्रियतमा जो 'श्रीराधा' हैं, उन्हींको दूसरे लोग 'लीलावती' या 'लीला'के नामसे भी जानते हैं। श्रीराधाकी दोनों भुजाओंसे 'विशाखा' और 'ललिता'—इन दो सखियोंका आविर्भाव हुआ ॥ २३ ॥ हे नरेश्वर! दूसरी-दूसरी जो सहचरी गोपियाँ हैं,

विधाय सर्वं निजलोकमित्थं श्रीराधया तत्र रराज राजन् ।
असंख्यलोकाण्डपतिः परात्मा परः परेशः परिपूर्णदेवः ॥२५॥
तत्रैकदा सुन्दररासमण्डले स्फुरत्क्वणन्नूपुरशब्दसंकुले ।
सुच्छत्रमुक्ताफलदामजावृतस्रवद्बृहद्बिन्दुविराजितांगणे ॥२६॥
श्रीमालतीनां सुवितानजालतः स्वतः स्रवत्सन्मकरन्दगन्धिते ।
मृदङ्गतालध्वनिवेणुनादिते सुकण्ठगीतादिमनोहरे परे ॥२७॥
श्रीसुन्दरीरासरसे मनोरमे मध्यस्थितं कोटिमनोजमोहनम् ।
जगाद राधापतिमूर्जया गिरा कृत्वा कटाक्षं रसदानकौशलम् ॥२८॥

राधोवाच

यदि रासे प्रसन्नोऽसि मम प्रेम्णा जगत्पते । तदाहं प्रार्थनां त्वां तु करोमि मनसि स्थिताम् ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच

इच्छां वरय वामोरु या ते मनसि वर्त्तते । न देयं यदि यद्वस्तु प्रेम्णा दास्यामि तत्प्रिये ॥३०॥

राधोवाच

वृन्दावने दिव्यनिकुंजपार्श्वे कृष्णातटे रासरसाय योग्यम् ।
रहःस्थलं त्वं कुरुतान्मनोज्ञं मनोरथोऽयं मम देवदेव ॥३१॥

श्रीनारद उवाच

तथाऽस्तु चोक्त्वा भगवान् रहोयोग्यं विचिन्तयन् ।
स्वनेत्रपंकजाभ्यां तु हृदयं संददर्श ह ॥३२॥
तदैव कृष्णहृदयाद्गोपीव्यूहस्य पश्यतः । निर्गतं सजलं तेजोऽनुरागस्येव चांकुरम् ॥३३॥
पतितं रासभूमौ तद्ववृधे पर्वताकृति । रत्नधातुमयं दिव्यं सुनिर्झरदरीवृतम् ॥३४॥

वे सब राधाके रोमसे प्रकट हुई हैं। इस प्रकार मधुसूदनने गोलोककी रचना की ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इस तरह अपने सम्पूर्ण लोककी रचना करके असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, परात्पर परमात्मा, परमेश्वर, परिपूर्ण देव श्रीहरि वहाँ श्रीराधाके साथ सुशोभित हुए ॥ २५ ॥ उस गोलोकमें एक दिन सुन्दर रासमण्डलमें, जहाँ बजते हुए नूपुरोंका मधुर शब्द गूँज रहा था, जहाँका आँगन सुन्दर छत्रमें लगी हुई मुक्ताफलकी लड़ियोंसे अमृतकी वर्षा होती रहनेके कारण रसकी बड़ी-बड़ी बूँदोंसे सुशोभित था ॥ २६ ॥ जो मालतीके चँदोवोंसे स्वतः झरते हुए मकरन्द और गन्धसे सरस एवं सुवासित था; जहाँ मृदङ्ग, तालध्वनि और वंशीनाद सब ओर व्याप्त था; जो मधुरकण्ठसे गाये गये गीत आदिके कारण परम मनोहर प्रतीत होता था तथा सुन्दरियोंके रासरससे परिपूर्ण एवं परम मनोरम था; उसके मध्यभागमें स्थित कोटिमनोजमोहन हृदय-वल्लभसे श्रीराधाने रसदान-कुशल कटाक्षपात करके गम्भीर वाणीमें कहा ॥२७॥२८॥ श्रीराधा बोलीं—हे जगदीश्वर। यदि आप रासमें मेरे प्रेमसे प्रसन्न हैं तो मैं आपके सामने अपने मनकी प्रार्थना व्यक्त करना चाहती हूँ ॥ २९ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे प्रिये! हे वामोरु!! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, सो मुझसे माँग लो। तुम्हारे प्रेमके कारण मैं तुम्हें अदेय वस्तु भी दे दूँगा ॥ ३० ॥ श्रीराधाने कहा—वृन्दावनमें यमुनाके तटपर दिव्य निकुञ्जके पार्श्वभागमें आप रासरसके योग्य कोई एकान्त एवं मनोरम स्थान प्रकट कीजिये। हे देवदेव ! यही मेरा मनोरथ है ॥ ३१ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तब 'तथास्तु' कहकर भगवान्ने एकान्त लीलाके योग्य स्थानका चिन्तन करते हुए नेत्रकमलोंद्वारा अपने हृदयकी ओर देखा ॥ ३२ ॥ उसी समय गोपी-समुदायके देखते-देखते श्रीकृष्णके हृदयसे अनुरागके मूर्तिमान् अङ्कुरकी भाँति एक सजल तेज प्रकट हुआ ॥ ३३ ॥ रासभूमिमें गिरकर वह पर्वतके आकारमें बदल गया। वह सारा-का-सारा दिव्य पर्वत रत्नधातुमय था। सुन्दर झरनों

कदंबबकुलाशोकलताजालमनोहरम् । मन्दारकुन्दवृन्दाढ्यं सुपक्षिगणसंकुलम् ॥३५॥
क्षणमात्रेण वैदेह लक्षयोजनविस्तृतम् । शतकोटिर्योजनानां लंबितं शेषवत्पुनः ॥३६॥
ऊर्ध्वं समुन्नतं जातं पंचाशत्कोटियोजनम् । करीन्द्रवत्स्थितं शश्वत्पंचाशत्कोटिविस्तृतम् ॥३७॥
कोटियोजनदीर्घांगैः शृङ्गानां शतकैः स्फुरत् । उच्चकैः स्वर्णकलशैः प्रासादमिव मैथिल ॥३८॥
गोवर्धनाख्यं तच्चाहुः शतशृंगं तथापरे । एवंभूतं तु तदपि वर्द्धितं मनसोत्सुकम् ॥३९॥
कोलाहले तदा जाते गोलोके भयविह्वले ।
वीक्ष्योत्थाय हरिः साक्षाद्धस्तेनाशु तताड तम् ॥४०॥
किं वर्द्धसे भो प्रच्छिन्नं लोकमाच्छाद्य तिष्ठसि । किं वा न चैते वसितुं तच्छान्तिमकरोद्धरिः ॥४१॥
संवीक्ष्य तं गिरिवरं प्रसन्ना भगवत्प्रिया । तस्मिन् रहःस्थले राजन् रराज हरिणा सह ॥४२॥
सोऽयं गिरिवरः साक्षाच्छ्रीकृष्णेन प्रणोदितः । सर्वतीर्थमयः श्यामो घनश्यामः सुरप्रियः ॥४३॥
भारतात्पश्चिमदिशि शाल्मलीद्वीपमध्यतः । गोवर्द्धनो जन्म लेभे पत्न्यां द्रोणाचलस्य च ॥४४॥
पुलस्त्येन समानीतो भारते व्रजमण्डले । वैदेह तस्यागमनं मया तुभ्यं पुरोदितम् ॥४५॥
यथा पुरा वर्द्धितुमुत्सुकोऽयं तथा पिधानं भविता भुवो वा ।
विचिन्त्य शापं मुनिना परेशो द्रोणात्मजायेति ददौ क्षयार्थम् ॥४६॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजोत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

और कन्दराओंसे उसकी बड़ी शोभा थी ॥ ३४ ॥ कदम्ब, बकुल, अशोक आदि वृक्ष तथा लता-जाल उसे और भी मनोहर बना रहे थे। मन्दार और कुन्दवृन्दसे सम्पन्न उस पर्वतपर भाँति-भाँतिके पक्षी कलरव कर रहे थे ॥ ३५ ॥ हे विदेहराज ! एक ही क्षणमें वह पर्वत एक लाख योजन विस्तृत और शेषकी तरह सौ कोटि योजन लंबा हो गया ॥ ३६ ॥ उसकी ऊँचाई पचास करोड़ योजनकी हो गयी। पचास कोटि योजनमें फैला हुआ वह पर्वत सदाके लिये गजराजके समान स्थित दिखायी देने लगा ॥ ३७ ॥ हे मैथिल ! उसके कोटि योजन विशाल सैकड़ों शिखर दीप्तिमान् होने लगे। उन शिखरोंसे गोवर्धन पर्वत उसी प्रकार सुशोभित हुआ, मानो सुवर्णमय उन्नत कलशोंसे कोई ऊँचा महल शोभा पा रहा हो ॥ ३८ ॥ कोई-कोई विद्वान् उस गिरिको गोवर्धन और दूसरे लोग 'शतशृङ्ग' कहते हैं। इतना विशाल होनेपर भी वह पर्वत मनसे उत्सुक सा होकर बढ़ने लगा ॥ ३९ ॥ इससे गोलोक भयसे विह्वल हो गया और वहाँ सब ओर कोलाहल मच गया। यह देख श्रीहरि उठे और अपने साक्षात् हाथसे शीघ्र ही उसे ताड़ना दी और बोले—'अरे ! प्रच्छन्नरूपसे बढ़ता क्यों जा रहा है ? तू सम्पूर्ण लोकोंको आच्छादित करके स्थित हो गया ? क्या ये लोक यहाँ निवास करना नहीं चाहते ?' यों कहकर श्रीहरिने उसे शान्त किया और उसका बढ़ना रोक दिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उस उत्तम पर्वतको प्रकट हुआ देख भगवत्प्रिया श्रीराधा बहुत प्रसन्न हुईं। हे राजन् ! वे उसके एकान्तस्थलमें श्रीहरिके साथ सुशोभित होने लगीं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार यह गिरिराज साक्षात् श्रीकृष्णसे प्रेरित होकर इस व्रजमण्डलमें आया है। यह सर्वतीर्थमय है। लता-कुञ्जोंसे श्याम आभा धारण करनेवाला यह श्रेष्ठ गिरि मेघकी भाँति श्याम तथा देवताओंका प्रिय है ॥ ४३ ॥ भारतसे पश्चिम दिशामें शल्मलिद्वीपके मध्यभागमें द्रोणाचलकी पत्नीके गर्भसे गोवर्धनने जन्म लिया ॥ ४४ ॥ महर्षि पुलस्त्य उसको भारतके व्रजमण्डलमें ले आये। हे विदेहराज ! गोवर्धनके आगमनकी बात मैं तुमसे पहले निवेदन कर चुका हूँ ॥ ४५ ॥ जैसे यह पहले गोलोकमें उत्सुकतापूर्वक बढ़ने लगा था, उसी तरह यहाँ भी बढ़े तो वह सारी पृथ्वीके लिये एक ढक्कन बन जायगा—यह सोचकर मुनिने द्रोणपुत्र गोवर्धनको प्रतिदिन क्षीण होनेका शाप दे दिया ॥ ४६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(गोवर्द्धन-शिलाके स्पर्शसे एक राक्षसका उद्धार)

श्रीनारद उवाच

अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण महापापं प्रणश्यति ॥ १ ॥
विजयो ब्राह्मणः कश्चिद्गौतमीतीरवासकृत् । आययौ स्वमृणं नेतुं मथुरां पापनाशिनीम् ॥ २ ॥
कृत्वा कार्यं गृहं गच्छन् गोवर्द्धनतटीं गतः । वर्तुलं तत्र पाषाणं चैकं जग्राह मैथिल ॥ ३ ॥
शनैः शनैर्वनोद्देशे निर्गतो व्रजमंडलात् । अग्रे ददर्श चायांतं राक्षसं घोररूपिणम् ॥ ४ ॥
हृदये च मुखं यस्य त्रयः पादा भुजाश्च षट् । हस्तत्रयं च स्थूलोष्ठो नासा हस्तसमुन्नता ॥ ५ ॥
सप्तहस्ता ललज्जिह्वा कंटकाभास्तनूरुहाः । अरुणे अक्षिणी दीर्घे दंता वक्रा भयंकराः ॥ ६ ॥
राक्षसो घुर्घुरं शब्दं कृत्वा चापि बुभुक्षितः । आययौ संमुखे राजन् ब्राह्मणस्य स्थितस्य च ॥ ७ ॥
गिरिराजोद्भवेनासौ पाषाणेन जघान तम् । गिरिराजशिलास्पर्शात्त्यक्त्वाऽसौ राक्षसीं तनुम् ॥८॥
पद्मपत्रविशालाक्षः श्यामसुन्दरविग्रहः । वनमाली पीतवासा मुकुटी कुंडलान्वितः ॥ ९ ॥
वंशीधरो वेत्रहस्तः कामदेव इवापरः । भूत्वा कृतांजलिर्विप्रं प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥१०॥

सिद्ध उवाच

धन्यस्त्वं ब्राह्मणश्रेष्ठ परत्राणपरायणः । त्वया विमोचितोऽहं वै राक्षसत्वान्महामते ॥११॥
पाषाणस्पर्शमात्रेण कल्याणं मे बभूव ह । न कोऽपि मां मोचयितुं समर्थो हि त्वया विना॥१२॥

श्रीब्राह्मण उवाच

विस्मितस्तव वाक्येऽहं न त्वां मोचयितुं क्षमः । पाषाणस्पर्शनफलं न जाने वद सुव्रत ॥१३॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! इस विषयमें एक पुराने इतिहासका वर्णन किया जाता है, जिसके श्रवणमात्रसे बड़े-बड़े पापोंका विनाश हो जाता है ॥ १ ॥ गौतमी गङ्गा (गोदावरी) के तटपर विजय नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहता था। वह अपना ऋण वसूल करनेके लिये पापनाशिनी मथुरापुरीमें आया ॥ २ ॥ अपना कार्य पूरा करके जब वह घरको लौटने लगा, तब गोवर्द्धनके तटपर गया। हे मिथिलेश्वर! वहाँसे उसने एक गोल पत्थर ले लिया ॥ ३ ॥ धीरे-धीरे वनप्रान्तमें होता हुआ जब व्रजमण्डलसे बाहर निकल गया, तब उसे अपने सामनेसे आता हुआ एक घोर राक्षस दिखायी दिया ॥ ४ ॥ उसका मुँह उसकी छातीमें था। उसके तीन पैर और छः भुजाएँ थीं, परंतु हाथ तीन ही थे। ओठ बहुत ही मोटे और नाक एक हाथ ऊँची थी ॥ ५ ॥ उसकी सात हाथ लंबी जीभ लपलपा रही थी, रोएँ काँटोंके समान थे, आँखें बड़ी-बड़ी और लाल-लाल थीं, दाँत टेढ़े-मेढ़े और भयंकर थे ॥ ६ ॥ हे राजन्! वह राक्षस बहुत भूखा था, अतः 'घुर-घुर' शब्द करता हुआ वहाँ खड़े ब्राह्मणके सामने आया ॥ ७ ॥ तब ब्राह्मणने गिरिराजके पत्थरसे उस राक्षसको मारा। गिरिराजकी शिलाका स्पर्श होते ही वह राक्षस-शरीर छोड़कर श्यामसुन्दररूपधारी हो गया। उसके विशाल नेत्र प्रफुल्ल कमलपत्रके समान शोभा पाने लगे। वनमाला, पीताम्बर, मुकुट और कुण्डलोंसे उसकी बड़ी शोभा होने लगी ॥ ८ ॥ ९ ॥ हाथमें वंशी और बेंत लिये वह दूसरे कामदेवके समान प्रतीत होने लगा। इस प्रकार दिव्यरूपधारी होकर उसने दोनों हाथ जोड़कर ब्राह्मणदेवताको बारंबार प्रणाम किया ॥ १० ॥ सिद्ध बोला—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुम धन्य हो; क्योंकि दूसरोंको संकटसे बचानेके पुण्य-कार्यमें लगे हुए हो। हे महामते! आज तुमने मुझे राक्षसकी योनिसे छुटकारा दिला दिया ॥११॥ इस पाषाणके स्पर्शमात्रसे मेरा कल्याण हो गया। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मेरा उद्धार करनेमें समर्थ नहीं था ॥ १२ ॥ ब्राह्मण बोले—हे सुव्रत! मैं तो तुम्हारी बात सुनकर आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। मुझमें तुम्हारा उद्धार करनेकी शक्ति नहीं है। पाषाणके स्पर्शका क्या फल है, यह भी मैं नहीं जानता; अतः तुम्हीं बताओ ॥ १३ ॥

सिद्ध उवाच

गिरिराजो हरे रूपं श्रीमान् गोवर्द्धनो गिरिः। तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम् ॥१४॥
गन्धमादनयात्रायां यत्फलं लभते नरः। तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं गिरिराजस्य दर्शने ॥१५॥
पंचवर्षसहस्राणि केदारे यत्तपःफलम्। तच्च गोवर्द्धने विप्र क्षणेन लभते नरः ॥१६॥
मलयाद्रौ स्वर्णभारदानस्यापि च यत्फलम्। तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं गिरिराजे हि मासिकम् ॥१७॥
पर्वते मंगलप्रस्थे यो दद्याद्धेमदक्षिणाम्। स याति विष्णुसारूप्यं युक्तः पापशतैरपि ॥१८॥
तत्पदं हि नरो याति गिरिराजस्य दर्शनात्। गिरिराजसमं पुण्यमन्यत्तीर्थं न विद्यते ॥१९॥
ऋषभाद्रौ कूटकाद्रौ कोलकाद्रौ तथा नरः। सुवर्णशृङ्गयुक्तानां गवां कोटीर्ददाति यः ॥२०॥
महापुण्यं लभेत्सोऽपि विप्रान्संपूज्य यत्नतः। तस्माल्लक्षगुणं पुण्यं गिरौ गोवर्द्धने द्विज ॥२१॥
ऋष्यमूकस्य सह्यस्य तथा देवगिरेः पुनः। यात्रायां लभते पुण्यं समस्ताया भुवः फलम् ॥२२॥
गिरिराजस्य यात्रायां तस्मात्कोटिगुणं फलम्। गिरिराजसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥२३॥
श्रीशैले दश वर्षाणि कुण्डे विद्याधरे नरः। स्नानं करोति सुकृती शतयज्ञफलं लभेत् ॥२४॥
गोवर्द्धने पुच्छकुण्डे दिनैकं स्नानकृन्नरः। कोटियज्ञफलं साक्षात्पुण्यमेति न संशयः ॥२५॥
वेंकटाद्रौ वारिधारे महेन्द्रे विन्ध्यपर्वते। यज्ञं कृत्वा ह्यश्वमेधं नरो नाकपतिर्भवेत् ॥२६॥
गोवर्द्धनेऽस्मिन्यो यज्ञं कृत्वा दत्त्वा सुदक्षिणाम्। नाके पदं संविधाय स विष्णोः पदमाव्रजेत् ॥२७॥
चित्रकूटे पयस्विन्यां श्रीरामनवमीदिने। पारियात्रे तृतीयायां वैशाखस्य द्विजोत्तम ॥२८॥

सिद्धने कहा—हे ब्रह्मन्! श्रीमान् गिरिराज गोवर्द्धन पर्वत साक्षात् श्रीहरिका रूप है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ॥ १४ ॥ गन्धमादनकी यात्रा करनेसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, उससे कोटिगुना पुण्य गिरिराजके दर्शनसे होता है ॥ १५ ॥ हे विप्रवर! केदारतीर्थमें पांच हजार वर्षोंतक तपस्या करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल गोवर्द्धन पर्वतपर तप करनेसे मनुष्यको क्षणभरमें प्राप्त हो जाता है ॥ १६ ॥ मलयाचलपर एक भार स्वर्णका दान करनेसे जिस पुण्यफलकी प्राप्ति होती है, उससे कोटि-गुना पुण्य गिरिराजपर एक माशा सुवर्णका दान करनेसे ही मिल जाता है ॥ १७ ॥ जो मङ्गलप्रस्थ पर्वतपर सोनेकी दक्षिणा देता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त होनेपर भी भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है ॥ १८ ॥ भगवान्के उसी पदको मनुष्य गिरिराजका दर्शन करनेमात्रसे पा लेता है। गिरिराजके समान पुण्य-तीर्थ दूसरा कोई नहीं है ॥ १९ ॥ ऋषभ पर्वत, कूटक पर्वत तथा कोलक पर्वतपर सोनेसे मढ़े सींगवाली एक करोड़ गौओंका जो दान करता है ॥ २० ॥ वह भी ब्राह्मणोंका यत्नपूर्वक पूजन करके महान् पुण्यका भागी होता है। हे ब्रह्मन्! उसकी अपेक्षा भी लाखगुना पुण्य गोवर्द्धन पर्वतकी यात्रा करनेमात्रसे सुलभ होता है ॥ २१ ॥ ऋष्यमूक, सह्यगिरि तथा देवगिरिकी एवं सम्पूर्ण पृथ्वीकी यात्रा करनेपर मनुष्य जिस पुण्यफलको पाता है, गिरिराज गोवर्धनकी यात्रा करनेपर उससे भी कोटिगुना अधिक फल उसे प्राप्त हो जाता है। अतः गिरिराजके समान कोई तीर्थ न तो पहले कभी हुआ है और न भविष्यत्कालमें होगा ही ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीशैलपर दस वर्षोंतक रहकर वहांके विद्याधरकुण्डमें जो प्रतिदिन स्नान करता है, वह पुण्यात्मा मनुष्य सौ यज्ञोंके अनुष्ठानका फल पा लेता है ॥ २४ ॥ परंतु गोवर्द्धन पर्वतके पुच्छकुण्डमें एक दिन स्नान करनेवाला मनुष्य कोटियज्ञोंके साक्षात् अनुष्ठानका पुण्यफल पा लेता है, इसमें संशय नहीं है ॥ २५ ॥ वेङ्कटाचल, वारिधार, महेन्द्र और विन्ध्याचलपर एक अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके मनुष्य स्वर्गलोकका अधिपति हो जाता है ॥ २६ ॥ परंतु इस गोवर्धन पर्वतपर जो यज्ञ करके उत्तम दक्षिणा देता है, वह स्वर्गलोकके मस्तकपर पैर रखकर भगवान् विष्णुके धाममें चला जाता है ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम! चित्रकूट पर्वतपर श्रीरामनवमीके दिन पयस्विनी (मन्दाकिनी) में, वैशाखकी तृतीयाको पारियात्र पर्वतपर, पूर्णिमाको कुकुराचलपर, द्वादशीके दिन नीलाचलपर और सप्तमीको इन्द्रकील पर्वतपर जो स्नान, दान और तप आदि पुण्यकर्म किये जाते हैं,

कुकुराद्रौ च पूर्णायां नीलाद्रौ द्वादशीदिने । इन्द्रकीले च सप्तम्यां स्नानं दानं तपःक्रियाः ॥२९॥
तत्सर्वं कोटिगुणितं भवतीत्थं हि भारते । गोवर्द्धने तु तत्सर्वमनन्तं जायते द्विज ॥३०॥
गोदावर्यां गुरौ सिंहे मायापुर्यां तु कुंभगे । पुष्करे पुष्यनक्षत्रे कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥३१॥
चन्द्रग्रहे तु काश्यां वै फाल्गुने नैमिषे तथा । एकादश्यां शूकरे च कार्तिक्यां गणमुक्तिदे ॥३२॥
जन्माष्टम्यां मधोः पुर्यां खाण्डवे द्वादशीदिने । कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु वटेश्वरमहावटे ॥३३॥
मकरार्के प्रयागे तु बर्हिष्मत्यां हि वैधृतौ । अयोध्यासरयूतीरे श्रीरामनवमीदिने ॥३४॥
एवं शिवचतुर्दश्यां वैजनाथशुभे वने । तथा दर्शे सोमवारे गङ्गासागरसंगमे ॥३५॥
दशम्यां सेतुबन्धे च श्रीरङ्गे सप्तमीदिने । एषु दानं तपः स्नानं जपो देवद्विजार्चनम् ॥३६॥
तत्सर्वं कोटिगुणितं भवतीह द्विजोत्तम । तत्तुल्यं पुण्यमाप्नोति गिरौ गोवर्द्धने वरे ॥३७॥
गोविन्दकुण्डे विशदे यः स्नाति कृष्णमानसः । प्राप्नोति कृष्णसारूप्यं मैथिलेन्द्र न संशयः ॥३८॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । मानसीगङ्गया तुल्यं न भवंत्यत्र नो गिरौ ॥३९॥
त्वया विप्र कृतं साक्षाद्गिरिराजस्य दर्शनम् । स्पर्शनं च ततः स्नानं न त्वत्तोऽप्यधिको भुवि॥४०॥
न मन्यसे चेन्मां पश्य महापातकिनं परम् । गोवर्द्धनशिलास्पर्शात्कृष्णसारूप्यतां गतम् ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजमाहात्म्यं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

(सिद्धके द्वारा अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन)

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा सिद्धवाक्यं ब्राह्मणो विस्मयं गतः । पुनः पप्रच्छ तं राजन् गिरिराजप्रभाववित् ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच

पुरा जन्मनि कस्त्वं भोस्त्वया किं कलुषं कृतम् । सर्वं वद महाभाग त्वं साक्षाद्दिव्यदर्शनः ॥ २ ॥

वे सब कोटिगुने हो जाते हैं। हे ब्रह्मन्! इसी प्रकार भारतवर्षके गोवर्द्धन तीर्थमें जो स्नानादि शुभ कर्म किया जाता है, वह सब अनन्तगुना हो जाता है। २८-३० ॥ बृहस्पतिके सिंहराशिमें स्थित होनेपर गोदावरीमें, कुम्भराशिपर हरद्वारमें, पुष्यनक्षत्रपर पुष्करमें, सूर्यग्रहणपर कुरुक्षेत्र तथा चन्द्रग्रहणपर काशीमें, एकादशीके दिन शूकरतीर्थमें, कार्तिककी पूर्णिमाको गढ़मुक्तेश्वरमें, जन्माष्टमीके दिन मथुरामें, द्वादशीके दिन खाण्डव-वनमें, कार्तिकी पूर्णिमाको वटेश्वर नामक महावटके पास, मकर-संक्रान्ति लगनेपर प्रयागतीर्थमें, वैधृतियोग आनेपर बर्हिष्मतीमें, श्रीरामनवमीके दिन अयोध्यागत सरयूके तटपर, शिव-चतुर्दशीको शुभ वैद्यनाथ-वनमें, सोमवारगत अमावस्याको गङ्गासागर-संगममें, दशमीको सेतुबन्धपर तथा सप्तमीको श्रीरङ्गतीर्थमें किया हुआ दान, तप, स्नान, जप, देवपूजन, ब्राह्मणपूजन आदि जो शुभकर्म किया जाता है, हे द्विजोत्तम! वह कोटिगुना हो जाता है। इन सबके समान पुण्य-फल केवल गोवर्धन पर्वतकी यात्रा करनेसे प्राप्त हो जाता है ॥३१-३७॥ हे मैथिलेन्द्र! जो भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगाकर निर्मल गोविन्दकुण्डमें स्नान करता है, वह भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ हमारे गोवर्द्धन पर्वतपर जो मानसी-गङ्गा हैं, उनमें डुबकी लगानेकी समानता करनेवाले सहस्रों अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञ भी नहीं हैं ॥ ३९ ॥ हे विप्रवर! आपने साक्षात् गिरिराजका दर्शन, स्पर्श तथा वहाँ स्नान किया है, अतः इस भूतलपर आपसे बढ़कर पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं है ॥४०॥ यदि आपको विश्वास न हो तो मेरी ओर देखिये। मैं बहुत बड़ा महापातकी था, किंतु गोवर्द्धनकी शिलाका स्पर्श होनेमात्रसे मैंने भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त कर लिया ॥ ४१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! सिद्धकी यह बात सुनकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। गिरिराजके

सिद्ध उवाच

पुरा जन्मनि वैश्योऽहं धनी वैश्यसुतो महान् । आबाल्याद्द्यूतनिरतो विटगोष्ठीविशारदः ॥ ३ ॥
वेश्यारतः कुमार्गोऽहं मदिरामदविह्वलः । मात्रा पित्रा भार्ययापि भर्त्सितोऽहं सदा द्विज ॥ ४ ॥
एकदा तु मया विप्र पितरौ गरदानतः । मारितौ च तथा भार्या खड्गेन पथि मारिता ॥ ५ ॥
गृहीत्वा तद्धनं सर्वं वेश्यया सहितः खलः । दक्षिणाशां च गतवान् दस्युकर्माऽतिनिर्दयः ॥ ६ ॥
एकदा तु मया वेश्या निःक्षिप्ता ह्यंधकूपके । दस्युना हि मया पाशैर्मारिताः शतशो नराः ॥ ७ ॥
धनलोभेन भो विप्र ब्रह्महत्याशतं कृतम् । क्षत्रहत्या वैश्यहत्याः शूद्रहत्याः सहस्रशः ॥ ८ ॥
एकदा मांसमानेतुं मृगान् हंतुं वने गतम् । सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टो दुष्टं मां निधनं गतम् ॥ ९ ॥
संताड्य मुद्गरैर्घोरैर्यमदूता भयंकराः । बद्ध्वा मां नरकं निन्युर्महापातकिनं खलम् ॥१०॥
मन्वन्तरं तु पतितः कुम्भीपाके महाखले । कल्पैकं तप्तसूर्मौ च महादुःखं गतः खलः ॥११॥
चतुरशीतिलक्षाणां नरकाणां पृथक् पृथक् । वर्षं वर्षं निपतितो निर्गतोऽहं यमेच्छया ॥१२॥
ततस्तु भारते वर्षे प्राप्तोऽहं कर्मवासनाम् । दशवारं सूकरोऽहं व्याघ्रोऽहं शतजन्मसु ॥१३॥
उष्ट्रोऽहं जन्मशतकं महिषः शतजन्मसु । सर्पोऽहं जन्मसाहस्रं मारितो दुष्टमानवैः ॥१४॥
एवं वर्षायुतांते तु निर्जले विपिने द्विज । राक्षसश्चेदृशो जातो विकरालो महाखलः ॥१५॥
कस्य शूद्रस्य देहं वै समारुह्य व्रजं गतः । वृन्दावनस्य निकटे यमुना निकटाच्छुभात् ॥१६॥
समुत्थिता यष्टिहस्ताः श्यामलाः कृष्णपार्षदाः । तैस्ताडितो धर्षितोऽहं व्रजभूमौ पलायितः ॥१७॥

प्रभावको जानकर उसने सिद्धसे पुनः प्रश्न किया ॥ १ ॥ ब्राह्मणने पूछा—हे महाभाग ! इस समय तो तुम साक्षात् दिव्यरूपधारी दिखायी देते हो। परंतु पूर्वजन्ममें तुम कौन थे और तुमने कौन-सा पाप किया था ? ॥ २ ॥ सिद्धने कहा—पूर्वजन्ममें मैं एक धनी वैश्य था। अत्यन्त समृद्ध वैश्य-बालक होनेके कारण मुझे बचपनसे ही जुआ खेलनेकी आदत पड़ गयी थी। धूर्तों और जुआरियोंकी गोष्ठीमें मैं सबसे चतुर समझा जाता था ॥३॥ आगे चलकर मैं एक वेश्यामें आसक्त हो गया तथा कुपथपर चलने और मदिराके मदसे उन्मत्त रहने लगा। हे ब्रह्मन्! इसके कारण मुझे अपने माता-पिता और पत्नीकी ओरसे बड़ी फटकार मिलने लगी ॥४॥ एक दिन मैंने माँ-बापको तो जहर देकर मार डाला और अपनी पत्नीको साथ लेकर कहीं जानेके बहाने निकला और रास्तेमें मैंने तलवारसे काटकर उसकी हत्या कर दी ॥५॥ इस तरह उन सबके धनको हथियाकर मैं उस वेश्याके साथ दक्षिण दिशामें चला गया। यह है मेरी दुष्टताका परिचय। दक्षिण जाकर मैं अत्यन्त निर्दयतापूर्वक लूट-पाटका काम करने लगा ॥ ६ ॥ एक दिन उस वेश्याको भी मैंने अँधेरे कुएँमें धकेल दिया। डाकू तो मैं हो ही गया था, मैंने फाँसी लगाकर सैकड़ों मनुष्योंको मौतके घाट उतार दिया ॥७॥ हे विप्रवर! धनके लोभसे मैंने सैकड़ों ब्रह्महत्याएँ कीं। क्षत्रिय-हत्या, वैश्य-हत्या और शूद्र-हत्याकी संख्या तो हजारोंतक पहुँच गयी होगी ॥ ८ ॥ एक दिनकी बात है कि मैं मांस लानेके निमित्त मृगोंका वध करनेके लिये वनमें गया। वहाँ एक सर्पके ऊपर मेरा पैर पड़ गया और उसने मुझे डँस लिया। फिर तो तत्काल मेरी मृत्यु हो गयी और यमराजके भयंकर दूतोंने आकर मुझ दुष्ट और महापातकीको भयानक मुद्गरोंसे पीट-पीटकर बाँधा और नरकमें पहुँचा दिया ॥ ९ ॥ १० ॥ मुझे महादुष्ट मानकर 'कुम्भीपाक'में डाला गया और वहाँ एक मन्वन्तरतक रहना पड़ा। तत्पश्चात् 'तप्तसूर्मि' नामक नरकमें मुझ दुष्टको एक कल्पतक महान् दुःख भोगना पड़ा ॥ ११ ॥ इस तरह चौरासी लाख नरकोंमेंसे प्रत्येकमें अलग-अलग यमराजकी इच्छासे मैं एक-एक वर्षतक पड़ता और निकलता रहा ॥ १२ ॥ तदनन्तर भारतवर्षमें कर्मवासनाके अनुसार मेरा दस बार तो सूअरकी योनिमें जन्म हुआ और सौ बार व्याघ्रकी योनिमें ॥ १३ ॥ फिर सौ जन्मोंतक ऊँट और उतने ही जन्मोंतक भैंसा हुआ। इसके बाद एक सहस्र जन्मतक मुझे सर्पकी योनिमें रहना पड़ा। फिर कुछ दुष्ट मनुष्योंने मिलकर मुझे मार डाला ॥ १४ ॥ हे द्विप्रवर ! इस तरह दस हजार वर्ष बीतनेपर जलशून्य विपिनमें मैं ऐसा विकराल और महाखल राक्षस हुआ, जैसा कि तुमने अभी-अभी देखा है ॥ १५ ॥ एक दिन

बुभुक्षितो बहुदिनैस्त्वां खादितुमिहागतः । तावत्त्वया ताडितोऽहं गिरिराजाश्मना मुने ॥१८॥
श्रीकृष्णकृपया साक्षात्कल्याणं मे बभूव ह ।

श्रीनारद उवाच

एवं प्रवदतस्तस्य गोलोकाच्च महारथः ॥१९॥
सहस्रादित्यसंकाशो हयायुतसमन्वितः ॥२०॥
सहस्रचक्रध्वनिभृल्लक्षपार्षदमण्डितः । मंजीरकिंकिणीजालो मनोहरतरो नृप ॥२१॥
पश्यतस्तस्य विप्रस्य तमानेतुं समागतः । तमागतं रथं दिव्यं नेमतुर्विप्रनिर्जरौ ॥२२॥
ततः समारुह्य रथं स सिद्धो विरंजयन्मैथिल मण्डलं दिशाम् ।
श्रीकृष्णलोकं प्रययौ परात्परं निकुञ्जलीलाललितं मनोहरम् ॥२३॥
विप्रोऽपि तस्मात्पुनरागतो गिरिं गोवर्द्धनं सर्वगिरीन्द्रदैवतम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य पुनः प्रणम्य तं ययौ गृहं मैथिल तत्प्रभाववित् ॥२४॥
इदं मया ते कथितं प्रचण्डं सुमुक्तिदं श्रीगिरिराजखण्डम् ।
श्रुत्वा जनः पाप्यपि न प्रचण्डं स्वप्नेऽपि पश्येद्यममुग्रदण्डम् ॥२५॥
यः शृणोति गिरिराजयशस्यं गोपराजनवकेलिरहस्यम् ।
देवराज इव सोऽत्र समेति नन्दराज इव शान्तिममुत्र ॥२६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीगिरिराजखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीगिरिराजप्रभाववर्णने सिद्धमोक्षो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

किसी शूद्रके शरीरमें आविष्ट होकर व्रजमें गया । वहाँ वृन्दावनके निकटवर्ती यमुनाके सुन्दर तटसे हाथमें छड़ी लिये हुए कुछ श्यामवर्णवाले श्रीकृष्णके पार्षद उठे और मुझे पीटने लगे । उनके द्वारा तिरस्कृत होकर मैं व्रजभूमिसे इधर भाग आया ॥ १६ ॥ १७ ॥ तबसे बहुत दिनोंतक मैं भूखा रहा और तुम्हें खा जानेके लिये यहाँ आया । इतनेमें ही तुमने मुझे गिरिराजके पत्थरसे मार दिया । हे मुने ! मुझपर साक्षात् श्रीकृष्णकी कृपा हो गयी, जिससे मेरा कल्याण हो गया ॥ १८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! वह इस प्रकार कह ही रहा था कि गोलोकसे एक विशाल रथ उतरा ॥ १९ ॥ वह सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी था और उसमें दस हजार घोड़े जुते हुए थे ॥ २० ॥ हे नरेश्वर ! उससे हजारों पहियोंके चलनेकी ध्वनि होती थी । लाखों पार्षद उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । मञ्जीर और क्षुद्र-घण्टिकाओंके समूहसे आच्छादित वह रथ अत्यन्त मनोहर दिखायी देता था ॥ २१ ॥ ब्राह्मणके देखते-देखते उस सिद्धको लेनेके लिये जब वह रथ आया, तब ब्राह्मण और सिद्ध दोनोंने उस दिव्य रथको नमस्कार किया ॥ २२ ॥ हे मिथिलेश्वर ! तदनन्तर वह सिद्ध उस रथपर आरूढ़ हो दिङ्मण्डलको प्रकाशित करता हुआ परात्पर श्रीकृष्णके लोकमें पहुँच गया, जो निकुञ्ज-लीलाके कारण ललित एवं परम मनोहर है ॥ २३ ॥ हे मैथिल ! वह ब्राह्मण भी गोवर्द्धनका प्रभाव जान गया था, इसलिये वहाँसे लौटकर समस्त गिरिराजके देवता गोवर्द्धन गिरिपर आया और उसकी परिक्रमा एवं उसे प्रणाम करके अपने घरको गया ॥२४॥ हे राजन् ! इस प्रकार मैंने यह विचित्र एवं उत्तम मोक्षदायक श्रीगिरिराजखण्ड तुम्हें कह सुनाया । पापी मनुष्य भी इसका श्रवण करके स्वप्नमें भी कभी उग्रदण्डधारी प्रचण्ड यमराजका दर्शन नहीं करता ॥ २५ ॥ जो मनुष्य गिरिराजके यशसे परिपूर्ण गोपराज श्रीकृष्णकी नूतन केलिके रहस्यको सुनता है, वह देवराज इन्द्रकी भाँति इस लोकमें सुख भोगता है और नन्दराजके समान परलोकमें शान्तिका अनुभव करता है ॥ २६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां गिरिराजखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकाया-मेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ इति तृतीयो गिरिराजखण्डः समाप्तः ॥

* श्रीकृष्णः शरणं मम *

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

'प्रियंवदा'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकित

(माधुर्यखण्डः ४)

अथ प्रथमोऽध्यायः

अतसीकुसुमोपमेयकांतिर्यमुनाकूलकदम्बमध्यवर्ती ।
नवगोपवधूविलासशाली वनमाली वितनोतु मंगलानि ॥ १ ॥
परिकरीकृतपीतपटं हरिं शिखिकिरीटनतीकृतकंधरम् ।
लकुटवेणुकरं चलकुण्डलं पटुतरं नटवेषधरं भजे ॥ २ ॥

बहुलाश्व उवाच

श्रुतिरूपादयो गोप्यो भूतपूर्वा वरान्मुने । कथं श्रीकृष्णचन्द्रेण जाताः पूर्णमनोरथाः ॥ ३ ॥
गोपालकृष्णचरितं पवित्रं परमाद्भुतम् । एतद्वद महाबुद्धे त्वं परावरवित्तमः ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच

श्रुतिरूपाश्च या गोप्यो गोपानां सुकुले व्रजे । लेभिरे जन्म वैदेह शेषशायिवराच्छ्रुतात् ॥ ५ ॥
कमनीयं नन्दसूनुं वीक्ष्य वृन्दावने च ताः । वृन्दावनेश्वरीं वृन्दां भेजिरे तद्वरेच्छया ॥ ६ ॥
वृन्दादत्ताद्वरादाशु प्रसन्नो भगवान्हरिः । नित्यं तासां गृहे याति रासार्थं भक्तवत्सलः ॥ ७ ॥

'जिनकी अङ्गकान्तिको अलसीके फूलकी उपमा दी जाती है, जो यमुनाकूलवर्ती कदम्बवृक्षके मूलभागमें विद्यमान हैं तथा नूतन गोपाङ्गनाओंके साथ लीला-विलास करते हुए अत्यन्त शोभा पा रहे हैं, वे वनमाली श्रीकृष्ण मङ्गलका विस्तार करें' ॥ १ ॥ जिन्होंने पीताम्बरकी फेंट बाँध रक्खी है, जिनके मस्तकपर मोरपंखका मुकुट सुशोभित है और गर्दन एक ओर झुकी हुई है, जो लकुटी और वंशी हाथमें लिये हुए हैं और जिनके कानोंमें चञ्चल कुण्डल झलमला रहे हैं, उन परम पटु, नटवेषधारी श्रीकृष्णका मैं भजन (ध्यान) करता हूँ ॥ २ ॥ राजा बहुलाश्वने पूछा—हे मुने ! श्रुतिरूपा आदि गोपियोंने, जो पूर्वप्रदत्त वरके अनुसार पहले ही व्रजमें प्रकट हो चुकी थीं, किस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका साहचर्य पाकर अपना मनोरथ पूर्ण किया ? ॥ ३ ॥ हे महाबुद्धे ! गोपाल श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र परम अद्भुत है, इसे कहिये । क्योंकि आप परावरवेत्ताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे विदेहराज ! श्रुतिरूपा जो गोपियाँ थीं, वे शेषशायी भगवान् विष्णुके पूर्वकथित वरसे व्रजवासी गोपोंके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुईं ॥ ५ ॥ उन सबने वृन्दावनमें परम कमनीय नन्दनन्दनका दर्शन करके उन्हें वररूपमें पानेकी इच्छासे वृन्दावनेश्वरी वृन्दादेवीकी समाराधना की ॥ ६ ॥ वृन्दाके दिये हुए वरसे भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरि उनके ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो गये

एकदा तु निशीथिन्या व्यतीते प्रहरद्वये । रासार्थं भगवान्कृष्णः प्राप्तवांस्तद्गृहान्नृप ॥ ८ ॥
तदा उत्कंठिता गोप्यः कृत्वा तत्पूजनं परम् । प्रपच्छुः परया भक्त्या गिरा मधुरया प्रभुम् ॥ ९ ॥

गोप्य ऊचुः

कथं न चागतः शीघ्रं नो गृहान्वृजिनार्दन । उत्कंठितानां गोपीनां त्वयि चन्द्रे चकोरवत् ॥१०॥

श्रीभगवानुवाच

यो यस्य चित्ते वसति न स दूरे कदाचन । खे सूर्यं कमलं भूमौ दृष्ट्वेदं स्फुटति प्रियाः ॥११॥
भाण्डीरे मे गुरुः साक्षाद्दुर्वासा भगवान्मुनिः । आगतोऽद्य प्रियास्तस्य सेवार्थं गतवानहम् ॥१२॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१३॥
अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१४॥
स्वगुरुं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् । न मर्त्यबुद्ध्या सेवेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥१५॥
तस्मात्तत्पूजनं कृत्वा नत्वा तत्पादपंकजम् । आगतोऽहं विलंबेन भवतीनां गृहान् प्रियाः ॥१६॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा तत्परमं वाक्यं गोप्यः सर्वास्तु विस्मिताः । कृतांजलिपुटा ऊचुः श्रीकृष्णं नम्रकंधराः ॥१७॥

गोप्य ऊचुः

परिपूर्णतमस्यापि दुर्वासास्ते गुरुः स्मृतः । अहो तद्दर्शनं कर्तुं मनो नश्चोद्यतं प्रभो ॥१८॥
अद्य देव निशीथिन्या व्यतीते प्रहरद्वये । कथं तद्दर्शनं भूयादस्माकं परमेश्वर ॥१९॥
तथा मध्ये दीर्घनदी यमुना प्रतिबन्धिका । कथं तत्तरणं नावमृते देव भविष्यति ॥२०॥

श्रीभगवानुवाच

अवश्यमेव गन्तव्यं भवतीभिर्यदा प्रियाः । यमुनामेत्य चैतद्धै वक्तव्यं मार्गहेतवे ॥२१॥

और प्रतिदिन उनके घरोंमें रासक्रीड़ाके लिये जाने लगे ॥ ७ ॥ हे नरेश्वर ! एक दिन रातमें दो पहर बीत जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण रासके लिये उनके घर गये ॥ ८ ॥ उस समय उत्कण्ठित गोपियोंने उन परम प्रभुका अत्यन्त भक्तिभावसे पूजन करके मधुर वाणीमें पूछा ॥ ९ ॥ गोपियाँ बोलीं—हे अघनाशन श्रीकृष्ण ! जैसे चकोरी चन्द्रदर्शनके लिये उत्सुक रहती है, उसी प्रकार हम गोपाङ्गनाएँ आपसे मिलनेको उत्कण्ठित रहती हैं। तब आप हमारे घरमें शीघ्र क्यों नहीं आये ? ॥१०॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे प्रियाओ ! जो जिसके हृदयमें वास करता है, वह उससे दूर कभी नहीं रहता। देखो न, सूर्य तो आकाशमें रहता है और कमल भूमिपर; फिर भी वह उन्हें देखते ही खिल उठता है (वह सूर्यको अपने अत्यन्त निकट स्थित अनुभव करता है) ॥११॥ हे प्रियाओ ! आज मेरे साक्षात् गुरु भगवान् दुर्वासा मुनि भाण्डीर-वनमें पधारे हैं। उन्हींकी सेवाके लिये मैं चला गया था ॥ १२ ॥ गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु भगवान् महेश्वर हैं और गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं। उन श्रीगुरुको मेरा नमस्कार है ॥ १३ ॥ अज्ञानरूपी रतौंधीसे अंधे बने हुए मनुष्यकी दृष्टिको जिन्होंने ज्ञानाञ्जनकी शलाकासे खोल दिया है, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १४ ॥ अपने गुरुको मेरा स्वरूप ही समझना चाहिये और कभी उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। गुरु सम्पूर्ण देवताओंके स्वरूप होते हैं ॥ १५ ॥ अतः साधारण मनुष्य समझकर उनकी सेवा नहीं करनी चाहिये। हे प्रियाओ ! मैं उनका पूजन करके तथा उनके चरणकमलोंमें प्रणाम करके तुम्हारे घर देरीसे पहुँचा हूँ ॥ १६ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! श्रीकृष्णका यह उत्तम वचन सुनकर समस्त गोपाङ्गनाओंको बड़ा विस्मय हुआ। वे हाथ जोड़ और सिर झुकाकर श्रीकृष्णसे बोलीं ॥ १७ ॥ गोपियोंने कहा—हे प्रभो ! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। आप स्वयं परिपूर्णतम परमेश्वरके भी गुरु दुर्वासा मुनि हैं, यह जानकर हमारा मन उनके दर्शनके लिये उत्सुक हो उठा है ॥१८॥ हे देव ! हे परमेश्वर ! आज रातके दो पहर बीत जानेपर उनका दर्शन हमें कैसे प्राप्त हो सकता है ? बीचमें विशाल नदी यमुना प्रतिबन्धक बनकर खड़ी है। अतः हे देव ! बिना किसी नावके यमुनाजीको पार करना कैसे सम्भव होगा ? ॥ १९ ॥ २० ॥ श्रीभगवान् बोले—हे प्रियाओ ! यदि तुम

यदि कृष्णो बालयतिः सर्वदोषविवर्जितः । तर्हि नो देहि मार्गं वै कालिन्दि सरितां वरे ॥२२॥
इत्युक्ते वचने कृष्णा मार्गं वो दास्यति स्वतः । सुखेन तेन व्रजत यूयं सर्वा व्रजांगनाः ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाऽथ तद्वाक्यं पात्रैर्दीर्घैर्व्रजांगनाः । षट्पंचाशत्तमान्भोगान्नीत्वा सर्वाः पृथक् पृथक् ॥
यमुनामेत्य हर्युक्तं जगुरानतकंधराः । सद्यः कृष्णा ददौ मार्गं गोपीभ्यो मैथिलेश्वर ॥२५॥
तेन गोप्यो गताः सर्वा भाण्डीरं चातिविस्मिताः । ततः प्रदक्षिणीकृत्य मुनिं दुर्वाससं च ताः ॥२६॥
नत्वा तद्दर्शनं चक्रुः पुरो धृत्वाऽशनं बहु । मे पूर्वं चापि मे पूर्वमन्नं भोज्यं त्वया मुने ॥२७॥
एवं विवदमानानां गोपीनां भक्तिलक्षणम् । विज्ञाय मुनिशार्दूलः प्रोवाच विमलं वचः ॥२८॥

मुनिरुवाच

गोप्यः परमहंसोऽहं कृतकृत्यो हि निष्क्रियः । तस्मान्मुखे मे दातव्यं स्वं स्वं चाप्यशनं करैः ॥२९॥

श्रीनारद उवाच

एवं विदारिते तेन मुखे गोप्योऽतिहर्षिताः । षट्पंचाशत्तमान्भोगान्स्वान्स्वान्सर्वाः समाक्षिपन् ॥
क्षिपंतीनां च गोपीनां पश्यंतीनां मुनीश्वरः । जघास कोटिशो भारान् भोगान् सर्वान् क्षुधातुरः ३१
विस्मितानां च गोपीनां पश्यंतीनां परस्परम् । इत्थं शून्यानि पात्राणि बभूवुर्नृपसत्तम ॥३२॥
अथ गोप्यो मुनिं शांतं नत्वा तं भक्तवत्सलम् । विस्मिताः प्रणताः प्राहुः सर्वाः पूर्णमनोरथाः ॥३३॥

गोप्य ऊचुः

मुने आगमनात्पूर्वं कृष्णोक्तवचसा नदीम् । तीर्त्वाऽऽगतास्त्वत्समीपं दर्शनार्थं शुभेच्छया ॥३४॥
इतः कथं गमिष्यामः सन्देहोऽयं महानभूत् । तद्विधेहि नमस्तुभ्यं येन पंथा लघुर्भवेत् ॥३५॥

लोगोंको अवश्य ही वहाँ जाना है तो यमुनाजीके पास पहुँचकर मार्ग प्राप्त करनेके लिये इस प्रकार कहना— ॥ २१ ॥ 'यदि श्रीकृष्ण बालब्रह्मचारी और सब प्रकारके दोषोंसे रहित हों तो सरिताओंमें हे श्रेष्ठ यमुनाजी ! हमारे लिये मार्ग दे दो ।' ॥ २२ ॥ यह बात कहनेपर यमुना तुम्हें स्वतः मार्ग दे देंगी । उस मार्गसे तुम सभी व्रजाङ्गनाएँ सुखपूर्वक चली जाना ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उनका यह वचन सुनकर सभी गोपियाँ अलग-अलग विशाल पात्रोंमें छप्पन प्रकारके भोग लेकर यमुनाजीके तटपर गयीं और सिर झुकाकर उन्होंने श्रीकृष्णकी कही हुई बात दुहरा दी । हे मैथिलेश्वर ! फिर तो तत्काल यमुनाजीने उन गोपियोंके लिये मार्ग दे दिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस मार्गसे सभी गोपियाँ अत्यन्त विस्मित होकर भाण्डीर-वटके पास जा पहुँचीं । वहाँ उन्होंने दुर्वासा मुनिकी परिक्रमा की और उनके आगे बहुत-सी भोजन-सामग्री रखकर उनका दर्शन किया । फिर सब-की-सब कहने लगीं—'हे मुने ! पहले मेरा अन्न ग्रहण कीजिये, पहले मेरा अन्न भोजन कीजिये' ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस तरह परस्पर विवाद करती हुई गोपियोंका भक्तिसूचक भाव जानकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने यह विमल वचन कहा ॥ २८ ॥ मुनि बोले—हे गोपियों ! मैं कृतकृत्य परमहंस और निष्क्रिय हूँ । इसलिये तुमलोग अपना-अपना भोजन अपने ही हाथोंसे मेरे मुँहमें डाल दो ॥ २९ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यों कहकर जब उन्होंने अपना मुँह फैलाया, तब सभी गोपियोंने अत्यन्त हर्षके साथ अपने-अपने छप्पन भोगोंको उनके मुँहमें एक साथ ही डालना आरम्भ किया ॥ ३० ॥ अन्न डालती हुई उन गोपियोंके देखते-देखते मुनीश्वर दुर्वासा क्षुधासे पीड़ितकी भाँति उन समस्त भोगोंको, जो करोड़ों भारसे कम न थे, चट कर गये ॥ ३१ ॥ गोपियाँ आश्चर्यचकित हो एक-दूसरीकी ओर देखने लगीं । हे नृपश्रेष्ठ ! इस तरह उनके सारे बर्तन खाली हो गये ॥ ३२ ॥ तत्पश्चात् उन परम शान्त और भक्तवत्सल मुनिको सभी विस्मित गोपियोंने पूर्ण-मनोरथ होकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा ॥३३॥ गोपियोंने कहा—हे मुने ! यहाँ आनेसे पूर्व श्रीकृष्ण-की कही हुई बात दुहराकर मार्ग मिल जानेसे यमुनाजीको पार करके हमलोग आपके समीप दर्शनकी शुभ इच्छा लेकर आ गयी थीं ॥ ३४ ॥ अब इधरसे हम कैसे जायँगी, यह महान् संदेह हमारे मनमें हो गया है ।

मुनिरुवाच

सुखेनातः प्रगन्तव्यं भवतीभिर्यदा स्वतः। यमुनामेत्य चैतद्वै वक्तव्यं मार्गहेतवे ॥३६॥
यदि दूर्वारसं पीत्वा दुर्वासाः केवलं क्षितौ। व्रती निरन्नो निर्वारि वर्तते पृथिवीतले ॥३७॥
तर्हि नो देहि मार्गं वै कालिंदि सरितां वरे। इत्युक्ते वचने कृष्णा मार्गं वो दास्यति स्वतः ॥३८॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचो गोप्यो नत्वा तं मुनिपुङ्गवम्। यमुनामेत्य मुन्युक्तं चोक्त्वा तीर्त्वा नदीं नृप ॥३९॥
श्रीकृष्णपार्श्वमाजग्मुर्विस्मिता मंगलायनाः ॥४०॥
अथ रासे गोपवध्वः सन्देहं मनसोत्थितम्। पप्रच्छुः श्रीहरिं वीक्ष्य रहः पूर्णमनोरथाः ॥४१॥

गोप्य ऊचुः

दुर्वाससो दर्शनं भोः कृतमस्माभिरग्रतः। युवयोर्वाक्यतश्चात्र सन्देहोऽयं प्रजायते ॥४२॥
यथा गुरुस्तथा शिष्यो मृषावादी न संशयः। जारस्त्वमसि गोपीनां रसिको बाल्यतः प्रभो ॥४३॥
कथं बालयतिस्त्वं वै वद तद्वृजिनार्दन। कथं दूर्वारसं पीत्वा दुर्वासा बहुभुङ्मुनिः ॥
नो जात एष सन्देहः पश्यन्तीनां व्रजेश्वर ॥४४॥

श्रीभगवानुवाच

निर्ममो निरहंकारः समानः सर्वगः परः। सदा वैषम्यरहितो निर्गुणोऽहं न संशयः ॥४५॥
तथापि भक्तान् भजतो भजेऽहं वै यथा तथा। तथैव साधुर्ज्ञानी वै वैषम्यरहितः सदा ॥४६॥
न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्। जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन् ॥४७॥
यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः। ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥४८॥

अतः आप ही ऐसा कोई उपाय कीजिये; जिससे मार्ग हल्का हो जाय ॥ ३५॥ मुनि दुर्वासा बोले—हे गोपियो ! तुम सब यहाँसे सुखपूर्वक चली जाओ। जब यमुनाजीके किनारे पहुँचो, तब मार्गके लिये इस प्रकार कहना— ॥ ३६ ॥ यदि दुर्वासा मुनि इस भूतलपर केवल दूर्वाका रस पीकर रहते हों, कभी अन्न और जल न लेकर व्रतका पालन करते हों तो सरिताओंकी शिरोमणि हे यमुनाजी ! हमें मार्ग दे दो।' ऐसी बात कहनेपर यमुनाजी तुम्हें स्वतः मार्ग दे देंगी ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे नरेश्वर ! यह सुनकर गोपियाँ उन मुनि-पुंगवको प्रणाम करके यमुनाके तटपर आयीं और मुनिकी बतायी हुई बात कहकर नदी पार हो श्रीकृष्णके पास आ पहुँचीं। वे मङ्गलधामा गोपियाँ इस यात्राके विचित्र अनुभवसे विस्मित थीं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तदनन्तर रासमें गोपाङ्गनाओंने श्रीकृष्णकी ओर देखकर अपने मनमें उठे हुए संदेहकी बात उनसे पूछी। एकान्तमें श्रीहरिने उन सबका मनोरथ पूर्ण कर दिया था ॥४१॥ गोपियाँ बोलीं—हे प्रभो ! हमने दुर्वासा मुनिका दर्शन उनके सामने जाकर किया है; किंतु आप दोनोंके वचनोंको सुनकर उनकी सत्यताके सम्बन्धमें हमारे मनमें संदेह उत्पन्न हो गया है ॥ ४२ ॥ जैसे गुरुजी असत्यवादी हैं, उसी तरह चेलाजी भी मिथ्यावादी हैं— इसमें संशय नहीं है। हे अघनाशन ! आप तो गोपियोंके उपपति और बचपनसे ही रसिक हैं, फिर आप बालब्रह्मचारी कैसे हुए—यह हमें स्पष्ट बताइये और हमारे सामने बहुत-सा अन्न (भार-के-भार छप्पन भोग) खा जानेवाले ये दुर्वासा मुनि केवल दूर्वाका रस पीकर रहनेवाले कैसे हैं ? हे व्रजेश्वर ! हमारे मनमें यह भारी संदेह उठा है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे गोपियो ! मैं ममता और अहंकारसे रहित, सबके प्रति समान भाव रखनेवाला, सर्वव्यापी, सबसे उत्कृष्ट, सदा विषमताशून्य तथा प्राकृत गुणोंसे रहित हूँ—इसमें संशय नहीं है ॥ ४५ ॥ तथापि जो भक्त जिस प्रकार मेरा भजन करते हैं, उनका उसी प्रकार मैं भी भजन करता हूँ। इसी प्रकार ज्ञानी साधु-महात्मा भी सदा विषम भावनासे रहित होते हैं ॥ ४६ ॥ योगयुक्त विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह कर्मोंमें आसक्त अज्ञानीजनोंमें बुद्धि-भेद न उत्पन्न करे। उनसे सदा समस्त कर्मोंका [illegible]न कराये ॥ ४७ ॥ जिस पुरुषके सभी समारम्भ (आयोजन) कामना और संकल्पसे शून्य होते हैं,

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः । शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥४९॥
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते । तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥५०॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥५१॥
तस्मान्मुनिस्तु दुर्वासा बहुभुक् त्वद्धिते रतः । न तस्य भोजनेच्छा स्याद्दूर्वारसमिताशनः ॥५२॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचो गोप्यः सर्वास्तारिछन्नसंशयाः । श्रुतिरूपा ज्ञानमय्यो बभूवुर्मैथिलेश्वर ॥५३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रुतिरूपोपाख्यानं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(ऋषिरूपा गोपियोंका उपाख्यान)

श्रीनारद उवाच

गोपीनामृषिरूपाणामाख्यानं शृणु मैथिल । सर्वपापहरं पुण्यं कृष्णभक्तिविवर्धनम् ॥ १ ॥
वंगेषु मंगलो नाम गोप आसीन्महामनाः । लक्ष्मीवाञ्छ्रुतसम्पन्नो नवलक्षगवां पतिः ॥ २ ॥
भार्याः पंच सहस्राणि बभूवुस्तस्य मैथिल । कदाचिद्दैवयोगेन धनं सर्वं क्षयं गतम् ॥ ३ ॥
चौरैर्नीतास्तस्य गावः काश्चिद्राज्ञा हृता बलात् । एवं दैन्ये च संप्राप्ते दुःखितो मंगलोऽभवत् ॥ ४ ॥
तदा श्रीरामस्य वराद्दण्डकारण्यवासिनः । ऋषयः स्त्रीत्वमापन्ना बभूवुस्तस्य कन्यकाः ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा कन्यासमूहं स दुःखी गोपोऽथ मंगलः । उवाच दैन्यदुःखाढ्य आधिव्याधिसमाकुलः ॥ ६ ॥

उनके सारे कर्म ज्ञानरूपी अग्निमें दग्ध हो जाते हैं (अर्थात् उनके लिये वे कर्म बन्धनकारक नहीं होते)। ऐसे पुरुषको ज्ञानीजन पण्डित (तत्त्वज्ञ) कहते हैं ॥ ४८ ॥ जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जिसने चित्त और बुद्धिको अपने वशमें कर रक्खा है तथा जो समस्त संग्रह-परिग्रह छोड़ चुका है, वह केवल शरीर-निर्वाह-सम्बन्धी कर्म करता हुआ किल्बिष (कर्मजनित शुभाशुभ फल) को नहीं प्राप्त होता ॥ ४९ ॥ इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है। योगसिद्ध पुरुष समयानुसार स्वयं ही अपने-आपमें उस ज्ञानको प्राप्त कर लेता है ॥ ५० ॥ जो समस्त कर्मोंको ब्रह्मार्पण करके आसक्ति छोड़कर कर्म करता है, वह पापसे उसी प्रकार लिप्त नहीं होता, जैसे कमलका पत्र जलसे लिप्त नहीं होता ॥ ५१ ॥ दुर्वासा मुनि तुम सबके हित-साधनमें तत्पर होकर बहुत खानेवाले हो गये। स्वतः उन्हें कभी भोजनकी इच्छा नहीं होती। वे केवल परिमित दूर्वारसका ही आहार करते हैं ॥ ५२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे मैथिलेश्वर ! श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर समस्त गोपियोंका संशय नष्ट हो गया और वे श्रुतिरूपा गोपाङ्गनाएँ ज्ञानमयी हो गयीं ॥ ५३ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मैथिल ! अब तुम ऋषिरूपा गोपियोंकी कथा सुनो। वह सब पापोंको हर लेनेवाली, परम पावन और श्रीकृष्णके प्रति भक्ति-भावकी वृद्धि करनेवाली है ॥ १ ॥ बङ्गदेशमें मङ्गल नामसे प्रसिद्ध एक महामनस्वी गोप था, जो लक्ष्मीवान्, शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न तथा नौ लाख गौओंका स्वामी था ॥ २ ॥ हे मैथिलेश्वर ! उसकी पाँच हजार पत्नियाँ थीं। किसी समय दैवयोगसे उसका सारा धन नष्ट हो गया ॥ ३ ॥ चोरोंने उसकी गौओंका अपहरण कर लिया। कुछ गौओंको उस देशके राजाने बलपूर्वक अपने अधिकारमें कर लिया। इस प्रकार दीनता प्राप्त होनेपर मङ्गल-गोप बहुत दुखी हो गया ॥ ४ ॥ उन्हीं दिनों श्रीरामचन्द्रजीके वरदानसे स्त्रीभावको प्राप्त दण्डकारण्यके निवासी ऋषि उसकी कन्याएँ हो गये ॥ ५ ॥ उस कन्या-समूहको देखकर दुखी गोप मङ्गल और भी दुःखमें डूब गया और आधि-व्याधिसे व्याकुल रहने

मंगल उवाच

किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहति ।
श्रीर्न भूतिर्नाभिजनो न बलं मेऽस्ति साम्प्रतम् ॥ ७ ॥
धनं विना कथं चासां विवाहो हा भविष्यति । भोजने यत्र संदेहो धनाशा तत्र कीदृशी ॥ ८ ॥
सति दैन्ये कन्यकाः स्युः काकतालीयवद्गृहे । तस्मात्कस्यापि राज्ञस्तु धनिनो बलिनस्त्वहम् ॥ ९ ॥
दास्याम्येताः कन्यकाश्च कन्यानां सौख्यहेतवे । कदर्थीकृत्य ताः कन्या एवं बुद्धया स्थितोऽभवत् ॥
तदैव माथुराद्देशाद्गोपश्चैकः समागतः ॥१०॥

श्रीनारद उवाच

तीर्थयायी जयो नाम वृद्धो बुद्धिमतां वरः । तन्मुखान्नन्दराजस्य श्रुतं वैभवमद्भुतम् ॥११॥
नन्दराजस्य वलये मंगलो दैन्यपीडितः । विचिन्त्य प्रेषयामास कन्यकाश्चारुलोचनाः ॥१२॥
ता नन्दराजस्य गृहे कन्यका रत्नभूषिताः । गवां गोमयहारिण्यो बभूवुर्गोव्रजेषु च ॥१३॥
श्रीकृष्णं सुन्दरं दृष्ट्वा कन्या जातिस्मराश्च ताः ।
कालिन्दीसेवनं चक्रुर्नित्यं श्रीकृष्णहेतवे ॥१४॥
अथैकदा श्यामलांगी कालिन्दी दीर्घलोचना । ताभ्यः स्वदर्शनं दत्त्वा वरं दातुं समुद्यता ॥१५॥
ता वव्रिरे व्रजेशस्य पुत्रो भूयात्पतिश्च नः । तथाऽस्तु चोक्त्वा कालिन्दी तत्रैवांतरधीयत ॥१६॥
ताः प्राप्ता वृन्दकारण्ये कार्तिक्यां रासमण्डले । ताभिः सार्द्धं हरी रेमे सुरीभिः सुरराडिव ॥१७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे ऋषिरूपोपाख्यानं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

लगा। उसने मन-ही-मन इस प्रकार कहा ॥ ६ ॥ मङ्गल बोला—क्या करूँ ? कौन मेरा दुःख दूर करेगा ? इस समय मेरे पास न तो लक्ष्मी है, न ऐश्वर्य है; न कुटुम्बीजन हैं और न कोई बल ही है ॥ ७ ॥ हाय ! धनके बिना कन्याओंका विवाह कैसे होगा ? जहाँ भोजनमें भी संदेह हो, वहाँ धनकी कैसी आशा ? ॥ ८ ॥ दीनता तो थी ही। काकतालीय न्यायसे कन्याएँ भी इस घरमें आ गयीं। इसलिये किसी धनवान् और बलवान् राजाको ये कन्याएँ अर्पित करूँगा, तभी इन कन्याओंको सुख मिलेगा ॥ ९ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार उन कन्याओंकी कोई परवा न करके उसने अपनी बुद्धिसे ऐसा निश्चय कर लिया और उसीपर डटा रहा। उन्हीं दिनों मथुरामण्डलसे एक गोप उसके यहाँ आया ॥ १० ॥ वह तीर्थयात्री था। उसका नाम था जय। वह बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और वृद्ध था। उसके मुखसे मङ्गलने नन्दराजके अद्भुत वैभवका वर्णन सुना ॥ ११ ॥ दीनतासे पीड़ित मङ्गलने बहुत सोच-विचारकर अपनी चारुलोचना कन्याओंको नन्दराजके व्रजमण्डलमें भेज दिया ॥१२॥ नन्दराजके घरमें जाकर वे रत्नमय भूषणोंसे विभूषित कन्याएँ उनके गोष्ठमें गायोंका गोबर उठानेका काम करने लगीं ॥ १३ ॥ वहाँ सुन्दर श्रीकृष्णको देखकर उन कन्याओंको अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण हो आया और वे श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये नित्य यमुनाजीकी सेवा-पूजा करने लगीं ॥ १४ ॥ तदनन्तर एक दिन श्यामल अङ्गोंवाली विशाललोचना यमुनाजी उन सबको दर्शन दे, वरप्रदान करनेको उद्यत हुई ॥ १५ ॥ तब उन गोपकन्याओंने यह वर माँगा कि 'व्रजेश्वर नन्दराजके पुत्र श्रीकृष्ण हमारे पति हों।' तब 'तथास्तु' कहकर यमुना वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥ १६ ॥ वे सब कन्याएँ वृन्दावनमें कार्तिक-पूर्णिमाकी रातको रासमण्डलमें पहुँचीं। वहाँ श्रीहरिने उनके साथ उसी तरह विहार किया, जैसे देवाङ्गनाओंके साथ देवराज इन्द्र विहार किया करते हैं ॥ १७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(मैथिलीरूपा गोपियोंका आख्यान तथा चीरहरणलीला और वरदानप्राप्ति)

श्रीनारद उवाच

मैथिलीनां गोपिकानामाख्यानं शृणु मैथिल । दशाश्वमेधतीर्थस्य फलदं भक्तिवर्धनम् ॥ १ ॥
श्रीरामस्य वराज्जाता नवनन्दगृहेषु याः । कमनीयं नन्दसूनुं दृष्ट्वा ता मोहमास्थिताः ॥ २ ॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि चक्रुः कात्यायनीव्रतम् । उपचारैः षोडशभिः कृत्वा देवीं महीमयीम् ॥ ३ ॥
अरुणोदयवेलायां स्नाताः श्रीयमुनाजले । नित्यं समेता आजग्मुर्गायन्त्यो भगवद्गुणान् ॥ ४ ॥
एकदा ताः स्ववस्त्राणि तीरे न्यस्य व्रजांगनाः । विजह्रुर्यमुनातोये कराभ्यां सिंचतीर्मिथः ॥ ५ ॥
तासां वासांसि संनीय भगवान्प्रातरागतः । त्वरं कदम्बमारुह्य चौरवन्मौनमास्थितः ॥ ६ ॥
ता न वीक्ष्य स्ववासांसि विस्मिता गोपकन्यकाः । नीपस्थितं विलोक्याथ सलज्जा जहसुर्नृप ॥ ७ ॥
प्रतीच्छंतु स्ववासांसि सर्वा आगत्य चात्र वै । अन्यथा न हि दास्यामि वृक्षात्कृष्ण उवाच ह ॥ ८ ॥
राजंत्यस्ताः शीतजले हसंत्यः प्राहुरानताः ॥ ९ ॥

गोप्य ऊचुः

हे नंदनंदन मनोहर गोपरत्न गोपालवंशनवहंस महार्तिहारिन् ।
श्रीश्यामसुन्दर तवोदितमद्य वाक्यं कुर्मःकथं विवसनाः किल तेऽपि दास्यः ॥१०॥
गोपांगनावसनमुण्नवनीतहारी जातो व्रजेऽतिरसिकः किल निर्भयोऽसि ।
वासांसि देहि न हि चेन्मथुराधिपाय वक्ष्यामहेऽनयमतीव कृतं त्वयाऽत्र ॥११॥

श्रीभगवानुवाच

दास्यो ममैव यदि सुन्दरमन्दहासा इच्छंतु वैत्य किल चात्र कदम्बमूले ।
नोचेत्समस्तवसनानि नयामि गेहांस्तस्मात्करिष्यथ ममैव वचोऽविलंबात् ॥१२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! हे मिथिलेश्वर ! अब मिथिलादेशमें उत्पन्न गोपियोंकी कथा सुनो । यह दशाश्वमेधतीर्थपर स्नानका फल देनेवाला और भक्ति-भावको बढ़ानेवाला है ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वरसे जो नौ नन्दोंके घरोंमें उत्पन्न हुई थीं, वे मैथिलीरूपा गोपकन्याएँ परम कमनीय नन्दनन्दनका दर्शन करके उन-पर मोहित हो गयीं ॥ २ ॥ उन्होंने मार्गशीर्षके शुभ मासमें कात्यायनीका व्रत किया और उनकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर वे षोडशोपचारसे उसकी पूजा करने लगीं ॥ ३ ॥ अरुणोदयकी वेलामें वे प्रतिदिन एक साथ भगवान्के गुण गाती हुई आतीं और श्रीयमुनाजीके जलमें स्नान करती थीं ॥ ४ ॥ एक दिन वे व्रजाङ्गनाएँ अपने वस्त्र यमुनाजीके किनारे रखकर उनके जलमें प्रविष्ट हुईं और दोनों हाथोंसे जल उलीचकर एक दूसरीको भिगोती हुई जल-विहार करने लगीं ॥ ५ ॥ प्रातःकाल भगवान् श्यामसुन्दर वहाँ आये और तुरंत उन सबके वस्त्र लेकर, कदम्बपर आरूढ़ हो चोरकी तरह चुप-चाप बैठ गये ॥ ६ ॥ हे राजन् ! अपने वस्त्रोंको न देखकर वे गोपकन्याएँ बड़े विस्मयमें पड़ीं तथा कदम्बपर बैठे हुए श्यामसुन्दरको देखकर लजा गयीं और हँसने लगीं ॥ ७ ॥ तब वृक्षपर बैठे श्रीकृष्ण उन गोपियोंसे कहने लगे—'तुम सब लोग यहाँ आकर अपने-अपने कपड़े ले जाओ, अन्यथा मैं नहीं दूँगा ।' ॥ ८ ॥ हे राजन् ! तब वे गोपकन्याएँ शीतल जलके भीतर खड़ी-खड़ी हँसती हुई लज्जासे मुँह नीचे करके बोलीं ॥ ९ ॥ गोपियोंने कहा—हे मनोहर नन्दनन्दन ! हे गोप-रत्न ! हे गोपाल-वंशके नूतन हंस ! हे महान् पीड़ाको हर लेनेवाले श्रीश्यामसुन्दर ! तुम जो आज्ञा दोगे, हम वही करेंगी । तुम्हारी दासी होकर भी हम यहाँ वस्त्रहीन होकर कैसे रहें ? ॥ १० ॥ आप गोपियोंके वस्त्र लूटनेवाले और माखनचोर हैं । व्रजमें जन्म लेकर भी बड़े रसिक हैं । भय तो आपको छू भी नहीं सका है । हमारा वस्त्र हमें लौटा दीजिये; नहीं तो हम मथुरानरेशके दरबारमें आपके द्वारा इस अवसरपर की

श्रीनारद उवाच

तदा ता निर्गताः सर्वा जलाद्गोप्योऽतिवेपिताः । आनता योनिमाच्छाद्य पाणिभ्यां शीतकर्शिताः ॥ १३॥
कृष्णदत्तानि वासांसि दधुः सर्वा व्रजाङ्गनाः । मोहिताश्च स्थितास्तत्र कृष्णे लज्जायितेक्षणाः ॥१४॥
ज्ञात्वा तासामभिप्रायं परमप्रेमलक्षणम् । आह मन्दस्मितः कृष्णः समंताद्वीक्ष्य ता वचः ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच

भवतीभिर्मार्गशीर्षे कृतं कात्यायनीव्रतम् । मदर्थं तच्च सफलं भविष्यति न संशयः ॥१६॥
परश्वोऽहनि चाटव्यां कृष्णातीरे मनोहरे । युष्माभिश्च करिष्यामि रासं पूर्णमनोरथम् ॥१७॥
इत्युक्त्वाऽथ गते कृष्णे परिपूर्णतमे हरौ । प्राप्तानन्दा मंदहासा गोप्यः सर्वा गृहान् ययुः॥१८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे मैथिल्युपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(कोसलप्रान्तीय स्त्रियोंका व्रजमें गोपी होकर श्रीकृष्णके प्रति अनन्यभावसे प्रेम करना)

श्रीनारद उवाच

कौशलानां गोपिकानां वर्णनं शृणु मैथिल । सर्वपापहरं पुण्यं श्रीकृष्णचरितामृतम् ॥ १ ॥
नवोपनन्दगेहेषु जाता रामवराद्व्रजे । परिणीता गोपजनै रत्नभूषणभूषिताः ॥ २ ॥
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशा नवयौवनसंयुताः । पद्मिन्यो हंसगमनाः पद्मपत्रविलोचनाः ॥ ३ ॥
जारधर्मेण सुस्नेहं सुदृढं सर्वतोऽधिकम् । चक्रुः कृष्णे नन्दसुते कमनीये महात्मनि ॥ ४ ॥
ताभिः सार्द्धं सदा हास्यं व्रजवीथीषु माधवः । स्मितैः पीतपटादानैः कर्षणैः स चकार ह ॥ ५ ॥

गयी बड़ी भारी अनीतिकी शिकायत करेंगी ॥ ११ ॥ श्रीभगवान् बोले—सुन्दर मन्दहास्यसे सुशोभित होनेवाली हे गोपाङ्गनाओ ! यदि तुम मेरी दासियाँ हो तो इस कदम्बकी जड़के पास आकर अपने वस्त्र ले लो । नहीं तो मैं इन सब वस्त्रोंको अपने घर उठा ले जाऊँगा । अतः तुम अविलम्ब मेरे कथनानुसार कार्य करो ॥ १२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तब वे सब व्रजवासिनी गोपियाँ जाड़ेसे काँपती हुई जलसे बाहर निकलीं और आनत-शरीर हो, हाथोंसे योनिको ढककर शीतसे कष्ट पाती हुई श्रीकृष्णके हाथसे दिये गये वस्त्र लेकर उन्होंने अपने अङ्गोंमें धारण किये । इसके बाद श्रीकृष्णको लजीली आँखोंसे देखती हुई उनपर मोहित होकर खड़ी रहीं ॥ १३ ॥ १४ ॥ उनके परम प्रेमसूचक अभिप्रायको जानकर मन्द-मन्द मुस्कराते हुए श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण उनपर चारों ओरसे दृष्टिपात करके इस प्रकार बोले ॥ १५ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे गोपाङ्गनाओ ! तुमने मार्गशीर्ष मासमें मेरी प्राप्तिके लिये जो कात्यायनी-व्रत किया है, वह अवश्य सफल होगा—इसमें संशय नहीं है ॥ १६ ॥ परसोंके दिन वनके भीतर यमुनाके मनोहर तटपर मैं तुम्हारे साथ रास करूँगा, जो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करनेवाला होगा ॥ १७ ॥ यों कहकर परिपूर्णतम श्रीहरि जब चले गये, तब आन्दोल्लाससे परिपूर्ण हो मन्दहासकी छटा बिखेरती हुई वे समस्त गोप-बालाएँ अपने घरोंको चली गयीं ॥ १८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीनारदजी कहते है—हे मिथिलेश्वर ! अब कोसलप्रदेशकी गोपियोंका वर्णन सुनो । यह श्रीकृष्ण-चरितामृत समस्त पापोंका नाश करनेवाला तथा पुण्यजनक है ॥ १ ॥ कोसलप्रान्तकी स्त्रियाँ श्रीरामके वरसे व्रजमें नौ उपनन्दोंके घरोंमें उत्पन्न हुईं और व्रजके गोपजनोंके साथ उनका विवाह हो गया । वे सब-की-सब रत्नमय आभूषणोंसे आभूषित थीं ॥ २ ॥ उनकी अङ्गकान्ति पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनीके समान थी । वे नूतन यौवनसे सम्पन्न थीं । उनकी चाल हंसके समान थी और नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल थे ॥ ३ ॥ वे पद्मिनी जातिकी नारियाँ थीं । उन्होंने कमनीय महात्मा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके प्रति जारधर्मके अनुसार उत्तम, सुदृढ़ तथा सबसे अधिक स्नेह किया ॥ ४ ॥ व्रजकी गलियोंमें माधव मुस्कराकर पीताम्बर

दधिविक्रयार्थं यान्त्यस्ताः कृष्ण कृष्णेति चाब्रुवन् ।
कृष्णे हि प्रेमसंसक्ता भ्रमंत्यः कुंजमंडले ॥ ६ ॥
खे वायौ चाग्निजलयोर्मह्यां ज्योतिर्दिशासु च । द्रुमेषु जनवृन्देषु तासां कृष्णो हि लक्ष्यते ॥ ७ ॥
प्रेमलक्षणसंयुक्ताः श्रीकृष्णहृतमानसाः ।
अष्टभिः सात्त्विकैर्भावैः सम्पन्नास्ताश्च योषितः ॥ ८ ॥
प्रेम्णा परमहंसानां पदवीं समुपागताः । कृष्णानन्दाः प्रधावन्त्यो व्रजवीथीषु ता नृप ॥ ९ ॥
जडा जडं न जानंत्यो जडोन्मत्तपिशाचवत् । अब्रुवन्त्यो ब्रुवन्त्यो वा गतलज्जा गतव्यथाः ॥१०॥
एवं कृतार्थतां प्राप्तास्तन्मया याश्च गोपिकाः । बलादाकृष्य कृष्णस्य चुचुंबुर्मुखपंकजम् ॥११॥
तासां तपः किं कथयामि राजन्पूर्णे परे ब्रह्मणि वासुदेवे ।
याश्चक्रिरे प्रेम हृदिंद्रियाद्यैर्विसृज्य लोकव्यवहारमार्गम् ॥१२॥
या रासरंगे विनिधाय बाहुं कृष्णांसयोः प्रेमविभिन्नचित्ताः ।
चक्रुर्वशे कृष्णमलं तपस्तद्वक्तुं न शक्तो वदनैः फणीन्द्रः ॥१३॥
योगेन सांख्येन शुभेन कर्मणा न्यायादिवैशेषिकतत्त्ववित्तमैः ।
यत्प्राप्यते तच्च पदं विदेहराट् संप्राप्यते केवलभक्तिभावतः ॥१४॥
भक्त्यैव वश्यो हरिरादिदेवः सदा प्रमाणं किल चात्र गोप्यः ।
सांख्यं च योगं न कृतं कदापि प्रेम्णैव यस्य प्रकृतिं गताः स्युः ॥१५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे कौशलोपाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

छीनकर और आँचल खींचकर उनके साथ सदा हास-परिहास किया करते थे ॥ ५ ॥ वे गोपबालाएँ जब दही वेचनेके लिये निकलतीं तो 'दही लो' 'दही लो'—यह कहना भूलकर 'कृष्ण लो' 'कृष्ण लो' कहने लगती थीं। श्रीकृष्णके प्रति प्रेमासक्त होकर वे कुञ्जमण्डलमें घूमा करती थीं ॥ ६ ॥ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्रमण्डल, सम्पूर्ण दिशा, वृक्ष तथा जनसमुदायमें भी उन्हें केवल कृष्ण ही दिखायी देते थे ॥ ७ ॥ प्रेमके समस्त लक्षण उनमें प्रकट थे। श्रीकृष्णने उनके मन हर लिये थे। वे सारी व्रजाङ्गनाएँ आठों सात्त्विक भावोंसे सम्पन्न थीं ॥ ८ ॥ प्रेमने उन सबको परमहंसों (ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं) की अवस्थाको पहुँचा दिया था। हे नरेश्वर! वेकान्तिमती गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णके आनन्दमेंही निमग्न होकर व्रजकी गलियोंमें विचरा करती थीं ॥ ९ ॥ उनमें जड़-चेतनका भान नहीं रह गया था। वे जड़, उन्मत्त और पिशाचोंकी भाँति कभी मौन रहतीं और कभी वहुत बोलने लगती थीं। वे लाज और चिन्ताको तिलाञ्जलि दे चुकी थीं ॥ १० ॥ इस प्रकार कृतार्थताको प्राप्त होकर जो श्रीकृष्णमें तन्मय हो रही थीं, वे गोपाङ्गनाएँ बलपूर्वक खींचकर श्रीकृष्णके मुखारविन्दको चूम लेती थीं ॥ ११ ॥ हे राजन्! उनके तपका मैं क्या वर्णन करूँ? जो सारे लोकव्यहार एवं मर्यादा-मार्गको तिलाञ्जलि देकर हृदय तथा इन्द्रिय आदिके द्वारा पूर्ण परब्रह्म वासुदेवसे अविचल प्रेम करती थीं; जो रास-क्रीड़ामें श्रीकृष्णके कंधोंपर अपनी बाँह रखकर, प्रेमसे विगलित चित्त हो श्रीकृष्णको पूर्णतया अपने वशमें कर चुकी थीं; उनकी तपस्याका अपने सहस्रमुखोंसे वर्णन करनेमें नागराज शेष भी समर्थ नहीं हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे विदेहराज! न्याय-वैशेषिक आदि दर्शनोंके तत्त्वज्ञोंमें श्रेष्ठतम महात्मा योगसांख्य और शुभ कर्मद्वारा जिस पदको प्राप्त करते हैं, वही पद केवल भक्ति-भावसे उपलब्ध हो जाता है.॥ १४ ॥ आदिदेव श्रीहरि केवल भक्तिसे ही वशमें होते हैं, निश्चय ही इस विषयमें सदा गोपियाँ ही प्रमाण हैं। उन्होंने कभी सांख्य और योगका अनुष्ठान नहीं किया, तथापि केवल प्रेमसे ही वे भगवत्स्वरूपताको प्राप्त हो गयीं ॥ १५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकाया चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पंचमोऽध्यायः

(अयोध्यावासिनी गोपियोंके आख्यानके प्रसङ्गमें राजा विमलकी संतानके लिये चिन्ता)

श्रीनारद उवाच

अयोध्यावासिनीनां तु गोपीनां वर्णनं शृणु । चतुष्पदार्थदं साक्षात्कृष्णप्राप्तिकरं परम् ॥ १ ॥
सिन्धुदेशेषु नगरी चंपका नाम मैथिल । बभूव तस्यां विमलो राजा धर्मपरायणः ॥ २ ॥
कुबेर इव कोशाढ्यो मनस्वी मृगराडिव । विष्णुभक्तः प्रशांतात्मा प्रह्लाद इव मूर्तिमान् ॥ ३ ॥
भार्याणां षट्सहस्राणि बभूवुस्तस्य भूपतेः । रूपवत्यः कंजनेत्रा वंध्यात्वं ताः समागताः ॥ ४ ॥
अपत्यं केन पुण्येन भूयान्मेऽत्र शुभं नृप । एवं चिन्तयतस्तस्य बहवो वत्सरा गताः ॥ ५ ॥
एकदा याज्ञवल्क्यस्तु मुनीन्द्रस्तमुपागतः । तं नत्वाऽभ्यर्च्य विधिवन्नृपस्तत्संमुखे स्थितः ॥६॥
चिंताकुलं नृपं वीक्ष्य याज्ञवल्क्यो महामुनिः । सर्वज्ञः सर्वविच्छांतः प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ॥ ७ ॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच

राजन्कृशोऽसि कस्मात्त्वं का चिंता ते हृदि स्थिता । सप्तस्वंगेषु कुशलं दृश्यते साम्प्रतं तव ॥ ८ ॥

विमल उवाच

ब्रह्मस्त्वं किं न जानासि तपसा दिव्यचक्षुषा । तथाऽप्यहं वदिष्यामि भवतो वाक्यगौरवात् ॥ ९ ॥
आनपत्येन दुःखेन व्याप्तोऽहं मुनिसत्तम । किं करोमि तपो दानं वद येन भवेत्प्रजा ॥१०॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा याज्ञवल्क्यो ध्यानस्तिमितलोचनः । दीर्घं दध्यौ मुनिश्रेष्ठो भूतं भव्यं विचिंतयन् ॥११॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच

अस्मिन् जन्मनि राजेन्द्र पुत्रो नैव च नैव च । पुत्र्यस्तव भविष्यन्ति कोटिशो नृपसत्तम ॥१२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! अब अयोध्यावासिनी गोपियोंका वर्णन सुनो, जो चारों पदार्थोंको देनेवाला तथा साक्षात् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला सर्वोत्कृष्ट साधन है ॥ १ ॥ हे मिथिलेश्वर ! सिन्धुदेशमें चम्पका नामसे प्रसिद्ध एक नगरी थी, जिसमें धर्मपरायण विमल नामक राजा राज करते थे ॥ २ ॥ वे कुबेरके समान कोषसे सम्पन्न तथा सिंहके समान मनस्वी थे । वे भगवान् विष्णुके भक्त और प्रशान्तचित्त महात्मा थे । वे अपनी अविचल भक्तिके कारण मूर्तिमान् प्रह्लाद-से प्रतीत होते थे ॥ ३ ॥ उन भूपालके छः हजार रानियाँ थीं । वे सब-की-सब सुन्दर रूपवाली तथा कमलनयनी थीं, परंतु भाग्यवश वे वन्ध्या हो गयीं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! 'मुझे किस पुण्यसे उत्तम संतानकी प्राप्ति होगी ?'—ऐसा विचार करते हुए राजा विमलके बहुत वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ५ ॥ एक दिन उनके यहाँ मुनिवर याज्ञवल्क्य पधारे । राजाने उनको प्रणाम करके उनका विधिवत् पूजन किया और फिर उनके सामने वे विनीतभावसे खड़े हो गये ॥ ६ ॥ नृपशिरोमणि राजाको चिन्तासे आकुल देख सर्वज्ञ, सर्ववित् तथा शान्तस्वरूप महामुनि याज्ञवल्क्यने उनसे पूछा ॥ ७ ॥ याज्ञवल्क्य बोले—हे राजन् ! तुम इतने दुर्बल क्यों हो गये हो ? तुम्हारे हृदयमें कौन-सी चिन्ता व्याप्त हो गयी है ? इस समय तुम्हारे राज्यके सातों अङ्गोंमें तो कुशलमङ्गल ही दिखाई देता है ॥ ८ ॥ विमलने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप अपनी तपस्या एवं दिव्यदृष्टिसे क्या नहीं जानते हैं ? तथापि आपकी आज्ञाका गौरव मानकर मैं बता रहा हूँ ॥ ९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं संतानहीनताके दुःखसे चिन्तित हूँ । कौन-सा तप और दान करूँ, जिससे मुझे संतानकी प्राप्ति हो ॥ १० ॥ नारदजी कहते हैं—विमलकी यह बात सुनकर याज्ञवल्क्य मुनिके नेत्र ध्यानमें स्थित हो गये । वे मुनिश्रेष्ठ भूत और वर्तमानका चिन्तन करते हुए दीर्घकालतक ध्यानमें मग्न रहे ॥११॥ याज्ञवल्क्य बोले—हे राजेन्द्र ! इस जन्ममें तो तुम्हारे भाग्यमें पुत्र नहीं है, परंतु हे नृपश्रेष्ठ !

राजोवाच

पुत्रं विना पूर्वऋणान्न कोऽपि प्रमुच्यते भूमितले मुनीन्द्र ।
सदा ह्यपुत्रस्य गृहे व्यथा स्यात्परं त्विहामुत्र सुखं न किंचित् ॥१३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच

मा खेदं कुरु राजेन्द्र पुत्र्यो देयास्त्वया खलु । श्रीकृष्णाय भविष्याय परं दायादिकैः सह ॥१४॥
तेनैव कर्मणा त्वं वै देवर्षिपितृणामृणात् । विमुक्तो नृपशार्दूल परं मोक्षमवाप्स्यसि ॥१५॥

श्रीनारद उवाच

तदाऽतिहर्षितो राजा श्रुत्वा वाक्यं महामुनेः । पुनः पप्रच्छ संदेहं याज्ञवल्क्यं महामुनिम् ॥१६॥

राजोवाच

कस्मिन् कुले कुत्र देशे भविष्यः श्रीहरिः स्वयम् । कीदृग्रूपश्च किंवर्णो वर्षैश्च कतिभिर्गतैः ॥१७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच

द्वापरस्य युगस्यास्य तव राज्यान्महाभुज । अवशेषे वर्षशते तथा पञ्चदशे नृप ॥१८॥
तस्मिन्वर्षे यदुकुले मथुरायां यदोः पुरे । भाद्रे बुधे कृष्णपक्षे धात्रर्क्षे हर्षणे वृषे ॥१९॥
ववेऽष्टम्यामर्द्धरात्रे नक्षत्रेशमहोदये । अंधकारावृते काले देवक्यां शौरिमन्दिरे ॥२०॥
भविष्यति हरिः साक्षादरण्यामध्वरेऽग्निवत् । श्रीवत्सांको घनश्यामो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥२१॥
पीतांबरः पद्मनेत्रो भविष्यति चतुर्भुजः ।
तस्मै देया त्वया कन्या आयुस्तेऽस्ति न संशयः ॥२२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे अयोध्यापुरवासिन्युपाख्यानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

तुम्हें पुत्रियाँ करोड़ोंकी संख्यामें प्राप्त होंगी। १२॥ राजाने कहा—हे मुनीन्द्र! पुत्रके बिना कोई भी इस भूतलपर पूर्वजोंके ऋणसे मुक्त नहीं होता। पुत्रहीनके घरमें सदा ही व्यथा बनी रहती है। उसे इस लोक या परलोकमें कुछ भी सुख नहीं मिलता॥ १३॥ याज्ञवल्क्य बोले—हे राजेन्द्र! खेद न करो। भविष्यमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार होनेवाला है। तुम उन्हींको दहेजके साथ अपनी सब पुत्रियाँ समर्पित कर देना॥ १४॥ हे नृपश्रेष्ठ! उसी कर्मसे तुम देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके ऋणसे छूटकर परम मोक्ष प्राप्त कर लोगे॥१५॥ श्रीनारदजी कहते हैं—महामुनिका यह वचन सुनकर उस समय राजाको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने महर्षि याज्ञवल्क्यसे पुनः अपना संदेह पूछा॥ १६॥ राजा बोले—हे मुनीश्वर! कितने वर्ष बीतनेपर किस देशमें और किस कुलमें साक्षात् श्रीहरि अवतीर्ण होंगे? उस समय उनका रूप-रंग कैसा होगा? ॥ १७॥ याज्ञवल्क्य बोले—हे महाबाहो! इस द्वापरयुगके जो अवशिष्ट वर्ष हैं, उन्हींमें तुम्हारे राज्यकालसे एक सौ पंद्रह वर्ष व्यतीत होनेपर यादवपुरी मथुरामें यदुकुलके भीतर भाद्रपदमास, कृष्णपक्ष, बुधवार, रोहिणी नक्षत्र, हर्षण योग, वृषलग्न, वव करण और अष्टमी तिथिको आधी रातके समय चन्द्रोदय-कालमें, जब कि सब कुछ अन्धकारसे आच्छन्न होगा, वासुदेव-भवनमें देवकीके गर्भसे साक्षात् श्रीहरिका आविर्भाव होगा—ठीक उसी तरह जैसे यज्ञमें अरणि-काष्ठसे अग्निका प्राकट्य होता है। भगवान्‌के वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न होगा। उनकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम होगी। वे वनमालासे अलंकृत और अतीव सुन्दर होंगे॥ १८–२१॥ वे पीताम्बरधारी, कमलनयन तथा अवतारकालमें चतुर्भुज होंगे। तुम उन्हें अपनी कन्याएँ दे देना। तुम्हारी आयु अभी बहुत है। तुम उस समयतक जीवित रहोगे, इसमें संशय नहीं है॥ २२॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(अयोध्यापुरवासिनी स्त्रियोंका राजा विमलके यहाँ पुत्रीरूपसे उत्पन्न होना)

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा गते साक्षाद्याज्ञवल्क्ये महामुनौ । अतीव हर्षमापन्नो विमलश्चम्पकापतिः ॥ १ ॥
अयोध्यापुरवासिन्यः श्रीरामस्य वराच्च याः । बभूवुस्तस्य भार्यासु ताः सर्वाः कन्यकाः शुभाः॥ २ ॥
विवाहयोग्यास्ता दृष्ट्वा चिन्तयंश्चम्पकापतिः । याज्ञवल्क्यवचः स्मृत्वा दूतमाह नृपेश्वरः ॥ ३ ॥

विमल उवाच

मथुरां गच्छ दूत त्वं गत्वा शौरिगृहं शुभम् । दर्शनीयस्त्वया पुत्रो वसुदेवस्य सुन्दरः ॥ ४ ॥
श्रीवत्सांको घनश्यामो वनमाली चतुर्भुजः । यदि स्यात्तर्हि दास्यामि तस्मै सर्वाः सुकन्यकाः॥ ५ ॥

श्रीनारद उवाच

इति वाक्यं ततः श्रुत्वा दूतोऽसौ मथुरां गतः । पप्रच्छ सर्वाभिप्रायं माथुरांश्च महाजनान् ॥ ६ ॥
तद्वाक्यं माथुराः श्रुत्वा कंसभीताः सुबुद्धयः । तं दूतं रहसि प्राहुः कर्णांते मंदवाग्यथा ॥ ७ ॥

माथुरा ऊचुः

वसुदेवस्य ये पुत्राः कंसेन बहवो हताः । एकाऽवशिष्टावरजा कन्या साऽपि दिवं गता ॥ ८ ॥
वसुदेवोऽस्ति चात्रैव ह्यपुत्रो दीनमानसः । इदं न कथनीयं हि त्वया कंसभयं पुरे ॥ ९ ॥
शौरिसंतानवार्तां यो वक्ति चेन्मथुरापुरे । तं दंडयति कंसोऽसौ शौर्यष्टमशिशो रिपुः ॥१०॥

श्रीनारद उवाच

जनवाक्यं ततः श्रुत्वा दूतो वै चम्पकापुरीम् । गत्वाऽथ कथयामास राज्ञे कारणमद्भुतम् ॥ ११ ॥

दूत उवाच

मथुरायामस्ति शौरिरनपत्योऽतिदीनवत् । तत्पुत्रास्तु पुरा जाताः कंसेन निहताः श्रुतम् ॥१२॥

नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यों कहकर जब साक्षात् महामुनि याज्ञवल्क्य चले गये, तब चम्पका नगरीके स्वामी राजा विमलको बड़ा हर्ष हुआ॥ १ ॥ अयोध्यापुरवासिनी स्त्रियाँ श्रीरामके वरदानसे उनकी रानियोंके गर्भसे पुत्रीरूपमें प्रकट हुईं। वे सभी राजकन्याएँ बड़ी सुन्दरी थीं ॥ २ ॥ उन्हें विवाहके योग्य अवस्थामें देखकर नृपशिरोमणि चम्पकेश्वरको चिन्ता हुई। उन्होंने याज्ञवल्क्यजीकी बातको याद करके दूतसे कहा ॥ ३ ॥ राजा विमल बोले—हे दूत ! तुम मथुरा जाओ और वहाँ शूरपुत्र वसुदेवके सुन्दर घरतक पहुँचकर देखो। वसुदेवका कोई बहुत सुन्दर पुत्र होगा ॥ ४ ॥ उसके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न होगा, अङ्गकान्ति मेघमालाकी भाँति श्याम होगी तथा वह वनमालाधारी एवं चतुर्भुज होगो। यदि ऐसी बात होगी तो मैं उसके हाथमें अपनी समस्त सुन्दरी कन्याएँ दे दूँगा ॥५॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! महाराज विमलकी यह बात सुनकर वह दूत मथुरापुरीमें गया और मथुराके बड़े-बड़े लोगोंसे उसने सारी अभीष्ट बातें पूछीं ॥ ६ ॥ उसकी बात सुनकर मथुराके बुद्धिमान् लोग, जो कंससे डरे हुए थे, उस दूतको एकान्तमें ले जाकर उसके कानमें बहुत धीमे स्वरसे बोले ॥ ७ ॥ मथुरानिवासियोंने कहा—वसुदेवके जो बहुत-से पुत्र हुए, वे कंसके द्वारा मारे गये। एक छोटी-सी कन्या बच गयी थी, किंतु वह भी आकाशमें उड़ गयी ॥ ८ ॥ वसुदेव यहीं रहते हैं, किंतु पुत्रोंसे बिछुड़ जानेके कारण उनके मनमें बड़ा दुःख है। इस समय जो बात तुम हमलोगोंसे पूछ रहे हो, उसे और कहीं न कहना; क्योंकि इस नगरमें कंसका भय है ॥ ९ ॥ मथुरापुरीमें जो वसुदेवकी संतानके सम्बन्धमें कोई बात करता है, उसे उनके आठवें पुत्रका शत्रु कंस भारी दण्ड देता है ॥ १० ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! जनसाधारणकी यह बात सुनकर दूत चम्पकापुरीमें लौट गया। वहाँ जाकर राजासे उसने वह अद्भुत संवाद कह सुनाया ॥ ११ ॥ दूत बोला—हे महाराज ! मथुरामें शूरपुत्र वसुदेव अवश्य हैं, किंतु संतानहीन होनेके कारण अत्यन्त दीनकी भाँति जीवन व्यतीत करते हैं। सुना है कि पहले उनके अनेक पुत्र हुए थे, जो

एकावशिष्टा कन्याऽपि खं गता कंसहस्ततः । एवं श्रुत्वा यदुपुरान्निर्गतोऽहं शनैः शनैः ॥१३॥
चरन् वृन्दावने रम्ये कालिन्दीनिकटे शुभे । अकस्माल्लतिकावृन्दे दृष्टः कश्चिच्छिशुर्मया ॥१४॥
तल्लक्षणसमो राजन् गोगोपगणमध्यतः । श्रीवत्सांको घनश्यामो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥१५॥
द्विभुजो गोपसूनुश्च परं त्वेतद्विलक्षणम् । त्वया चतुर्भुजश्चोक्तो वसुदेवात्मजो हरिः ॥१६॥
किं कर्त्तव्यं वद नृप मुनिवाक्यं मृषा नहि । यत्र यत्र यथेच्छा ते तत्र मां प्रेषय प्रभो ॥१७॥

श्रीनारद उवाच

इति चिन्तयतस्तस्य विस्मितस्य नृपस्य च । गजाह्वयात्सिन्धुदेशाञ्जेतुं भीष्मः समागतः ॥१८॥
तं पूज्य विमलो राजा दत्त्वा तस्मै बलिं बहु । पप्रच्छ सर्वाभिप्रायं भीष्मं धर्मभृतां वरम् ॥१९॥

विमल उवाच

याज्ञवल्क्येन पूर्वोक्तो मथुरायां हरिः स्वयम् । वसुदेवस्य देवक्यां भविष्यति न संशयः ॥२०॥
न जातो वसुदेवस्य सकाशेऽद्य हरिः परः । ऋषिवाक्यं मृषा न स्यात्कस्मै दास्यामि कन्यकाः ॥
महाभागवतः साक्षात्त्वं परावरवित्तमः । जितेन्द्रियो बाल्यभावाद्वीरो धन्वी वसूत्तमः ॥
एतद्वद महाबुद्धे किं कर्त्तव्यं मयाऽत्र वै ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

विमलं प्राह गांगेयो महाभागवतः कविः । दिव्यदृग्धर्मतत्त्वज्ञः श्रीकृष्णस्य प्रभाववित् ॥२३॥

भीष्म उवाच

हे राजन् गुप्तमाख्यानं वेदव्यासमुखाच्छ्रुतम् । सर्वपापहरं पुण्यं शृणु हर्षविवर्द्धनम् ॥२४॥
देवानां रक्षणार्थाय दैत्यानां हि वधाय च । वसुदेवगृहे जातः परिपूर्णतमो हरिः ॥२५॥

कंसके हाथों मारे गये हैं ॥ १२ ॥ एक कन्या बची थी, किंतु वह भी कंसके हाथसे छूटकर आकाशमें उड़ गयी। यह वृत्तान्त सुनकर मैं यदुपुरीसे धीरे-धीरे बाहर निकला ॥ १३ ॥ वृन्दावनमें कालिन्दीके सुन्दर एवं रमणीय तटपर विचरते हुए मैंने लताओंके समूहमें अकस्मात् एक बालक देखा ॥ १४ ॥ हे राजन् ! गोपोंके मध्य दूसरा कोई ऐसा बालक नहीं था, जिसके लक्षण उसके समान हों। उस बालकके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न था। उसकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम थी और वह वनमाला धारण किये अत्यन्त सुन्दर दिखायी देता था ॥ १५ ॥ परंतु अन्तर इतना ही है कि उस गोप-बालकके दो ही बाँहें थीं और आपने वसुदेवकुमार श्रीहरिको चतुर्भुज बताया था ॥ १६ ॥ हे नरेश्वर ! बताइये, अब क्या करना चाहिये ? क्योंकि मुनिकी बात झूठी नहीं हो सकती। हे प्रभो ! जहाँ जहाँ, जिस तरह आपकी इच्छा हो, उसके अनुसार वहाँ-वहाँ मुझे भेजिये ॥ १७ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! राजा विमल जन इस प्रकार विस्मित होकर विचार कर रहे थे, उसी समय हस्तिनापुरसे सिन्धुदेशको जीतनेके लिये भीष्म आये ॥ १८ ॥ राजा विमलने उनको बहुतेरे उपहार दिये और धर्मात्माओंमें अग्रणी भीष्मसे अपना अभिप्राय कहा ॥ १९ ॥ विमल बोले—हे महाबुद्धिमान् भीष्मजी ! पहले याज्ञवल्क्यजीने मुझसे कहा था कि मथुरामें साक्षात् श्रीहरि वसुदेवकी पत्नी देवकीके गर्भसे प्रकट होंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ २० ॥ परंतु इस समय वसुदेवके यहाँ परमेश्वर श्रीहरिका प्राकट्य नहीं हुआ है। साथ ही ऋषिकी बात झूठी हो नहीं सकती; अतः इस समय मैं अपनी कन्याओंका दान किसके हाथमें करूँ ? ॥ २१ ॥ आप साक्षात् महाभागवत हैं और पूर्वापरकी बातें जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। बचपनसे ही आपने इन्द्रियों-पर विजय पायी है। आप वीर, धनुर्धर एवं वसुओंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये यह बताइये कि अब मुझे क्या करना चाहिये ॥ २२ ॥ नारदजी कहते हैं—गङ्गानन्दन भीष्मजी महान् भगवद्भक्त, विद्वान्, दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न, धर्मके तत्त्वज्ञ तथा श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले थे। उन्होंने राजा विमलसे कहा ॥ २३ ॥ भीष्मजी बोले—हे राजन् ! यह एक गुप्त बात है, जिसे मैंने वेदव्यासजीके मुँहसे सुनी थी। यह प्रसङ्ग समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यप्रद तथा हर्षवर्धक है; इसे सुनो ॥ २४ ॥ परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरि देवताओंकी रक्षा

अर्धरात्रे कंसभयान्नीत्वा शौरिश्च तं त्वरम् । गत्वा च गोकुले पुत्रं निधाय शयने नृप ॥२६॥
यशोदानन्दयोः पुत्रीं मायां नीत्वा पुरं ययौ । ववृधे गोकुले कृष्णो गुप्तो ज्ञातो न कैर्नृभिः॥२७॥
सोऽद्यैव वृन्दकारण्ये हरिर्गोपालवेषधृक् । एकादश समास्तत्र गूढो वासं करिष्यति ॥
दैत्यं कंसं घातयित्वा प्रकटः स भविष्यति ॥२८॥
अयोध्यापुरवासिन्यः श्रीरामस्य वराच्च याः । ताः सर्वास्तव भार्यासु बभूवुः कन्यकाः शुभाः ॥२९॥
गूढाय देवदेवाय देयाः कन्यास्त्वया खलु । न विलम्बः क्वचित्कार्यो देहः कालवशो ह्ययम् ॥३०॥
इत्युक्त्वाऽथ गते भीष्मे सर्वज्ञे हस्तिनापुरम् । दूतं स्वं प्रेषयामास विमलो नन्दसूनवे ॥३१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादेऽयोध्यापुरवासिन्युपाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(राजा विमलका संदेश पाकर भगवान् श्रीकृष्णका उन्हें दर्शन देना)

श्रीनारद उवाच

अथ दूतः सिन्धुदेशान्माथुरान्पुनरागतः । चरन् वृन्दावने कृष्णातीरे कृष्णं ददर्श ह ॥ १ ॥
कृष्णं प्रणम्य रहसि कृताञ्जलिपुटः शनैः । प्रदक्षिणीकृत्य दूतो विमलोक्तमुवाच सः ॥ २ ॥

दूत उवाच

स्वयं परं ब्रह्म परः परेशः परैरदृश्यः परिपूर्णदेवः ।
यः पुण्यसंघैः सततं हि दूरस्तस्मै नमः सज्जनगोचराय ॥ ३ ॥
गोविप्रदेवश्रुतिसाधुधर्मरक्षार्थमद्यैव यदोः कुलेऽजः ।
जातोऽसि कंसादिवधाय योऽसौ तस्मै नमोऽनंतगुणार्णवाय ॥ ४ ॥

तथा दैत्योंका वध करनेके लिये वसुदेवके घरमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ २५ ॥ किंतु आधी रातके समय वसुदेव कंसके भयसे उस बालकको लेकर तुरंत गोकुल चले गये और वहाँ अपने पुत्रको यशोदाकी शय्यापर सुलाकर, यशोदा और नन्दकी पुत्री मायाको साथ ले, मथुरापुरीमें लौट आये। इस प्रकार श्रीकृष्ण गोकुलमें गुप्तरूपसे पलकर बड़े हुए हैं, यह बात दूसरे कोई भी मनुष्य नहीं जानते ॥ २६ ॥ २७ ॥ वे ही गोपालवेषधारी श्रीहरि वृन्दावनमें ग्यारह वर्षोंतक गुप्तरूपसे निवास करेंगे। फिर कंस-दैत्यका वध करके प्रकट हो जायँगे ॥ २८ ॥ अयोध्यापुरवासिनी जो नारियाँ श्रीरामचन्द्रजीके वरसे गोपीभावको प्राप्त हुई हैं, वे सब तुम्हारी पत्नियोंके गर्भसे सुन्दरी कन्याओंके रूपमें उत्पन्न हुई हैं ॥ २९ ॥ तुम उन गूढ़रूपमें विद्यमान देवाधिदेव श्रीकृष्णको अपनी समस्त कन्याएं अवश्य दे दो। इस कार्यमें कदापि विलम्ब न करो; क्योंकि यह शरीर कालके अधीन है ॥३०॥ यों कहकर जब सर्वज्ञ भीष्मजी हस्तिनापुरको चले गये, तब राजा विमलने नन्दनन्दनके पास अपना दूत भेजा ॥ ३१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर दूत पुनः सिन्धुदेशसे मथुरा-मण्डलमें आया। वृन्दावनमें विचरते हुए यमुनाके तटपर उसको श्रीकृष्णका दर्शन हुआ ॥ १ ॥ एकान्तमें श्रीकृष्णको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर और उनकी परिक्रमा करके उसने धीरे-धीरे राजा विमलकी कही हुई बात दुहरायी ॥२॥ दूतने कहा—जो स्वयं परब्रह्म परमेश्वर हैं, सबसे परे और सबके द्वारा अदृश्य हैं, जो परिपूर्ण देव पुण्यकी राशिसे भी सदा दूर और ऊपर उठे हुए हैं, तथापि संतजनोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाले हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मेरा नमस्कार है ॥ ३ ॥ गौ, ब्राह्मण, देवता, वेद, साधु पुरुष तथा धर्मकी रक्षाके लिये जो अजन्मा होनेपर भी इन दिनों कंसादि दैत्योंके वधके लिये यदुकुलमें उत्पन्न हुए हैं, उन अनन्त गुणोंके महासागर आप श्रीहरिको

अहो परं भाग्यमलं व्रजौकसां धन्यं कुलं नन्दवरस्य ते पितुः ।
धन्यो व्रजो धन्यमरण्यमेतद्यत्रैव साक्षात्प्रकटः परो हरिः ॥ ५ ॥
यद्राधिकासुन्दरकण्ठरत्नं यद्गोपिकाजीवनमूलरूपम् ।
तदेव मन्नेत्रपथि प्रजातं किं वर्णये भाग्यमतः स्वकीयम् ॥ ६ ॥
गुप्तो व्रजे गोपमिषेण चासि कस्तूरिकामोद इव प्रसिद्धः ।
यशश्च ते निर्मलमाशु शुक्लीकरोति सर्वत्र गतं त्रिलोकीम् ॥ ७ ॥
जानासि सर्वं जनचैत्त्यभावं क्षेत्रज्ञ आत्मा कृतिवृन्दसाक्षी ।
तथापि वक्ष्ये नृपवाक्यमुक्तं परं रहस्यं रहसि स्वधर्मम् ॥ ८ ॥
या सिन्धुदेशेषु पुरी प्रसिद्धा श्रीचम्पका नाम शुभा यथैन्द्री ।
तत्पालकोऽसौ विमलो यथेन्द्रस्त्वत्पादपद्मे कृतचित्तवृत्तिः ॥ ९ ॥
सदा कृतं यज्ञशतं त्वदर्थं दानं तपो ब्राह्मणसेवनं च ।
तीर्थं जपं येन सुसाधनेन तस्मै परं दर्शनमेव देहि ॥१०॥
तत्कन्यकाः पद्मविशालनेत्राः पूर्णं पतिं त्वां मृगयंत्य आरात् ।
सदा त्वदर्थं नियमव्रतस्थास्त्वत्पादसेवाविमलीकृतांगाः ॥११॥
गृहाण तासां व्रजदेव पाणीन्दत्त्वा परं दर्शनमद्भुतं स्वम् ।
गच्छाशु सिन्धून् विशदीकुरु त्वं विमृश्य कर्तव्यमिदं त्वया हि ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

दूतवाक्यं च तच्छ्रुत्वा प्रसन्नो भगवान्हरिः । क्षणमात्रेण गतवान्सदूतश्चम्पकां पुरीम् ॥१३॥
विमलस्य महायज्ञे वेदध्वनिसमाकुले । सदूतः कृष्ण आकाशात्सहसाऽवततार ह ॥१४॥

मेरा नमस्कार है ॥ ४ ॥ अहो ! व्रजवासियोंका बहुत बड़ा सौभाग्य है । आपके पिता नन्दराजका कुल धन्य है, यह व्रजमण्डल तथा यह वृन्दावन धन्य हैं, जहाँ आप परमेश्वर श्रीहरि साक्षात् प्रकट हुए हैं ॥५॥ हे प्रभो! आप श्रीराधारानीके कण्ठमें सुशोभित सुन्दर (नीलमणिमय) हार हैं, जो गोपियोंके मूलस्वरूप हैं, वे ही आप मेरे सम्मुख उपस्थित हैं । मैं अपने भाग्यकी कहाँतक सराहना करूँ ॥६॥ आप गोपवेशमें गुप्तरूपसे व्रजमें रह रहे हैं । कस्तूरीकी सुगन्धकी भाँति आप सर्वत्र प्रसिद्ध हैं और आपका सर्वत्र फैला हुआ निर्मल यश सम्पूर्ण त्रिलोकीको तत्काल श्वेत किये देता है ॥७॥ आप सभी लोगोंके चित्तका सम्पूर्ण अभिप्राय जानते हैं; क्योंकि आप समस्त क्षेत्रोंके ज्ञाता आत्मा हैं और कर्मराशिके साक्षी हैं । तथापि राजा विमलने जो परम रहस्यकी और स्वधर्मसे सम्बद्ध बात कही है, उसे मैं आपको एकान्तमें बताऊँगा ॥ ८ ॥ सिन्धुदेशमें जो चम्पका नामसे प्रसिद्ध इन्द्रपुरीके समान सुन्दर नगरी है, उसके पालक राजा विमल देवराज इन्द्रके समान ऐश्वर्यशाली हैं । उनकी चित्तवृत्ति सदा आपके चरणारविन्दोंमें लगी रहती है ॥ ९ ॥ उन्होंने आपकी प्रसन्नताके लिये सदा सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान किया है तथा दान, तप, ब्राह्मणसेवा, तीर्थसेवन और जप आदि किये हैं । उनके इन उत्तम साधनोंको निमित्त बनाकर आप उन्हें अपना सर्वोत्कृष्ट दर्शन अवश्य दीजिये ॥ १० ॥ उनकी बहुत-सी कन्याएँ हैं, जो प्रफुल्ल कमल-दलके समान विशाल नेत्रोंसे सुशोभित हैं और आप पूर्ण परमेश्वरको पतिरूपमें अपने निकट पानेके शुभ अवसरकी प्रतीक्षा करती हैं । वे राजकुमारियाँ सदा आपकी प्राप्तिके लिये नियमों और व्रतोंके पालनमें तत्पर हैं तथा आपके चरणोंकी सेवासे उनके तन-मन निर्मल हो गये हैं ॥ ११ ॥ हे व्रजके देवता ! आप अपना उत्तम और अद्भुत दर्शन देकर उन सब राजकन्याओंका पाणिग्रहण कीजिये । इस समय आपके समक्ष जो यह कर्तव्य प्राप्त हुआ है, इसपर विचार करके आप सिन्धुदेशमें चलिये और वहाँके लोगोंको अपने पावन दर्शनसे विशुद्ध कीजिये ॥ १२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उस दूतकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीहरि बड़े प्रसन्न हुए और क्षणभरमें दूतके साथ ही चम्पकापुरीमें जा पहुँचे ॥ १३ ॥ उस

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं सुन्दरं वनमालिनम् । पीतांबरं पद्मनेत्रं यज्ञवाटागतं हरिम् ॥१५॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय विमलः प्रेमविह्वलः । पपात चरणोपांते रोमांची सत्कृताञ्जलिः ॥१६॥
संस्थाप्य पीठके दिव्ये रत्नहेमखचित्तके । स्तुत्वा सम्पूज्य विधिवद्राजा तत्संमुखे स्थितः॥१७॥
गवाक्षेभ्यः प्रपश्यन्तीः सुन्दरीर्वीक्ष्य माधवः । उवाच विमलं कृष्णो मेघगंभीरया गिरा ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

महामते वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्त्तते । याज्ञवल्क्यस्य वचसा जातं मद्दर्शनं तव ॥१९॥

विमल उवाच

मनो मे भ्रमरीभूतं सदा त्वत्पादपंकजे । वासं कुर्याद्देवदेव नान्येच्छा मे कदाचन ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा विमलो राजा सर्वं कोशधनं महत् । द्विपवाजिरथैः सार्द्धं चक्रे आत्मनिवेदनम् ॥२१॥
समर्प्य विधिना सर्वाः कन्यका हरये नृप । नमश्चक्रार कृष्णाय विमलो भक्तितत्परः ॥२२॥
तदा जयजयारावो बभूव जनमण्डले । ववृषुः पुष्पवर्षाणि देवता गगनस्थिताः ॥२३॥
तदैव कृष्णसारूप्यं प्राप्तोऽनंगस्फुरद्द्युतिः । शतसूर्यप्रतीकाशो द्योतयन्मंडलं दिशाम् ॥२४॥
वैनतेयं समारुह्य नत्वा श्रीगरुडध्वजम् । सभार्यः पश्यतां नृणां वैकुंठं विमलो ययौ ॥२५॥
दत्त्वा मुक्तिं नृपतये श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । तत्सुताः सुन्दरीर्नीत्वा व्रजमंडलमाययौ ॥२६॥

तत्र कामवने रम्ये दिव्यमन्दिरसंयुते ।
क्रीडन्त्यः कंदुकैः सर्वास्तस्थुः कृष्णप्रियाः शुभाः ॥२७॥

समय राजा विमलका महान् यज्ञ चालू था। उसमें वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गूँज रही थी। दूतसहित भगवान् श्रीकृष्ण सहसा आकाशसे उस यज्ञमें उतरे ॥ १४ ॥ वक्षःस्थलमें श्रीवत्सके चिह्नसे सुशोभित, मेघके समान श्याम कान्तिधारी, सुन्दर वनमालालंकृत, पीतपटावृत तथा कमलनयन श्रीहरिको यज्ञभूमिमें आया देख राजा विमल सहसा उठकर खड़े हो गये और प्रेमसे विह्वल हो, दोनों हाथ जोड़ उनके चरणोंके समीप गिर पड़े ॥ १५ ॥ १६ ॥ उस समय उनके अङ्ग-अङ्गमें रोमाञ्च हो आया था। फिर उठकर राजाने रत्न और सुवर्णसे जटित दिव्य सिंहासनपर भगवान्‌को बिठाया, उनका स्तवन किया तथा विधिवत् पूजन करके वे उनके सामने खड़े हो गये ॥ १७ ॥ खिड़कियोंसे झाँककर देखती हुई सुन्दरी राजकुमारियोंकी ओर दृष्टिपात करके माधव श्रीकृष्णने मेघके समान गम्भीर वाणीमें राजा विमलसे कहा ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे महामते! तुम्हारे मनमें जो वाञ्छनीय हो, वह वर मुझसे माँगो। महामुनि याज्ञवल्क्यके वचनसे ही इस समय तुम्हें मेरा दर्शन हुआ है ॥ १९ ॥ विमलने कहा—हे देवदेव! मेरा मन आपके चरणारविन्दमें भ्रमर होकर निवास करे, यही मेरी इच्छा है। इसके सिवा दूसरी कोई अभिलाषा कभी मेरे मनमें नहीं होती ॥ २० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—यों कहकर राजा विमलने अपना सारा कोश और महान् वैभव, हाथी, घोड़े एवं रथोंके साथ श्रीकृष्णार्पण कर दिया। अपने-आपको भी उनके चरणोंकी भेंट कर दिया ॥ २१ ॥ हे नरेश्वर! अपनी समस्त कन्याओंको विधिपूर्वक श्रीहरिके हाथोंमें समर्पित करके भक्ति-विह्वल राजा विमलने श्रीकृष्णको नमस्कार किया ॥ २२ ॥ उस समय जन-मण्डलमें जय-जयकारका शब्द गूँज उठा और आकाशमें खड़े देवताओंने वहाँ दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की ॥ २३ ॥ फिर उसी समय राजा विमलको भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त हो गया। उनकी अङ्गकान्ति कामदेवके समान प्रकाशित हो उठी। शत सूर्योंके समान तेज धारण किये वे दिशामण्डलको उद्भासित करने लगे ॥ २४ ॥ उस यज्ञमें उपस्थित सम्पूर्ण मनुष्योंके देखते-देखते पत्नियोंसहित राजा विमल गरुड़पर आरूढ हो भगवान् श्रीगरुडध्वजको नमस्कार करके वैकुण्ठलोकमें चले गये ॥ २५ ॥ इस प्रकार राजाको मोक्ष प्रदान करके स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उनकी सुन्दरी कुमारियोंको साथ ले, व्रज-मण्डलमें आ गये ॥ २६ ॥ वहाँ रमणीय कामवनमें, जो दिव्य मन्दिरोंसे सुशोभित था, वे सुन्दरी कृष्णप्रियाएँ

यावतीश्च प्रिया मुख्यास्तावद्रूपधरो हरिः । रराज रासे व्रजराड्रञ्जयंस्तन्मनाः प्रभुः ॥२८॥
रासे विमलपुत्रीणामानन्दजलबिन्दुभिः । च्युतैर्विमलकुण्डोऽभूत्तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥२९॥
दृष्ट्वा पीत्वा च तं स्नात्वा पूजयित्वा नृपेश्वर । छित्त्वा मेरुसमं पापं गोलोकं याति मानवः ॥३०॥
अयोध्यावासिनीनां तु कथां यः शृणुयान्नरः । स व्रजेद्धाम परमं गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥३१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादेऽयोध्यापुरवासिन्युपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

(यज्ञसीतास्वरूपा गोपियोंके पूछनेपर श्रीराधाका एकादशीव्रतका अनुष्ठान बताना)

श्रीनारद उवाच

गोपीनां यज्ञसीतानामाख्यानं शृणु मैथिल । सर्वपापहरं पुण्यं कामदं मंगलायनम् ॥ १ ॥
उशीनरो नाम देशो दक्षिणस्यां दिशि स्थितः । एकदा तत्र पर्जन्यो न ववर्ष समा दश ॥ २ ॥
धनवंतस्तत्र गोपा अनावृष्टिभयातुराः । सकुटुम्बा गोधनैश्च व्रजमण्डलमाययुः ॥ ३ ॥
पुण्ये वृन्दावने रम्ये कालिन्दीनिकटे शुभे । नन्दराजसहायेन वासं ते चक्रिरे नृप ॥ ४ ॥
तेषां गृहेषु संजाता यज्ञसीताश्च गोपिकाः । श्रीरामस्य वरा दिव्या दिव्ययौवनभूषिताः ॥ ५ ॥
श्रीकृष्णं सुन्दरं दृष्ट्वा मोहितास्ता नृपेश्वर । व्रतं कृष्णप्रसादार्थं प्रष्टुं राधां समाययुः ॥ ६ ॥

गोप्य ऊचुः

वृषभानुसुते दिव्ये हे राधे कंजलोचने । श्रीकृष्णस्य प्रसादार्थं वद किंचिद्व्रतं शुभम् ॥ ७ ॥
तव वश्यो नन्दसूनुर्देवैरपि सुदुर्गमः । त्वं जगन्मोहिनी राधे सर्वशास्त्रार्थपारगा ॥ ८ ॥

आकर रहने और भगवान्‌के साथ कन्दुक-क्रीड़से मन बहलाने लगीं ॥ २७ ॥ जितनी संख्यामें वे श्रीकृष्णप्रिया सखियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके सुन्दर व्रजराज श्रीकृष्ण रासमण्डलमें उनका मनोरञ्जन करते हुए विराजमान हुए ॥ २८ ॥ उस रासमण्डलमें उन विमलकुमारियोंके नेत्रोंसे जो आनन्दजनित जलबिन्दु च्युत होकर गिरे, उन सबसे वहाँ 'विमलकुण्ड' नामक तीर्थ प्रकट हो गया, जो सब तीर्थोंमें उत्तम है ॥ २९ ॥ हे नृपेश्वर ! विमलकुण्डका दर्शन करके, उसका जल पीकर तथा उसमें स्नान-पूजन करके मनुष्य मेरुपर्वतके समान विशाल पापको भी नष्ट कर डालता और गोलोकधाममें जाता है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य अयोध्यावासिनी गोपियोंके इस कथानकको सुनेगा, वह योगिदुर्लभ परमधाम गोलोकमें जायगा ॥ ३१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश्वर ! अब यज्ञसीतास्वरूपा गोपियोंका वर्णन सुनो, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक, कामनापूरक तथा मङ्गलका धाम है ॥ १ ॥ दक्षिण दिशामें उशीनर नामसे प्रसिद्ध एक देश है, जहाँ एक समय दस वर्षोंतक इन्द्रने वर्षा नहीं की ॥ २ ॥ उस देशमें जो गोधनसे सम्पन्न गोप थे, वे अनावृष्टिके भयसे व्याकुल हो अपने कुटुम्ब और गोधनोंके साथ व्रजमण्डलमें आ गये ॥ ३ ॥ हे नरेश्वर ! नन्दराजकी सहायतासे वे पवित्र वृन्दावनमें यमुनाके सुन्दर एवं सुरम्य तटपर निवास करने लगे ॥ ४ ॥ भगवान् श्रीरामके वरसे यज्ञसीतास्वरूपा गोपाङ्गनाएँ उन्हींके घरोंमें उत्पन्न हुईं। उन सबके शरीर दिव्य थे तथा वे दिव्य यौवनसे विभूषित थीं ॥ ५ ॥ हे नृपेश्वर ! एक दिन वे सुन्दर श्रीकृष्णका दर्शन करके उनपर मोहित हो गयीं और श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये कोई व्रत पूछनेके उद्देश्यसे श्रीराधाके पास गयीं ॥६॥ गोपियाँ बोलीं—दिव्यस्वरूपे, कमललोचने, वृषभानुनन्दिनी हे श्रीराधे ! आप हमें श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये कोई शुभ व्रत बतायें ॥ ७ ॥ जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ हैं, वे श्रीनन्दनन्दन तुम्हारे वशमें रहते

श्रीराधोवाच

श्रीकृष्णस्य प्रसादार्थं कुरुतैकादशीव्रतम् । तेन वश्यो हरिः साक्षाद्भविष्यति न संशयः ॥ ९ ॥

गोप्य ऊचुः

संवत्सरस्य द्वादश्या नामानि वद राधिके । मासे मासे व्रतं तस्याः कर्तव्यं केन भावतः ॥१०॥

श्रीराधोवाच

मार्गशीर्षे कृष्णपक्षे उत्पन्ना विष्णुदेहतः । मुरदैत्यवधार्थाय तिथिरेकादशी वरा ॥११॥

मासे मासे पृथग्भूता सैव सर्वव्रतोत्तमा । तस्याः षड्विंशतिं नाम्नां वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥

उत्पत्तिश्च तथा मोक्षा सफला च ततः परम् । पुत्रदा षट्तिला चैव जया च विजया तथा ॥१३॥

आमलकी ततः पश्चान्नाम्ना वै पापमोचनी । कामदा च ततः पश्चात्कथिता वै वरूथिनी ॥१४॥

मोहिनी चापरा प्रोक्ता निर्जला कथिता ततः । योगिनी देवशयनी कामिनी च ततः परम् ॥१५॥

पवित्रा चाप्यजा पद्मा इंदिरा च ततः परम् । पाशांकुशा रमा चैव ततः पश्चात्प्रबोधिनी ॥१६॥

सर्वसंपत्प्रदा चैव द्वे प्रोक्ते मलमासजे । एवं षट्विंशतिं नाम्नामेकादश्याः पठेच्च यः ॥१७॥

संवत्सरद्वादशीनां फलमाप्नोति सोऽपि हि । एकादश्याश्च नियमं शृणुताथ व्रजांगनाः ॥

भूमिशायी दशम्यां तु चैकभुक्तो जितेन्द्रियः ॥१८॥

एकवारं जलं पीत्वा धौतवस्त्रोऽतिनिर्मलः । ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय चैकादश्यां हरिं नतः ॥१९॥

अधमं कूपिकास्नानं वाप्यां स्नानं तु मध्यमम् । तडागे चोत्तमं स्नानं नद्याः स्नानं ततः परम् ॥२०॥

एवं स्नात्वा नरवरः क्रोधलोभविवर्जितः । नालपेत्तद्दिने नीचांस्तथा पाखंडिनो नरान् ॥२१॥

मिथ्यावादरतांश्चैव तथा ब्राह्मणनिन्दकान् । अन्यांश्चैव दुराचारानगम्यागमने रतान् ॥२२॥

हैं। हे राधे ! तुम विश्वमोहिनी हो और सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत भी हो ॥ ८ ॥ श्रीराधाने कहा—हे प्यारी बहिनो ! श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये तुम सब एकादशी-व्रतका अनुष्ठान करो। उससे साक्षात् श्रीहरि तुम्हारे वशमें हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ९ ॥ गोपियोंने पूछा—हे राधिके ! पूरे वर्षभरकी एकादशियोंके क्या नाम हैं, यह बताओ। प्रत्येक मासमें एकादशीका व्रत किस भावसे करना चाहिये ? ॥ १० ॥ श्रीराधाने कहा—हे गोपकुमारियो ! मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षमें भगवान् विष्णुके शरीरसे—मुख्यतः उनके मुखसे मुर दैत्यका वध करनेके लिये एकादशीकी उत्पत्ति हुई, अतः वह तिथि अन्य सब तिथियोंसे श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ प्रत्येक मासमें पृथक्-पृथक् एकादशी होती है। वही सब व्रतोंमें उत्तम है। मैं तुम सबोंके हितकी कामनासे उस तिथिके छब्बीस नाम बता रही हूँ। (मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशीसे आरम्भ करके कार्तिक शुक्ला एकादशीतक चौबीस एकादशी तिथियाँ होती हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—) ॥ १२ ॥ उत्पन्ना, मोक्षा, सफला, पुत्रदा, षट्तिला, जया, विजया, आमलकी, पापमोचनी, कामदा, वरूथिनी, मोहिनी, अपरा, निर्जला, योगिनी, देवशयनी, कामिनी, पवित्रा, अजा, पद्मा, इन्दिरा, पापाङ्कुशा, रमा तथा प्रबोधिनी। दो एकादशी तिथियाँ मलमासकी होती हैं। उन दोनोंका नाम सर्वसम्पत्प्रदा है। इस प्रकार जो एकादशीके छब्बीस नामोंका पाठ करता है, वह वर्षभरकी द्वादशी (एकादशी) तिथियोंके व्रतका फल पा लेता है ॥ १३–१७ ॥ हे व्रजाङ्गनाओ ! अब एकादशी-व्रतके नियम सुनो ! मनुष्यको चाहिये कि वह दशमीको एक ही समय भोजन करे और रातमें जितेन्द्रिय रहकर भूमिपर शयन करे। जल भी एक ही बार पीये। धुला हुआ वस्त्र पहने और तन-मनसे अत्यन्त निर्मल रहे। फिर ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर एकादशीको श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करे ॥ १८ ॥ १९ ॥ तदनन्तर शौचादिसे निवृत्त होकर स्नान करे। कुएँका स्नान सबसे निम्नकोटिका है, बावड़ीका स्नान मध्यम कोटिका है, तालाब और पोखरेका स्नान उत्तम श्रेणीमें गिना गया है और नदीका स्नान उससे भी उत्तम है ॥ २० ॥ इस प्रकार स्नान करके व्रत करनेवाला नरश्रेष्ठ क्रोध और लोभका त्याग करके उस दिन नीचों और पाखण्डी मनुष्योंसे बात न करे ॥ २१ ॥ जो असत्यवादी, ब्राह्मणनिन्दक, दुराचारी,

परद्रव्यापहारांश्च परदाराभिगामिनः । दुर्वृत्तान् भिन्नमर्यादान्नालपेत्स व्रती नरः ॥२३॥
केशवं पूजयित्वा तु नैवेद्यं तत्र कारयेत् । दीपं दद्याद्गृहे तत्र भक्तियुक्तेन चेतसा ॥२४॥
कथाः श्रुत्वा ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्सद्दक्षिणां पुनः । रात्रौ जागरणं कुर्याद्गायन्कृष्णपदानि च ॥२५॥
कांस्यं मांसं मसूरांश्च कोद्रवं चणकं तथा । शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुनम् ॥२६॥
विष्णुव्रते च कर्तव्ये दशम्यां दश वर्जयेत् । द्यूतं क्रीडां च निद्रां च ताम्बूलं दन्तधावनम् ॥२७॥
परापवादं पैशून्यं स्तेयं हिंसां तथा रतिम् । क्रोधाढ्यं ह्यनृतं वाक्यमेकादश्यां विवर्जयेत् ॥२८॥
कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं तैलं वितथभाषणम् । पुष्टिषष्टिमसूरांश्च द्वादश्यां परिवर्जयेत् ॥२९॥
अनेन विधिना कुर्याद्द्वादशीव्रतमुत्तमम् ॥३०॥

गोप्य ऊचुः

एकादशीव्रतस्यास्य कालं वद महामते । किं फलं वद तस्यास्तु माहात्म्यं वद तत्त्वतः ॥३१॥

श्रीराधोवाच

दशमी पंचपंचाशद्घटिका चेत्प्रदृश्यते । तर्हि चैकादशी त्याज्या द्वादशीं समुपोषयेत् ॥३२॥
दशमी पलमात्रेण त्याज्या चैकादशी तिथिः । मदिराबिन्दुपातेन त्याज्यो गंगाघटो यथा ॥३३॥
एकादशी यदा वृद्धिं द्वादशी च यदा गता । तदा परा ह्युपोष्या स्यात्पूर्वा वै द्वादशीव्रते ॥३४॥
एकादशीव्रतस्यास्य फलं वक्ष्ये व्रजांगनाः । यस्य श्रवणमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥३५॥
अष्टाशीतिसहस्राणि द्विजान्भोजयते तु यः । तत्कृतं फलमाप्नोति द्वादशीव्रतकृन्नरः ॥३६॥
ससागरवनोपेतां यो ददाति वसुंधराम् । तत्सहस्रगुणं पुण्यमेकादश्या महाव्रते ॥३७॥
ये संसारार्णवे मग्नाः पापपंकसमाकुले । तेषामुद्धरणार्थाय द्वादशीव्रतमुत्तमम् ॥३८॥

अगम्या स्त्रीके साथ समागममें रत रहनेवाले, परधनहारी, परस्त्रीगामी, दुर्वृत्त तथा मर्यादाका भङ्ग करनेवाले हैं, उनसे भी व्रती मनुष्य बात न करे ॥ २२ ॥ २३ ॥ मन्दिरमें भगवान् केशवका पूजन करके वहाँ नैवेद्य लगवाये और भक्तियुक्त चित्तसे दीपदान करे ॥ २४ ॥ ब्राह्मणोंसे कथा सुनकर उन्हें दक्षिणा दे, रातको जागरण करे और श्रीकृष्ण-सम्बन्धी पदोंका गान एवं कीर्तन करे ॥ २५ ॥ वैष्णवव्रत (एकादशी) का पालन करना हो तो दशमीको काँसेका पात्र, मांस, मसूर, कोदो, चना, साग, शहद, पराया अन्न, दुबारा भोजन तथा मैथुन—इन दस वस्तुओंको त्याग दे ॥ २६ ॥ जुएका खेल, निद्रा, मद्यपान, दन्तधावन, परनिन्दा, चुगली, चोरी, हिंसा, रति, क्रोध और असत्यभाषण—एकादशीको इन ग्यारह वस्तुओंका त्याग कर देना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥ काँसेका पात्र, मांस, शहद, तेल, मिथ्याभोजन, पिट्ठी, साठीका चावल और मसूर आदिका द्वादशीको सेवन न करे। इस विधिसे उत्तम एकादशीव्रतका अनुष्ठान करे ॥ २९ ॥ ३० ॥ गोपियाँ बोलीं—हे परमबुद्धिमती श्रीराधे! एकादशीव्रतका समय बताओ। उससे क्या फल होता है, यह भी कहो तथा एकादशीके माहात्म्यका भी यथार्थरूपसे वर्णन करो ॥ ३१ ॥ श्रीराधाने कहा—यदि दशमी पचपन घड़ी (दण्ड) तक देखी जाती हो तो वह एकादशी त्याज्य है। फिर तो द्वादशीको ही उपवास करना चाहिये ॥३२॥ यदि पलभर भी दशमीका वेध प्राप्त हो तो वह सम्पूर्ण एकादशी तिथि त्याग देने योग्य है—ठीक उसी तरह, जैसे मदिराकी एक बूँद भी पड़ जाय तो गङ्गाजलसे भरा हुआ कलश त्याज्य हो जाता है ॥ ३३ ॥ यदि एकादशी बढ़कर द्वादशीके दिन भी कुछ कालतक विद्यमान हो तो दूसरे दिनवाली एकादशी ही व्रतके योग्य है। पहली एकादशीको उस व्रतमें उपवास नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे व्रजाङ्गनाओ! अब मैं तुम्हें इस एकादशी-व्रतका फल बता रही हूँ, जिसके श्रवणमात्रसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है ॥ ३५ ॥ जो अट्ठासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसको जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको एकादशीका व्रत करनेवाला मनुष्य उस व्रतके पालनमात्रसे पा लेता है ॥ ३६ ॥ जो समुद्र और वनोंसहित सारी वसुंधराका दान करता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यसे भी हजारगुना पुण्य एकादशीके महान् व्रतका अनुष्ठान करनेसे सुलभ

रात्रौ जागरणं कृत्वैकादशीव्रतकृन्नरः । न पश्यति यमं रौद्रं युक्तः पापशतैरपि ॥३९॥
पूजयेद्यो हरिं भक्त्या द्वादश्यां तुलसीदलैः । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥४०॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥४१॥
दश वै मातृके पक्षे तथा वै दश पैतृके । प्रियाया दश पक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः ॥४२॥
यथा शुक्ला तथा कृष्णा द्वयोश्च सदृशं फलम् । धेनुः श्वेता तथा कृष्णा उभयोः सदृशं पयः ॥४३॥
मेरुमन्दरमात्राणि पापानि शतजन्मसु । एका चैकादशी गोप्यो दहते तूलराशिवत् ॥४४॥
विधिवद्विधिहीनं वा द्वादश्यां दानमेव च । स्वल्पं वा सुकृतं गोप्यो मेरुतुल्यं भवेच्च तत् ४५॥
एकादशीदिने विष्णोः शृणुते यो हरेः कथाम् । सप्तद्वीपवतीदाने यत्फलं लभते च सः ॥४६॥
शंखोद्धारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् । एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥४७॥
प्रभासे च कुरुक्षेत्रे केदारे बद्रिकाश्रमे । काश्यां च शूकरक्षेत्रे ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥४८॥
संक्रांतीनां चतुर्लक्षं दानं दत्तं च यन्नरैः । एकादश्युपवासस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥४९॥
नागानां च यथा शेषः पक्षिणां गरुडो यथा । देवानां च यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ५०॥
वृक्षाणां च यथाऽश्वत्थः पत्राणां तुलसी यथा । व्रतानां च तथा गोप्यो वरा चैकादशी तिथिः ॥५१॥
दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्यति यो नरः । तत्तुल्यं फलमाप्नोति द्वादशीव्रतकृन्नरः ॥५२॥
इत्थमेकादशीनां च फलमुक्तं व्रजांगनाः । कुरुताशु व्रतं यूयं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ॥५३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यज्ञसीतोपाख्याने एकादशीमाहात्म्यं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

हो जाता है ॥ ३७ ॥ जो पापपङ्कसे भरे हुए संसार-सागरमें डूबे हैं, उनके उद्धारके लिये एकादशीका व्रत ही सर्वोत्तम साधन है ॥ ३८ ॥ रात्रिकालमें जागरणपूर्वक एकादशी-व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य यदि सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी यमराजके रौद्ररूपका दर्शन नहीं करता ॥ ३९ ॥ जो द्वादशीको तुलसीदलसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिका पूजन करता है, वह जलसे कमलपत्रकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होता ॥ ४० ॥ सहस्रों अश्वमेध तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञ भी एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाके बराबर नहीं हो सकते ॥ ४१ ॥ एकादशीका व्रत करनेवाला मनुष्य मातृकुलकी दस, पितृकुलकी दस तथा पत्नीके कुलकी दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है ॥ ४२ ॥ जैसी शुक्लपक्षकी एकादशी हैं, वैसी ही कृष्णपक्षकी भी है; दोनोंका समान फल है। दुधारू गाय जैसी सफेद वैसी काली—दोनोंका दूध एक-सा ही होता है ॥ ४३ ॥ हे गोपियो ! मेरु और मन्दराचलके बराबर बड़े-बड़े सौ जन्मोंके पाप एक ओर और एक ही एकादशीका व्रत दूसरी ओर हो तो वह उन पर्वतोपम पापोंको उसी प्रकार जलाकर भस्म कर देती हैं, जैसे आगकी चिनगारी रूईके ढेरको दग्ध कर देती है ॥४४॥ हे गोपाङ्गनाओ ! विधिपूर्वक हो या अविधिपूर्वक, यदि द्वादशीको थोड़ा-सा भी दान या तनिक भी सुकृत कर दिया जाय तो वह मेरु पर्वतके समान महान् हो जाता है ॥ ४५ ॥ जो एकादशीके दिन भगवान् विष्णुकी कथा सुनता है, वह सात द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीके दानका फल पाता है ॥ ४६ ॥ यदि मनुष्य शङ्खोद्धार तीर्थमें स्नान करके गदाधर देवके दर्शनका महान् पुण्य संचित कर ले, तो भी वह पुण्य एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाकी भी समानता नहीं कर सकता ॥ ४७ ॥ प्रभास, कुरुक्षेत्र, केदार, बदरिकाश्रम, काशी तथा सूकरक्षेत्रमें चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा चार लाख संक्रान्तियोंके अवसरपर मनुष्योंद्वारा जो दान दिया गया हो, वह भी एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाके बराबर नहीं है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हे गोपियो ! जैसे नागोंमें शेष, पक्षियोंमें गरुड़, देवताओंमें विष्णु, वर्णोंमें ब्राह्मण, वृक्षोंमें पीपल तथा पत्रोंमें तुलसीदल सबसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार व्रतोंमें एकादशी तिथि सर्वोत्तम है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करता है, उसके समान ही फल वह मनुष्य भी पा लेता है, जो एकादशीका व्रत करता है ॥ ५२ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

(पूर्वकालमें एकादशीका व्रत करके मनोवाञ्छित फल पानेवाले पुण्यात्माओंका परिचय)

गोप्य ऊचुः

वृषभानुसुते सुभ्रु सर्वशास्त्रार्थपारगे । विडंबयंती त्वं वाचा वाचं वाचस्पतेर्मुने ॥ १ ॥
एकादशीव्रतं राधे केन केन पुरा कृतम् । तद्ब्रूहि नो विशेषेण त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः॥ २ ॥

श्रीराधोवाच

आदौ देवैः कृतं गोप्यो वरमेकादशीव्रतम् । भ्रष्टराज्यस्य लाभार्थं दैत्यानां नाशनाय च ॥ ३ ॥
वैशंतेन पुरा राज्ञा कृतमेकादशीव्रतम् । स्वपितुस्तारणार्थाय यमलोकगतस्य च ॥ ४ ॥
अकस्माल्लुंपकेनापि ज्ञातित्यक्तेन पापिना । एकादशी कृता येन राज्यं लेभे स लुंपकः ॥ ५ ॥
भद्रावत्यां केतुमता कृतमेकादशीव्रतम् । पुत्रहीनेन सद्वाक्यात्पुत्रं लेभे स मानवः ॥ ६ ॥
ब्राह्मण्यै देवपत्नीभिर्दत्तमेकादशीव्रतम् । तेन लेभे स्वर्गसौख्यं धनधान्यं च मानुषी ॥ ७ ॥
पुष्पदंतीमाल्यवंतौ शक्रशापात्पिशाचताम् । प्राप्तौ कृतं व्रतं ताभ्यां पुनर्गन्धर्वतां गतौ ॥ ८ ॥
पुरा श्रीरामचन्द्रेण कृतमेकादशीव्रतम् । समुद्रे सेतुबंधार्थं रावणस्य वधाय च ॥ ९ ॥
लयांते च समुत्पन्ना धातृवृक्षतले सुराः । एकादशीव्रतं चक्रुः सर्वकल्याणहेतवे ॥१०॥
व्रतं चकार मेधावी द्वादश्याः पितृवाक्यतः । अप्सरःस्पर्शदोषेण मुक्तोऽभून्निर्मलद्युतिः ॥११॥
गंधर्वो ललितः पत्न्या गतः शापात्स रक्षताम् । एकादशीव्रतेनापि पुनर्गंधर्वतां गतः ॥१२॥
एकादशीव्रतेनापि मांधाता स्वर्गतिं गतः । सगरश्च ककुत्स्थश्च मुचुकुन्दो महामतिः ॥१३॥
धुंधुमारादयश्चान्ये राजानो बहवस्तथा । ब्रह्मकपालनिर्मुक्तो बभूव भगवान्भवः ॥१४॥

हे व्रजाङ्गनाओ ! इस प्रकार मैंने तुमसे एकादशियोंके फलका वर्णन किया । अब तुम शीघ्र इस व्रतको आरम्भ करो । बताओ, अब और क्या सुनना चाहती हो ? ॥ ५३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गोपियाँ बोलीं—सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत हे सुन्दरी वृषभानु-नन्दिनी ! तुम अपनी वाणीसे बृहस्पति मुनिकी वाणीका अनुकरण करती हो ॥ १ ॥ हे राधे ! यह एकादशी-व्रत पहले किसने किया था ? यह हमें विशेषरूपसे बताओ; क्योंकि तुम साक्षात् ज्ञानकी निधि हो ॥ २ ॥ श्रीराधाने कहा—हे गोपियों ! सबसे पहले देवताओंने अपने छीने गये राज्यकी प्राप्ति तथा दैत्योंके विनाशके लिये एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया था ॥ ३ ॥ राजा वैशन्तने पूर्वकालमें यमलोकगत पिताके उद्धारके लिये एकादशी-व्रत किया था ॥ ४ ॥ लुम्पक नामके एक राजाको उसके पापके कारण कुटुम्बी-जनोंने अकस्मात् त्याग दिया था । लुम्पकने भी एकादशीका व्रत किया और उसके प्रभावसे अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया ॥ ५ ॥ भद्रावती नगरीमें पुत्रहीन राजा केतुमान्‌ने संतोंके कहनेसे एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया और उन्हें पुत्रकी प्राप्ति हो गयी ॥ ६ ॥ एक ब्राह्मणीको देवपत्नियोंने एकादशी-व्रतका पुण्य प्रदान किया, जिससे उस मानवीने धन-धान्य तथा स्वर्गका सुख प्राप्त किया ॥ ७ ॥ पुष्पदन्ती और माल्यवान्—दोनों इन्द्रके शापसे पिशाचभावको प्राप्त हो गये थे । उन दोनोंने एकादशीका व्रत किया और उसके पुण्य-प्रभावसे उन्हें पुनः गन्धर्वत्वकी प्राप्ति हो गयी ॥ ८ ॥ पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रपर सेतु बाँधने तथा रावणका वध करनेके लिये एकादशीका व्रत किया था ॥ ९ ॥ प्रलयके अन्तमें उत्पन्न आँवलेके वृक्षके नीचे बैठकर देवताओंने सबके कल्याणके लिये एकादशीका व्रत किया था ॥ १० ॥ पिताकी आज्ञासे मेधावीने एकादशीका व्रत किया, जिससे वे अप्सराके साथ सम्पर्कके दोषसे मुक्त हो निर्मल तेजसे सम्पन्न हो गये ॥ ११ ॥ ललित-नामक गन्धर्व अपनी पत्नीके साथ ही शापवश राक्षस हो गया था, किंतु एकादशी-व्रतके अनुष्ठानसे उसने पुनः गन्धर्वत्व प्राप्त कर लिया ॥ १२ ॥ एकादशीके व्रतसे ही राजा मांधाता, सगर, ककुत्स्थ और महामति मुचुकुन्द पुण्यलोकको

धृष्टबुद्धिर्वैश्यपुत्रो ज्ञातित्यक्तो महाखलः । एकादशीव्रतं कृत्वा वैकुण्ठं स जगाम ह ॥१५॥
राज्ञा रुक्मांगदेनापि कृतमेकादशीव्रतम् । तेन भूमण्डलं भुक्त्वा वैकुंठं सपुरो ययौ ॥१६॥
अंबरीषेण राज्ञाऽपि कृतमेकादशीव्रतम् । नास्पृशद्ब्रह्मशापोऽपि यो न प्रतिहतः क्वचित् १७॥
हेममाली नाम यक्षः कुष्ठी धनदशापतः । एकादशीव्रतं कृत्वा चन्द्रतुल्यो बभूव ह ॥१८॥
महीजिता नृपेणापि कृतमेकादशीव्रतम् । तेन पुत्रं शुभं लब्ध्वा वैकुंठं स जगाम ह ॥१९॥
हरिश्चन्द्रेण राज्ञाऽपि कृतमेकादशीव्रतम् । तेन लब्ध्वा महीराज्यं वैकुण्ठं सपुरो ययौ ॥२०॥
श्रीशोभनो नाम पुरा कृते युगे जामातृकोऽभून्मुचुकुन्दभूभृतः ।
एकादशीं यः समुपोष्य भारते प्राप्तः स देवैः किल मंदराचले ॥२१॥
अद्यापि राज्यं कुरुते कुबेरवद्राज्ञा युतोऽसौ किल चन्द्रभागया ।
एकादशीं सर्वतिथीश्वरीं परां जानीथ गोप्यो न हि तत्समाऽन्या ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

इति राधामुखाच्छ्रुत्वा यज्ञसीताश्च गोपिकाः । एकादशीव्रतं चक्रुर्विधिवत्कृष्णलालसाः ॥२३॥
एकादशीव्रतेनापि प्रसन्नः श्रीहरिः स्वयम् । मार्गशीर्षे पूर्णिमायां रासं ताभिश्चकार ह ॥२४॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे एकादशीमाहात्म्यं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(पुलिन्द-कन्यारूपिणी गोपियोंके सौभाग्यका वर्णन)

श्रीनारद उवाच

पुलिंदकानां गोपीनां करिष्ये वर्णनं त्वतः । सर्वपापहरं पुण्यमद्भुतं भक्तिवर्द्धनम् ॥ १ ॥

प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ धुन्धुमार आदि अन्य बहुत-से राजाओंने भी एकादशी-व्रतके प्रभावसे ही सद्गति प्राप्त की तथा भगवान् शंकर ब्रह्मकपालसे मुक्त हुए ॥ १४ ॥ कुटुम्बीजनोंसे परित्यक्त महादुष्ट वैश्य-पुत्र धृष्टबुद्धि एकादशीव्रत करके ही वैकुण्ठलोकमें गया था ॥ १५ ॥ राजा रुक्माङ्गदने भी एकादशीका व्रत किया था और उसके प्रभावसे भूमण्डलका राज्य भोगकर वे पुरवासियोंसहित वैकुण्ठलोकमें पधारे थे ॥ १६ ॥ राजा अम्बरीषने भी एकादशीका व्रत किया था, जिससे कहीं भी प्रतिहत न होनेवाला ब्रह्मशाप उन्हें छू न सका ॥ १७ ॥ हेममाली नामक यक्ष कुबेरके शापसे कोढ़ी हो गया था, किंतु एकादशी-व्रतका अनुष्ठान करके वह पुनः चन्द्रमाके समान कान्तिमान् हो गया ॥ १८ ॥ राजा महीजित्‌ने भी एकादशीका व्रत किया था, जिसके प्रभावसे सुन्दर पुत्र प्राप्तकर वे स्वयं भी वैकुण्ठगामी हुए ॥ १९ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने भी एकादशीका व्रत किया था, जिससे पृथ्वीका राज्य भोगकर वे अन्तमें पुरवासियोंसहित वैकुण्ठ-धामको गये ॥ २० ॥ पूर्वकालके सत्ययुगमें राजा मुचुकुन्दका दामाद शोभन भारतवर्षमें एकादशीका उपवास करके उसके पुण्य-प्रभावसे देवताओंके साथ मन्दराचलपर चला गया ॥ २१ ॥ वह आज भी वहाँ अपनी रानी चन्द्रभागाके साथ कुबेरकी भाँति राज्यसुख भोगता है । हे गोपियो ! एकादशीको सम्पूर्ण तिथियोंकी परमेश्वरी समझो । उसकी समानता करनेवाली दूसरी कोई तिथि नहीं है ॥ २२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! श्रीराधाके मुखसे इस प्रकार एकादशीकी महिमा सुनकर यज्ञसीतास्वरूपा गोपिकाओंने श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे विधिपूर्वक एकादशीव्रतका अनुष्ठान किया ॥ २३ ॥ एकादशी-व्रतसे प्रसन्न होकर साक्षात् भगवान् श्रीहरिने मार्गशीर्ष मासकी पूर्णिमाकी रातमें उन सबके साथ रास किया ॥ २४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—अब पुलिन्द (कोल-भील) जातिकी स्त्रियोंका, जो गोपी-भावको प्राप्त हुई थीं, मैं वर्णन करता हूँ । यह वर्णन समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला, पुण्यजनक, अद्भुत और

पुलिंदा उद्भटाः केचिद्विंध्याद्रिवनवासिनः । विलुंपंतो राजवसु दीनानां न कदाचन ॥ २ ॥
कुपितस्तेषु बलवान् विन्ध्यदेशाधिपो बली । अक्षौहिणीभ्यां तान्सर्वान्पुलिंदान्स रुरोध ह ॥ ३ ॥
युयुधुस्तेऽपि खड्गैश्च कुन्तैः शूलैः परश्वधैः । शक्त्यृष्टिभिर्भुशुंडीभिः शरैः कति दिनानि च ॥ ४ ॥
पत्रं ते प्रेषयामासुः कंसाय यदुभूभृते । कंसप्रणोदितो दैत्यः प्रलंबो बलवांस्तदा ॥ ५ ॥
योजनद्वयमुच्चांगं कालमेघसमद्युतिम् । किरीटकुंडलधरं सर्पहारविभूषितम् ॥ ६ ॥
पादयोः शृंखलायुक्तं गदापाणिं कृतांतवत् । ललज्जिह्वं घोररूपं पातयन्तं गिरीन्द्रुमान् ॥ ७ ॥
कंपयंतं भुवं वेगात्प्रलंबं युद्धदुर्मदम् । दृष्ट्वा प्रधर्षितो राजा ससैन्यो रणमंडलम् ॥ ८ ॥
त्यक्त्वा दुद्राव सहसा सिंहं वीक्ष्य गजो यथा । प्रलंबस्तान्समानीय मथुरामाययौ पुनः ॥ ९ ॥
पुलिन्दास्तेऽपि कंसस्य भृत्यत्वं समुपागताः । सकुटुंबाः कामगिरौ वासं चक्रुर्नृपेश्वर ॥१०॥
तेषां गृहेषु संजाताः श्रीरामस्य वरात्परात् । पुलिंद्यः कन्यका दिव्या रूपिण्यः श्रीरिवार्चिता ११॥
तद्दर्शनस्मररुजः पुलिंद्यः प्रेमविह्वलाः । श्रीमत्पादरजो धृत्वा ध्यायंत्यस्तमहर्निशम् ॥१२॥
ताश्चापि रासे संप्राप्ताः श्रीकृष्णं परमेश्वरम् । परिपूर्णतमं साक्षाद्गोलोकाधिपतिं प्रभुम् ॥१३॥
श्रीकृष्णचरणांभोजरजो देवैः सुदुर्लभम् । अहो भाग्यं पुलिंदीनां तासां प्राप्तं विशेषतः ॥१४॥

यः पारमेष्ठ्यमखिलं न महेन्द्रधिष्ण्यं नो सार्वभौममनिशं न रसाधिपत्यम् ।
नो योगसिद्धिमभितो न पुनर्भवं वा वाञ्छत्यलं परमपादरजः स भक्तः ॥१५॥

भक्तिभावको बढ़ानेवाला है ॥ १ ॥ विन्ध्याचलके वनमें कुछ पुलिन्द (कोल-भील) निवास करते थे। वे उद्भट योद्धा थे और केवल राजाका धन लूटते थे। गरीबोंकी कोई चीज कभी नहीं छूते थे ॥ २ ॥ विन्ध्य-देशके बलवान् राजाने कुपित हो दो अक्षौहिणी सेनाओंके द्वारा उन सभी पुलिन्दोंपर घेरा डाल दिया ॥ ३ ॥ वे पुलिन्द भी तलवारों, भालों, शूलों, फरसों, शक्तियों, ऋष्टियों, भुशुण्डियों और तीर-कमानोंसे कई दिनों-तक राजकीय सैनिकोंके साथ युद्ध करते रहे ॥ ४ ॥ (विजयकी आशा न देखकर) उन्होंने सहायताके लिये यादवोंके राजा कंसके पास पत्र भेजा। तब कंसकी आज्ञासे बलवान् दैत्य प्रलम्ब वहाँ आया ॥ ५ ॥ उसका शरीर दो योजन ऊँचा था। देहका रंग मेघोंकी काली घटाके समान काला था। माथेपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल धारण किये वह दैत्य सर्पोंकी मालासे विभूषित था ॥ ६ ॥ उसके पैरोंमें सोनेकी साँकल थी और हाथमें गदा लेकर वह दैत्य कालके समान जान पड़ता था। उसकी जीभ लपलपा रही थी और रूप बड़ा भयंकर था। वह शत्रुओंपर पर्वतकी चट्टानें तथा बड़े-बड़े वृक्ष उखाड़-उखाड़कर फेंकता था ॥७॥ पैरोंकी धमकसे धरतीको कँपाते हुए रणदुर्मद दैत्य प्रलम्बको देखते ही भयभीत तथा पराजित हो विन्ध्यनरेश सेनासहित समराङ्गण छोड़कर सहसा भाग चले, मानो सिंहको देखकर हाथी भागा जाता हो। तब प्रलम्ब उन सब पुलिन्दोंको साथ ले पुनः मथुरापुरीको लौट आया ॥८॥९॥ वे सभी पुलिन्द कंसके सेवक हो गये। हे नृपेश्वर! उन सबने अपने कुटुम्बके साथ कामगिरिपर निवास किया ॥ १० ॥ उन्हींके घरोंमें भगवान् श्रीरामके उत्कृष्ट वरदानसे वे पुलिन्द-स्त्रियाँ दिव्य कन्याओंके रूपमें प्रकट हुईं, जो मूर्तिमती लक्ष्मीकी भाँति पूजित एवं प्रशंसित होती थीं ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णके दर्शनसे उनके हृदयमें प्रेमकी पीड़ा जाग उठी। वे पुलिन्द-कन्याएँ प्रेमसे विह्वल हो भगवान्‌की श्रीसम्पन्न चरणरजको सिरपर धारण करके दिन-रात उन्हींके ध्यान एवं चिन्तनमें डूबी रहती थीं ॥ १२ ॥ वे भी भगवान्‌की कृपासे रासमें आ पहुँचीं और साक्षात् गोलोकके अधि-पति, सर्वसमर्थ, परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्णको उन्होंने सदाके लिये प्राप्त कर लिया ॥ १३ ॥ अहो! इन पुलिन्द-कन्याओंका कैसा महान् सौभाग्य है कि देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंकी रज उन्हें विशेषरूपसे प्राप्त हो गयी ॥ १४ ॥ जिसकी भगवान्‌के परम उत्कृष्ट पाद-पद्म-परागमें सुदृढ़ भक्ति है, वह न तो ब्रह्माजीका पद, न महेन्द्रका स्थान, न निरन्तर-स्थायी सार्वभौम सम्राट्‌का पद, न पाताल-लोकका आधिपत्य, न योगसिद्धि और न अपुनर्भव (मोक्ष) को ही चाहता है ॥ १५ ॥ जो अकिंचन हैं,

निष्किंचनाः स्वकृतकर्मफलैर्विरागा यत्तत्पदं हरिजना मुनयो महांतः ।
भक्ता जुषंति हरिपादरजःप्रसक्ता अन्ये वदन्ति न सुखं किल नैरपेक्ष्यम् ॥१६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे पुलिंदकोपाख्यानं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

(लक्ष्मीजीकी सखियोंका वृषभानुओंके घरोंमें कन्यारूपसे उत्पन्न होना)

श्रीनारद उवाच

अन्यासां चैव गोपीनां वर्णनं शृणु मैथिल । सर्वपापहरं पुण्यं हरिभक्तिविवर्द्धनम् ॥ १ ॥
नीतिविन्मार्गदः शुक्लः पतंगो दिव्यवाहनः । गोपेष्टश्च व्रजे राजञ्जाता षड्वृषभानवः ॥ २ ॥
तेषां गृहेषु संजाता लक्ष्मीपतिवरात्प्रजाः । रमावैकुण्ठवासिन्यः श्रीसख्योऽपि समुद्रजाः॥ ३ ॥
ऊर्ध्वं वैकुण्ठवासिन्यस्तथाऽजितपदाश्रिताः । श्रीलोकाचलवासिन्यः श्रीसख्योऽपि समुद्रजाः ४ ॥
चिन्तयन्त्यः सदा श्रीमद्गोविन्दचरणांबुजम् । श्रीकृष्णस्य प्रसादार्थं ताभिर्माघव्रतं कृतम् ॥ ५ ॥
माघस्य शुक्लपंचम्यां वसन्तादौ हरिः स्वयम् । तासां प्रेमपरीक्षार्थं कृष्णो वै तद्गृहान्गतः ॥ ६ ॥
व्याघ्रचर्मांबरं बिभ्रञ्जटामुकुटमंडितः । विभूतिधूसरो वेणुं वादयन्मोहयञ्जगत् ॥ ७ ॥
तासां वीथीषु संप्राप्तिं वीक्ष्य गोप्योपि सर्वतः । आययुर्दर्शनं कर्तुं मोहिताः प्रेमविह्वलाः ॥ ८ ॥
अतीव सुन्दरं दृष्ट्वा योगिनं गोपकन्यकाः । ऊचुः परस्परं सर्वाः प्रेमानन्दसमाकुलाः ॥ ९ ॥

गोप्य ऊचुः

कोऽयं शिशुर्नन्दसुताकृतिर्वा कस्यापि पुत्रो धनिनो नृपस्य ।
नारीकुवाग्बाणविभिन्नमर्मा जातो विरक्तो गतकृत्यकर्मा ॥१०॥

अपने किये हुए कर्मोंके फलसे विरक्त हैं, वे हरि-चरण-रजमें आसक्त भगवान्के स्वजन महात्मा भक्त मुनि जिस पदका सेवन करते हैं, वही निरपेक्ष सुख है; दूसरे लोग जिसे सुख कहते हैं, वह वास्तवमें निरपेक्ष सुख नहीं है ॥ १६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश्वर ! अब दूसरी गोपियोंका भी वर्णन सुनो, जो समस्त पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा श्रीहरिके प्रति भक्ति-भावकी वृद्धि करनेवाला है ॥ १ ॥ हे राजन् ! व्रजमें छः वृषभानु उत्पन्न हुए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—नीतिवित्, मार्गंद, शुक्ल, पतङ्ग, दिव्यवाहन तथा गोपेष्ट (ये नामानुरूप गुणोंवाले थे) ॥२॥ उनके घरोंमें लक्ष्मीपति नारायणके वरदानसे जो कुमारियाँ उत्पन्न हुईं, उनमेंसे कुछ तो रमा-वैकुण्ठवासिनी और कुछ समुद्रसे उत्पन्न हुई लक्ष्मीजीकी सखियाँ थीं, कुछ अजितपद-वासिनी और कुछ ऊर्ध्ववैकुण्ठलोकनिवासिनी देवियाँ थीं, कुछ लोकाचलवासिनी समुद्रसम्भवा लक्ष्मीकी सह-चरियाँ थीं ॥ ३ ॥ ४ ॥ उन्होंने सदा श्रीगोविन्दके चरणारविन्दका चिन्तन करते हुए माघमासका व्रत किया । उस व्रतका उद्देश्य था—श्रीकृष्णको प्रसन्न करना ॥ ५ ॥ माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको, जो भावी वसन्तके शुभागमनका सूचक प्रथम दिन है, उनके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये श्रीकृष्ण उनके घरके निकट आये ॥ ६ ॥ वे व्याघ्रचर्मका वस्त्र पहने, जटाके मुकुट बाँधे, समस्त अङ्गोंमें विभूति रमाये योगीके वेषमें सुशोभित हो, वेणु बजाते हुए जगत्के लोगोंका मन मोह रहे थे ॥ ७ ॥ अपनी गलियोंमें उनका शुभागमन हुआ देख सब ओरसे मोहित एवं प्रेम-विह्वल हुई गोपाङ्गनाएँ उस तरुण योगीका दर्शन करनेके लिये आयीं ॥ ८ ॥ उन अत्यन्त सुन्दर योगीको देखकर प्रेम और आनन्दमें डूबी हुई समस्त गोपकन्याएँ परस्पर कहने लगीं ॥ ९ ॥ गोपियाँ बोलीं—यह कौन बालक है, जिसकी आकृति नन्दनन्दनसे ठीक-ठीक मिलती-जुलती है; अथवा यह किसी धनी राजाका पुत्र होगा, जो अपनी स्त्रीके कठोर वचनरूपी बाणसे मर्म बिंध जानेके कारण घरसे

अतीव रम्यः सुकुमारदेहो मनोजवद्विश्वमनोहरोऽयम् ।
अहो कथं जीवति चास्य माता पिता च भार्या भगिनी विनैनम् ॥११॥
एवं ताः सर्वतो यूथीभूत्वा सर्वा व्रजांगनाः । पप्रच्छुस्तं योगिवरं विस्मिताः प्रेमविह्वलाः ॥१२॥
गोप्य ऊचुः
कस्त्वं योगिन्नाम किं ते कुत्र वासस्तु ते मुने । का वृत्तिस्तव का सिद्धिर्वद नो वदतां वर ॥१३॥
सिद्ध उवाच
योगेश्वरोऽहं मे वासः सदा मानसरोवरे । नाम्ना स्वयंप्रकाशोऽहं निरन्नः स्वबलात्सदा ॥१४॥
सार्थे परमहंसानां याम्यहं हे व्रजांगनाः । भूतं भव्यं वर्तमानं वेद्म्यहं दिव्यदर्शनः ॥१५॥
उच्चाटनं मारणं च मोहनं स्तंभनं तथा । जानामि मंत्रविद्याभिर्वशीकरणमेव च ॥१६॥
गोप्य ऊचुः
यदि जानासि योगिंस्त्वं वार्तां कालत्रयोद्भवाम् । किं वर्तते नो मनसि वद तर्हि महामते ॥१७॥
सिद्ध उवाच
भवतीनां च कर्णांते कथनीयमिदं वचः । युष्मदाज्ञया वा वक्ष्ये सर्वेषां शृण्वतामिह ॥१८॥
गोप्य ऊचुः
सत्यं योगेश्वरोऽसि त्वं त्रिकालज्ञो न संशयः । वशीकरणमंत्रेण सद्यः पठनमात्रतः ॥१९॥
यदि सोऽत्रैव चायाति चिंतितो योऽस्ति वै मुने । तदा मन्यामहे त्वां वै मंत्रिणां प्रवरं परम् ॥२०॥
सिद्ध उवाच
दुर्लभो दुर्घटो भावो युष्माभिर्गदितः स्त्रियः । तथाप्यहं करिष्यामि वाक्यं न चलते सताम् ॥२१॥
निमीलयत नेत्राणि मा शोचं कुरुत स्त्रियः । भविष्यति न संदेहो युष्माकं कार्यमेव च ॥२२॥

विरक्त हो गया और सारे कृत्यकर्म छोड़ बैठा है ॥ १० ॥ यह अत्यन्त रमणीय है। इसका शरीर कैसा सुकुमार है। यह कामदेवके समान सारे विश्वका मन मोह लेनेवाला है। अहो! इसकी माता, इसके पिता, इसकी पत्नी और इसकी बहिन इसके बिना कैसे जीवित होंगी? ॥ ११ ॥ यह विचार करके सब ओरसे झुण्ड-की-झुण्ड व्रजाङ्गनाएँ उनके पास आ गयीं और प्रेमसे विह्वल तथा आश्चर्यचकित हो उन योगीश्वरसे पूछने लगीं ॥१२॥ गोपियोंने पूछा—हे योगीबाबा! तुम्हारा नाम क्या है? हे मुनिजी! तुम रहते कहाँ हो? तुम्हारी वृत्ति क्या है, और तुमने कौन-सी सिद्धि पायी है? हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! हमें ये सब बातें बताओ ॥ १३ ॥ सिद्धयोगीने कहा—मैं योगेश्वर हूँ और सदा मानसरोवरमें निवास करता हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रकाश है। मैं अपनी शक्तिसे सदा बिना खाये-पीये ही रहता हूँ ॥ १४ ॥ हे व्रजाङ्गनाओ! परमहंसोंका जो अपना स्वार्थ—आत्मसाक्षात्कार है, उसीकी सिद्धिके लिये मैं जा रहा हूँ। मुझे दिव्यदृष्टि प्राप्त हो चुकी है ॥ १५ ॥ मैं भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंकी बातें जानता हूँ। मन्त्र-विद्याद्वारा उच्चाटन, मारण, मोहन, स्तम्भन तथा वशीकरण भी जानता हूँ ॥ १६ ॥ गोपियोंने पूछा—हे योगीबाबा! तुम तो बड़े बुद्धिमान् हो। यदि तुम्हें तीनों कालोंकी बातें ज्ञात हैं तो बताओ न, हमारे मनमें क्या है? ॥ १७ ॥ सिद्धयोगीने कहा—यह बात तो आप लोगोंके कानमें कहने योग्य है। अथवा यदि आप लोगोंकी आज्ञा हो तो सब लोगोंके सामने ही कह डालूँ ॥ १८ ॥ गोपियाँ बोलीं—हे मुने! तुम सचमुच योगेश्वर हो। तुम्हें तीनों कालोंका ज्ञान है, इसमें संशय नहीं है। यदि तुम्हारे वशीकरण-मन्त्रसे, उसके पाठ करनेमात्रसे तत्काल वे यहीं आ जायँ, जिनका कि हम मन-ही-मन चिन्तन करती हैं, तब हम मानेंगी कि तुम मन्त्रज्ञोंमें सबसे श्रेष्ठ हो ॥ १९ ॥ २० ॥ सिद्धयोगीने कहा—हे व्रजाङ्गनाओ! तुमने तो ऐसा भाव व्यक्त किया है, जो परम दुर्लभ और दुष्कर है; तथापि मैं तुम्हारी मनोनीत वस्तुको प्रकट करूँगा; क्योंकि सत्पुरुषोंकी कही हुई बात कभी झूठ नहीं होती। हे व्रजकी वनिताओ! चिन्ता न करो; अपनी आँखें मूँद लो। तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा, इसमें संशय नहीं है ॥२१॥ २२॥ श्रीनारदजी

श्रीनारद उवाच

तथेति मीलिताक्षीषु गोपीषु भगवान्हरिः । विहाय तद्योगिरूपं बभौ श्रीनन्दनन्दनः ॥२३॥
नेत्राण्युन्मील्य ददृशुः सानन्दं नन्दनन्दनम् । विस्मितास्तत्प्रभावज्ञा हर्षिता मोहमागताः ॥२४॥
माघमासे महारासे पुण्ये वृन्दावने वने । ताभिः सार्द्धं हरी रेमे सुरीभिः सुरराडिव ॥२५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे रमावैकुण्ठश्वेतद्वीपोर्ध्ववैकुण्ठाजितपदश्रीलोकाचलवासिनीश्रीसखीनामुपाख्यानं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

(दिव्यादिव्य, त्रिगुणवृत्तिमयी तथा भूतलकी गोपियोंका वर्णन)

श्रीनारद उवाच

इदं मया ते कथितं गोपीनां चरितं शुभम् । अन्यासां चैव गोपीनां वर्णनं शृणु मैथिल ॥ १ ॥
वीतिहोत्रोऽग्निभुक्सांबः श्रीकरो गोपतिः श्रुतः । व्रजेशः पावनः शांत उपनन्दा व्रजेभवाः ॥ २ ॥
धनवंतो रूपवंतः पुत्रवंतो बहुश्रुताः । शीलादिगुणसंपन्नाः सर्वे दानपरायणाः ॥ ३ ॥
तेषां गृहेषु संजाताः कन्यका देववाक्यतः । काश्चिद्दिव्या अदिव्याश्च तथा त्रिगुणवृत्तयः ॥ ४ ॥
भूमिगोप्यश्च संजाताः पुण्यैर्नानाविधैः कृतैः । राधिकासहचर्यस्ताः सख्योऽभूवन् विदेहराट् ॥ ५ ॥
एकदा मानिनीं राधां ताः सर्वा व्रजगोपिकाः । ऊचुर्वीक्ष्य हरिं प्राप्तं होलिकाया महोत्सवे ॥ ६ ॥

गोप्य ऊचुः

रंभोरु चन्द्रवदने मधुमानिनीशे राधे वचः सुललितं ललने शृणु त्वम् ।
श्रीहोलिकोत्सवविहारमलं विधातुमायाति ते पुरवने व्रजभूषणोऽयम् ॥ ७ ॥
श्रीयौवनोन्मदविघूर्णितलोचनोऽसौ नीलालकालिकलितांसकपोलगोलः ।
सत्पीतकंचुकघनांतमशेषमाराद्चालयन्ध्वनिमता स्वपदारुणेन ॥ ८ ॥

कहते हैं- हे रजन् ! 'बहुत अच्छा' कहकर जब गोपियोंने अपनी आँखें मूँद लीं, तब भगवान् श्रीहरि योगीका रूप छोड़कर श्रीनन्दनन्दनके रूपमें प्रकट हो गये ॥ २३ ॥ गोपियोंने आँखें खोलकर देखा तो सामने नन्दनन्दन सानन्द मुस्करा रहे हैं। पहले तो वे अत्यन्त विस्मित हुईं; फिर योगीका प्रभाव जाननेपर उन्हें हर्ष हुआ और प्रियतमका वह मोहन रूप देखकर वे मोहित हो गयीं ॥ २४ ॥ तदनन्तर माघमासके महारासमें पावन वृन्दावनके भीतर श्रीहरिने उन गोपाङ्गनाओंके साथ उसी प्रकार विहार किया, जैसे देवाङ्गनाओंके साथ देवराज इन्द्र विहार करते हैं ॥२५॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश्वर ! यह मैंने तुमसे गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया है, अब दूसरी गोपियोंका वर्णन सुनो ॥ १ ॥ वीतिहोत्र, अग्निभुक्, साम्ब, श्रीकर, गोपति, श्रुत, व्रजेश, पावन तथा शान्त—ये व्रजमें उत्पन्न हुए नौ उपनन्दोंके नाम हैं ॥ २ ॥ वे सब-के-सब धनवान्, रूपवान्, पुत्रवान्, बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले, शील-सदाचारादि गुणोंसे सम्पन्न तथा दानपरायण हैं ॥ ३ ॥ इनके घरोंमें देवताओंकी आज्ञाके अनुसार जो कन्याएँ उत्पन्न हुईं, उनमेंसे कोई दिव्य, कोई अदिव्य तथा कोई त्रिगुणवृत्तिवाली थीं ॥ ४ ॥ वे सब नाना प्रकारके पूर्वकृत पुण्योंके फलस्वरूप भूतलपर गोपकन्याओंके रूपमें प्रकट हुई थी। हे विदेहराज ! वे सब श्रीराधिकाके साथ रहनेवाली उनकी सखियाँ थीं ॥ ५ ॥ एक दिनकी बात है, होलिका-महोत्सवपर श्रीहरिको आया हुआ देख उन समस्त व्रजगोपिकाओंने मानिनी श्रीराधासे कहा ॥ ६ ॥ गोपियाँ बोलीं— हे रम्भोरु ! हे चन्द्रवदने ! हे मधुमानिनि ! हे स्वामिनि ! हे ललने ! हे श्रीराधे ! हमारी यह सुन्दर बात सुनो। ये व्रजभूषण नन्दनन्दन तुम्हारी बरसाना-नगरीके उपवनमें होलिकोत्सव-विहार करनेके

बालार्कमौलिविमलांगदहारमुद्यद्विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमादधानः ।
पीतांबरेण जयति द्युतिमण्डलोऽसौ भूमण्डले सधनुषेव घनो दिविस्थः ॥ ९ ॥
आबीरकुंकुमरसैश्च विलिप्तदेहो हस्ते गृहीतनवसेचनयंत्र आरात् ।
प्रेक्षंस्तवाशु सखि वाटमतीव राधे त्वद्रासरंगरसकेलिरतः स्थितः सः ॥१०॥
निर्गच्छ फाल्गुनमिषेण विहाय मानं दातव्यमद्य च यशः किल होलिकायै ।
कर्तव्यमाशु निजमन्दिररंगवारिपाटीरपंकमकरन्दचयं च तूर्णम् ॥११॥
उत्तिष्ठ गच्छ सहसा निजमण्डलीभिर्यत्रास्ति सोऽपि किल तत्र महामते त्वम् ।
एतादृशोऽपि समयो न कदापि लभ्यः प्रक्षालितं करतलं विदितं प्रवाहे ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

अथ मानवती राधा मानं त्यक्त्वा समुत्थिता । सखीसंघैः परिवृता प्रकर्तुं होलिकोत्सवम् ॥१३॥
श्रीखंडागुरुकस्तूरीहरिद्राकुंकुमद्रवैः । पूरिताभिर्दृतीभिश्च संयुक्तास्ता व्रजांगनाः ॥१४॥
रक्तहस्ताः पीतवस्त्राः कूजन्नूपुरमेखलाः । गायंत्यो होलिकागीतीर्गालीभिर्हास्यसंधिभिः १५॥
आबीरारुणचूर्णानां मुष्टिभिस्ता इतस्ततः । कुर्वंत्यश्चारुणं भूमिं दिगन्तं चांबरं तथा ॥१६॥
कोटिशः कोटिशस्तत्र स्फुरंत्याबीरमुष्टयः । सुगंधारुणचूर्णानां कोटिशः कोटिशस्तथा ॥१७॥
सर्वतो जगृहुः कृष्णं कराभ्यां व्रजगोपिकाः । यथा मेघं च दामिन्यः संध्यायां श्रावणस्य च ॥१८॥
तन्मुखं च विलिंपंत्योऽथाबीरारुणमुष्टिभिः । कुंकुमाक्तदृतीभिस्तमार्द्रीचक्रुर्विधानतः ॥१९॥

लिये आ रहे हैं ॥७॥ शोभासम्पन्न तथा यौवनके मदसे मत्त उनके चञ्चल नेत्र घूम रहे हैं। घुँघराली नीली अलकावली उनके कंधों और कपोलमण्डलको चूम रही है। शरीरपर पीले रंगका रेशमी जामा अपनी घनी शोभा बिखेर रहा है। वे बजते हुए नूपुरोंकी ध्वनिसे युक्त अपने अरुण चरणारविन्दों द्वारा सबका ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं ॥ ८ ॥ उनके मस्तकपर बालरविके समान कान्तिमान् मुकुट है। वे भुजाओंमें विमल अङ्गद, वक्षःस्थलपर हार और कानोंमें विद्युत्को भी विलज्जित करनेवाले मकराकार कुण्डल धारण किये हुए हैं। इस भूमण्डलपर पीताम्बरकी पीत प्रभासे सुशोभित उनका श्याम कान्तिमण्डल उसी प्रकार उत्कृष्ट शोभा पा रहा है, जैसे आकाशमें इन्द्रधनुषसे युक्त मेघमण्डल सुशोभित होता है ॥ ९ ॥ अबीर और केसरके रससे उनका सारा अङ्ग लिप्त है। उन्होंने हाथमें नयी पिचकारी ले रक्खी है तथा हे सखि राधे! तुम्हारे साथ रासरङ्गकी रसमयी क्रीडामें निमग्न रहनेवाले वे श्यामसुन्दर तुम्हारे शीघ्र निकलनेकी राह देखते हुए पास ही खड़े हैं ॥ १० ॥ तुम भी मान छोड़कर फगुआ (होली) के बहाने निकलो। निश्चय ही आज होलिकाको यश देना चाहिये और अपने भवनमें तुरंत ही रंग-मिश्रित जल, चन्दनके पङ्क और मकरन्द (इत्र आदि पुष्परस) का अधिक मात्रामें संचय कर लेना चाहिये ॥ ११ ॥ परम बुद्धिमती हे प्यारी सखी! उठो और सहसा अपनी सखीमण्डलीके साथ उस स्थानपर चलो, जहाँ वे श्यामसुन्दर भी मौजूद हों। ऐसा समय फिर कभी नहीं मिलेगा। बहती धारामें हाथ धो लेना चाहिये—यह कहावत सर्वत्र विदित है ॥ १२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! तब मानवती राधा मान छोड़कर उठीं और सखियोंके समूहसे घिरकर होलीका उत्सव मनानेके लिये निकलीं ॥ १३ ॥ चन्दन, अगर, कस्तूरी, हल्दी तथा केसरके घोलसे भरी हुई डोलचियाँ लिये वे बहुसंख्यक व्रजाङ्गनाएँ एक साथ होकर चलीं ॥ १४ ॥ रँगे हुए लाल-लाल हाथ, वासन्ती रंगके पीले वस्त्र, बजते हुए नूपुरोंसे युक्त पैर तथा झनकारती हुई करधनीसे सुशोभित कटिप्रदेश—बड़ी मनोहर शोभा थी उन गोपाङ्गनाओंकी। वे हास्ययुक्त गालियोंसे सुशोभित होलीके गीत गा रही थीं ॥ १५ ॥ अबीर, गुलालके चूर्ण मुट्ठियोंमें ले-लेकर इधर-उधर फेंकती हुई वे व्रजाङ्गनाएँ भूमि, आकाश और वस्त्रको लाल किये देती थीं ॥१६॥ वहाँ अबीरकी करोड़ों मुट्ठियाँ एक साथ उड़ती थीं। सुगन्धित गुलालके चूर्ण भी कोटि-कोटि हाथोंसे बिखेरे जाते थे ॥ १७ ॥ इसी समय व्रजगोपियोंने श्रीकृष्णको चारों ओरसे घेर लिया, मानो सावनकी साँझमें विद्युन्मालाओंने मेघको सब ओरसे अवरुद्ध कर लिया हो ॥ १८ ॥ पहले तो उनके मुँहपर खूब अबीर और गुलाल

भगवानपि तत्रैव यावतीर्व्रजयोषितः । धृत्वा रूपाणि तावंति विजहार नृपेश्वर ॥२०॥
राधया शुशुभे तत्र होलिकाया महोत्सवे । वर्षासंध्याक्षणे कृष्णः सौदामिन्या घनो यथा ॥२१॥
कृष्णोऽपि तद्धस्तकृताक्तनेत्रो दत्त्वा स्वकीयं नवमुत्तरीयम् ।
ताभ्यो ययौ नन्दगृहं परेशो देवेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षम् ॥२२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे होलिकोत्सवे दिव्यत्रिगुणवृत्तिभूमिगोप्युपाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(देवाङ्गनास्वरूपा गोपियाँ)

श्रीनारद उवाच

अथ देवांगनानां च गोपीनां वर्णनं शृणु । चतुष्पदार्थदं नृणां भक्तिवर्धनमुत्तमम् ॥ १ ॥
बभूव मालवे देशे गोपो नन्दो दिवस्पतिः । भार्यासहस्रसंयुक्तो धनवान्नीतिमान्परः ॥ २ ॥
तीर्थयात्राप्रसंगेन मथुरायां समागतः । नन्दराजं व्रजाधीशं श्रुत्वा श्रीगोकुलं ययौ ॥ ३ ॥
मिलित्वा गोपराजं स दृष्ट्वा वृन्दावनश्रियम् । नन्दराजाज्ञया तत्र वासं चक्रे महामनाः ॥ ४ ॥
योजनद्वयमाश्रित्य घोषं चक्रे गवां पुनः । मुदं प्राप व्रजे राजञ्ज्ञातिभिः स दिवस्पतिः ॥ ५ ॥
तस्य देवलवाक्येन सर्वा देवजनस्त्रियः । जाताःकन्या महादिव्या ज्वलदग्निशिखोपमाः॥ ६ ॥
श्रीकृष्णं सुन्दरं दृष्ट्वा मोहिताः कन्यकाश्च ताः । दामोदरस्य प्राप्त्यर्थं चक्रुर्माघव्रतं परम् ॥ ७ ॥
अर्धोदयेऽर्के यमुनां नित्यं स्नात्वा व्रजाङ्गनाः । उच्चैर्जगुः कृष्णलीलां प्रेमानन्दसमाकुलाः ॥ ८ ॥

पोत दिया, फिर सारे अङ्गोंपर अबीर-गुलाल बरसाये तथा केसरयुक्त रंगसे भरी डोलचियों द्वारा उन्हें विधि-पूर्वक भिगोया ॥ १९ ॥ हे नृपेश्वर ! वहाँ जितनी गोपियाँ थी उतने ही रूप धारण करके भगवान् भी उनके साथ विहार करते रहे ॥ २० ॥ उस होलिका-महोत्सवमें श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ वैसी ही शोभा पाते थे, जैसे वर्षाकालकी संध्या-वेलामें विद्युन्मालाके साथ मेघ सुशोभित होता है ॥ २१ ॥ श्रीराधाने श्रीकृष्णके नेत्रोंमें काजल लगा दिया। श्रीकृष्णने भी अपना नया उत्तरीय (दुपट्टा) गोपियोंको उपहारमें दे दिया। फिर वे परमेश्वर नन्दभवनको लौट गये। उस समय समस्त देवता उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे मिथिलेश्वर ! अब देवाङ्गनास्वरूपा गोपियोंका वर्णन सुनो, जो मनुष्योंको चारों पदार्थ देनेवाला तथा उनके भक्तिभावको बढ़ानेवाला सर्वोत्तम साधन है ॥ १ ॥ मालवदेशमें एक गोप थे, जिनका नाम था—दिवस्पति नन्द। उनके एक सहस्र पत्नियाँ थीं। वे बड़े धनवान् और नीतिज्ञ थे ॥ २ ॥ एक समय तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे उनका मथुरामें आगमन हुआ। वहाँ व्रजाधीश्वर नन्दराजका नाम सुनकर वे उनसे मिलनेके लिये गोकुल गये ॥ ३ ॥ वहाँ नन्दराजसे मिलकर और वृन्दावनकी शोभा देखकर महामना दिवस्पति नन्दराजकी आज्ञासे वहीं रहने लगे ॥ ४ ॥ उन्होंने दो योजन भूमिको घेरकर गौओंके लिये गोष्ठ बनाया। हे राजन् ! उस व्रजमें अपने कुटुम्बी बन्धुजनोंके साथ रहते हुए दिवस्पतिको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ देवल मुनिके आदेशसे समस्त देवाङ्गनाएँ उन्हीं दिवस्पतिकी महादिव्य कन्याएँ हुईं, जो प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्विनी थीं ॥ ६ ॥ किसी समय श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका दर्शन पाकर वे सब कन्याएँ मोहित हो गयीं और उन दामोदरकी प्राप्तिके लिये उन्होंने परम उत्तम माघमासका व्रत किया ॥ ७ ॥ आधे सूर्यके उदित होते-होते प्रतिदिन वे व्रजाङ्गनाएँ यमुनामें जाकर स्नान करतीं और प्रेमानन्दसे विह्वल हो उच्चस्वरसे

तासां प्रसन्नः श्रीकृष्णो वरं ब्रूहीत्युवाच ह । ता ऊचुस्तं परं नत्वा कृताञ्जलिपुटाः शनैः ॥ ९ ॥

गोप्य ऊचुः

योगीश्वराणां किल दुर्लभस्त्वं सर्वेश्वरः कारणकारणोऽसि ।
त्वं नेत्रगामी भवतात्सदा नो वंशीधरो मन्मथमन्मथांगः ॥१०॥
तथाऽस्तु चोक्त्वा हरिरादिदेवस्तासां तु यो दर्शनमाततान ।
भूयात्सदा ते हृदि नेत्रमार्गे तथा स आहूत इवाशु चित्ते ॥११॥

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो नान्य एव हि । एककार्यार्थमागत्य कोटिकार्यं चकार ह ॥१२॥

परिकरीकृतपीतपटं हरिं शिखिकिरीटनतीकृतकंधरम् ।
लकुटवेणुकरं चलकुंडलं पटुतरं नटवेषधरं भजे ॥१३॥
भक्त्यैव वश्यो हरिरादिदेवः सदा प्रमाणं किल चात्र गोप्यः ।
सांख्यं च योगं न कृतं कदापि प्रेम्णैव यस्य प्रकृतिं गताः स्युः ॥१४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे देवजनस्त्र्युपाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(कौरव-सेनासे पीडित रंगोजि गोपका कंसको सहायतासे व्रजमण्डलकी सीमापर निवास)

श्रीनारद उवाच

जालंधरीणां गोपीनां जन्मानि शृणु मैथिल । कर्माणि च महाराज पापघ्नानि नृणां सदा ॥ १ ॥
राजन्सप्तनदीतीरे रंगपत्तनमुत्तमम् । सर्वसंपद्युतं दीर्घं योजनद्वयवर्तुलम् ॥ २ ॥
रङ्गोजिस्तत्र गोपालः पुराधीशो महाबलः । पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमृद्धिमान् ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णकी लीलाएँ गाती थीं ॥ ८ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण उनपर प्रसन्न होकर बोले—'तुम कोई वर माँगो।' तब उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर उन परमात्माको प्रणाम करके उनसे धीरे-धीरे कहा ॥ ९ ॥ गोपियाँ बोलीं—हे प्रभो ! निश्चय ही आप योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ हैं। सबके ईश्वर तथा कारणोंके भी कारण हैं। आप वंशीधारी हैं। आपका अङ्ग मन्मथके मनको भी मथ डालनेवाला (मोह लेनेवाला) है। आप सदा हमारे नेत्रोंके समक्ष रहें ॥ १० ॥ हे राजन् ! तब 'तथास्तु' कहकर जिन आदिदेव श्रीहरिने गोपियोंके लिये अपने दर्शनका द्वार उन्मुक्त कर दिया, वे सदा तुम्हारे हृदयमें, नेत्रमार्गमें बसे रहें और बुलाये हुए-से तत्काल चित्तमें आकर स्थित हो जायँ ॥ ११ ॥ भगवान्के परिपूर्णतम अवतार श्रीकृष्ण ही हैं, अन्य कोई अवतार नहीं। क्योंकि वे एक कार्यके लिए आये, किन्तु करोड़ों कार्य किये ॥ १२ ॥ जिन्होंने कमरमें पीताम्बर बाँध रक्खा है, जिनके सिरपर मोरपंखका मुकुट सुशोभित है और गर्दन झुकी हुई है, जिनके हाथमें बाँसुरी और लकुटी है तथा कानोंमें रत्नमय कुण्डल झलमला रहे हैं, उन पटुतर नटवेषधारी श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ ॥ १३ ॥ आदिदेव श्रीहरि केवल भक्तिसे ही वशमें होते हैं। निश्चय ही इसमें गोपियाँ सदा प्रमाणभूत हैं, जिन्होंने न तो कभी सांख्यका विचार किया न योगका अनुष्ठान; केवल प्रेमसे ही वे भगवान्के स्वरूपको प्राप्त हो गयीं ॥१४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं--हे मिथिलेश्वर ! अब जालंधरके अन्त:पुरकी स्त्रियोंके गोपीरूपमें जन्म लेनेका वर्णन सुनो। हे महाराज ! साथ ही उनके कर्मोंको भी सुनो, जो सदा ही मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाले हैं ॥ १ ॥ हे राजन् ! सप्तनदीके किनारे 'रङ्गपत्तन' नामसे प्रसिद्ध एक उत्तम नगर था, जो सब प्रकारकी सम्पदाओंसे सम्पन्न तथा विशाल था। वह दो योजन विस्तृत गोलाकार नगर था ॥ २ ॥ उस नगरका

हस्तिनापुरनाथाय धृतराष्ट्राय भूभृते । हैमानामर्बुदशतं वार्षिकं स ददौ सदा ॥ ४ ॥
एकदा तत्र वर्षांते व्यतीते किल मैथिल । वार्षिकं तु करं राज्ञे न ददौ स मदोत्कटः ॥ ५ ॥
मिलनार्थं न चायाते रङ्गोजौ गोपनायके । वीरा दश सहस्राणि धृतराष्ट्रप्रणोदिताः ॥ ६ ॥
बद्ध्वा तं दामभिर्गोपमाजग्मुस्ते गजाह्वयम् । कति वर्षाणि रङ्गोजिः कारागारे स्थितोऽभवत्॥ ७ ॥
सन्निरुद्धस्ताडितोऽपि लोभी भीरुर्न चाभवत् । न ददौ स धनं किंचिद्धृतराष्ट्राय भूभृते ॥ ८ ॥
कारागारान्महाभीमात्कदाचित्स पलायितः । रात्रौ रङ्गपुरं प्रागाद्रङ्गोजिर्गोपनायकः ॥ ९ ॥
पुनस्तं हि समाहर्तुं धृतराष्ट्रप्रणोदितम् । अक्षौहिणीत्रयं राजन् समर्थबलवाहनम् ॥१०॥
तेन सार्द्धं स बाणौघैस्तीक्ष्णधारैः स्फुरत्प्रभैः । युयुधे दंशितो युद्धे धनुष्टंकारयन्मुहुः ॥११॥
शत्रुभिश्छिन्नकवचश्छिन्नधन्वा हतस्वकः । पुरमेत्य मृधं चक्रे रङ्गोजिः कतिभिर्दिनैः ॥१२॥
अनाथः शरणं चेच्छन्कंसाय यदुभूभृते । दूतं स्वं प्रेषयामास रङ्गोजिर्भयपीडितः ॥१३॥
दूतस्तु मथुरामेत्य सभां गत्वा नताननः । कृताञ्जलिश्चौग्रसेनिं नत्वा प्राह गिरार्द्रया ॥१४॥

रङ्गोजिनामा नृप रङ्गपत्तने गोपोऽस्ति नीतिज्ञवरः पुराधिपः ।
स्वशत्रुसंरुद्धपुरो महाधिभृदलब्धनाथः शरणं गतस्तव ॥१५॥
त्वं दीनदुःखार्तिहरो महीतले भौमादिसङ्गीतगुणो महाबलः ।
सुरासुरानुद्भटभूमिपालकान्विजित्य युद्धे सुरराडिव स्थितः ॥१६॥
चन्द्रं चकोरश्च रविं कुशेशयं यथा शरच्छीकरमेव चातकः ।
क्षुधातुरोऽन्नं च जलं तृषातुरः स्मरत्यसौ शत्रुभये तथा त्वाम् ॥१७॥

मालिक या पुराधीश रंगोजि नामक एक गोप था, जो महान् बलवान् था । वह पुत्र-पौत्र आदिसे संयुक्त तथा धन-धान्यसे समृद्धिशाली था ॥ ३ ॥ हस्तिनापुरके स्वामी राजा धृतराष्ट्रको वह सदा सौ अरब स्वर्णमुद्राएँ वार्षिक करके रूपमें दिया करता था ॥ ४ ॥ हे मिथिलेश्वर ! एक समय वर्ष बीत जानेपर भी धनके मदसे उन्मत्त उस गोपने राजाको वार्षिक कर नहीं दिया ॥५॥ इतना ही नहीं, वह गोपनायक रंगोजि मिलनेतक नहीं गया । तब धृतराष्ट्रके भेजे हुए दस हजार वीर जाकर उस गोपको बाँधकर हस्तिनापुरमें ले आये । कई वर्षों-तक तो रंगोजि कारागारमें बँधा पड़ा रहा ॥ ६ ॥ ७ ॥ बाँधे और पीटे जानेपर भी वह लोभी गोप डरा नहीं । उसने राजा धृतराष्ट्रको थोड़ा-सा भी धन नहीं दिया ॥ ८ ॥ किसी समय गोपनायक रंगोजि उस महाभयंकर कारागारसे भाग निकला तथा रातों-रात रङ्गपुरमें आ गया ॥ ९ ॥ तब पुनः उसे पकड़ लानेके लिये धृत-राष्ट्रकी भेजी हुई शक्तिशाली बल-वाहनसे सम्पन्न तीन अक्षौहिणी सेना गयी ॥१०॥ वह गोप भी कवच धारण करके युद्धभूमिमें बारंबार धनुषका टंकार करता हुआ तीखी धारवाले चमकीले बाणसमूहोंकी वर्षा करके धृतराष्ट्रकी उस सेनाका सामना करने लगा ॥ ११ ॥ शत्रुओंने उसके कवच और धनुष काट दिये तथा उसके स्वजनोंका भी वध कर डाला; तब वह अपने पुर (दुर्ग) में आकर कुछ दिनोंतक युद्ध चलाता रहा ॥ १२ ॥ अन्तमें अनाथ एवं भयसे पीड़ित रंगोजि किसी शरणदाता या रक्षककी इच्छा करने लगा । तदनुसार उसने यादवराज कंसके पास अपना दूत भेजा ॥ १३ ॥ दूत मथुरा पहुँचकर राज-दरबारमें गया और उसने मस्तक झुकाकर दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधे उग्रसेनकुमार कंसको प्रणाम करके करुणासे आर्द्र वाणीमें कहा—॥ १४ ॥ 'हे महाराज ! रङ्गपत्तनमें रंगोजि नामसे प्रसिद्ध एक गोप हैं, जो उस नगरके स्वामी तथा नीतिवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं । शत्रुओंने उनके नगरको चारों ओरसे घेर लिया है । वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये हैं और अनाथ होकर आपकी शरणमें आये हैं ॥ १५ ॥ इस भूतलपर केवल आप ही दीनों और दुखियोंकी पीड़ा हरनेवाले हैं । भौमासुरादि वीर आपके गुण गाया करते हैं । आप महाबली हैं और देवता, असुर तथा उद्भट भूमिपालोंको युद्धमें जीतकर देवराज इन्द्रके समान अपनी राजधानीमें विराजमान हैं ॥ १६ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं श्रुत्वा वचस्तस्य कंसो वै दीनवत्सलः । दैत्यकोटिसमायुक्तो मनो गंतुं समादधे ॥१८॥
गोमूत्रचयसिन्दूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखम् । विंध्याद्रिसदृशं श्यामं मदनिर्झरसंयुतम् ॥१९॥
पादे च शृङ्खलाजालं नदंतं घनवद्भृशम् । द्विपं कुवलयापीडं समारुह्य मदोत्कटः ॥२०॥
चाणूरमुष्टिकाद्यैश्च केशिव्योमवृषासुरैः । सहसा दंशितः कंसः प्रययौ रङ्गपत्तनम् ॥२१॥
यदूनां च कुरूणां च बलयोस्तु परस्परम् । बाणैः खड्गैस्त्रिशूलैश्च घोरं युद्धं बभूव ह ॥२२॥
बाणांधकारे संजाते कंसो नीत्वा महागदाम् । विवेश कुरुसेनासु वने वैश्वानरो यथा ॥२३॥
कांश्चिद्वीरान्सकवचान्गदया वज्रकल्पया । पातयामास भूपृष्ठे वज्रेणेंद्रो यथा गिरिम् ॥२४॥
रथान्ममर्द पादाभ्यां पार्ष्णिघातेन घोटकान् । गजे गजं ताडयित्वा गजान्प्रोन्नीय चांघ्रिषु ॥२५॥
स्कन्धयोः कक्षयोर्धृत्वा सनीडान् रत्नकंबलान् । कांश्चिद्बलाद्भ्रामयित्वा चिक्षेप गगने बली ॥२६॥
गजाञ्छुण्डासु चोन्नीय लोलघंटासमावृतान् । चिक्षेप संमुखे राजन् मृधे व्योमासुरो बली ॥२७॥
रथान् गृहीत्वा साश्वांश्च शृङ्गाभ्यं भ्रामयन्मुहुः । चिक्षेप दिक्षु बलवान् दैत्यो दुष्टो वृषासुरः ॥२८॥
बलात्पश्चिमपादाभ्यां वीरानश्वानितस्ततः । पातयामास राजेंद्र केशी दैत्याधिपो बली ॥२९॥
एवं भयङ्करं युद्धं दृष्ट्वा वै कुरुसैनिकाः । शेषा भयातुरा वीरा जग्मुस्तेऽपि दिशो दश ॥३०॥
रङ्गोजिं सकुटुम्बं तं नीत्वा कंसोऽथ दैत्यराट् । मथुरां प्रययौ वीरो नादयन्दुंदुभीञ्छनैः ॥३१॥
श्रुत्वा पराजयं स्वस्य कौरवाः क्रोधमूर्च्छिताः । दैत्यानां समयं दृष्ट्वा सर्वे वै मौनमास्थिताः ॥३२॥

जैसे चकोर चन्द्रमाको, कमलोंका समुदाय सूर्यको, चातक शरद् ऋतुके बादलों द्वारा बरसाये गये जलकणोंको, भूखसे व्याकुल मनुष्य अन्नको तथा प्यासे पीड़ित प्राणी पानीको ही याद करता है, उसी प्रकार रंगोजि गोप शत्रुके भयसे आक्रान्त हो केवल आपका स्मरण कर रहे हैं' ॥ १७ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! दूतकी यह बात सुनकर दीनवत्सल कंसने करोड़ों दैत्योंकी सेनाके साथ वहाँ जानेका विचार किया ॥ १८ ॥ उसके हाथीके गण्डस्थलपर गोमूत्रमें घोले गये सिन्दूर और कस्तूरीके द्वारा पत्र-रचना की गयी थी। वह हाथी विन्ध्याचलके समान ऊँचा था और उसके गण्डस्थलसे मद झर रहे थे ॥ १९ ॥ उसके पैरमें साँकलें थीं। वह मेघकी गर्जनाके समान जोर-जोरसे चिग्घाड़ता था। ऐसे कुवलयापीड़ नामक गजराजपर चढ़कर मदमत्त राजा कंस सहसा कवच आदिसे सुसज्जित हो चाणूर-मुष्टिक आदि मल्लों तथा केशी, व्योमासुर और वृषासुर आदि दैत्य-योद्धाओंके साथ रङ्गपत्तनकी ओर प्रस्थित हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥ वहाँ यादवों और कौरवोंकी सेनाओंमें परस्पर बाणों, खड्गों और त्रिशूलोंके प्रहारसे घोर युद्ध हुआ ॥ २२ ॥ जब बाणोंसे सब ओर अन्धकार-सा छा गया, तब कंस एक विशाल गदा हाथमें लेकर कौरव-सेनामें उसी प्रकार घुसा, जैसे वनमें दावानल प्रविष्ट हुआ हो ॥ २३ ॥ जैसे इन्द्र अपने वज्रसे पर्वतको गिरा देते हैं, उसी प्रकार कंसने अपनी वज्र-सरीखी गदाकी मारसे कितने ही कवचधारी वीरोंको धराशायी कर दिया ॥ २४ ॥ उसने पैरोंके आघातसे रथोंको रौंद डाला और एड़ियोंसे मार-मारकर घोड़ोंकी कचूमर निकाल दी। हाथीको हाथीसे ही मारकर कितने ही गजोंको उनके पाँव पकड़कर उछाल दिया ॥ २५ ॥ महाबली कंसने कितने ही हाथियोंके कंधों अथवा कक्षभागोंको पकड़कर उन्हें हौदों और झूलोंसहित बलपूर्वक घुमाते हुए आकाशमें फेंक दिया ॥२६॥ हे राजन् ! उस युद्धभूमिमें बलवान् व्योमासुर हाथियोंके शुण्डादण्ड पकड़कर उन्हें चञ्चल घंटाओं-सहित उछालकर सामने फेंक देता था ॥ २७ ॥ दुष्ट दैत्य बलवान् वृषासुर घोड़ोंसहित रथोंको अपने सींगोंपर उठाकर बारंबार घुमाता हुआ चारों दिशाओंमें फेंकने लगा ॥ २८ ॥ हे राजेन्द्र ! बलवान् दैत्यराज केशीने बलपूर्वक अपने पिछले पैरोंसे बहुत-से वीरों और अश्वोंको इधर-उधर धराशायी कर दिया ॥ २९ ॥ ऐसा भयंकर युद्ध देखकर कौरव सेनाके शेष वीर भयसे व्याकुल हो दसों दिशाओंमें भाग गये॥ ३० ॥ दैत्यराज वीर कंस विजयके उल्लासमें नगाड़े बजवाता हुआ कुटुम्बसहित रंगोजि गोपको अपने साथ ही मथुरा ले

पुरं बर्हिपदं नाम व्रजसीम्नि मनोहरम् । रङ्गोजये ददौ कंसो दैत्यानामधिपो बली ॥३३॥
वासं चकार तत्रैव रङ्गोजिर्गोपनायकः । बभूवुस्तस्य भार्यासु जालंधर्यो हरेर्वरात् ॥३४॥
परिणीता गोपजनै रूपयौवनभूषिताः । जारधर्मेण सुस्नेहं श्रीकृष्णे ताः प्रचक्रिरे ॥३५॥
चैत्रमासे महारासे ताभिः साकं हरिः स्वयम् । पुण्ये वृन्दावने रम्ये रेमे वृन्दावनेश्वरः ॥३६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे जालंधर्युपाख्यानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(बर्हिष्मतीपुरी आदिकी वनिताओंका भगवान् कृष्णके साथ रास-विलास)

श्रीनारद उवाच

व्रजे शोणपुराधीशो गोपो नन्दो धनी महान् । भार्याः पञ्चसहस्राणि बभूवुस्तस्य मैथिल ॥ १ ॥
जाता मत्स्यवरात्तास्तु समुद्रे गोपकन्यकाः । तथाऽन्याश्च त्रिवाचापि पृथिव्या दोहनान्नृप ॥ २ ॥
बर्हिष्मतीपुरंध्र्यो या जाता जातिस्मराः पराः । तथाऽन्याप्सरसोऽभूवन्वरान्नारायणस्य च ॥ ३ ॥
तथा सुतलवासिन्यो वामनस्य वरात्स्त्रियः । तथा नागेन्द्रकन्याश्च जाताः शेषवरात्परात् ॥ ४ ॥
ताभ्यो दुर्वाससा दत्तं कृष्णापञ्चांगमद्भुतम् । तेन संपूज्य यमुनां वव्रिरे श्रीपतिं वरम् ॥ ५ ॥
एकदा श्रीहरिस्ताभिर्वृन्दारण्ये मनोहरे । यमुनानिकटे दिव्ये पुंस्कोकिलतरुव्रजे ॥ ६ ॥
मधुपध्वनिसंयुक्ते कूजत्कोकिलसारसे । मधुमासे मन्दवायौ वसन्तलतिकावृते ॥ ७ ॥
दोलोत्सवं समारेभे हरिर्मदनमोहनः । कदम्बवृक्षे रहसि कल्पवृक्षे मनोहरे ॥ ८ ॥

गया ॥ ३१ ॥ अपनी सेनाकी पराजयका समाचार सुनकर कौरव क्रोधसे मूर्च्छित हो उठे। परंतु वर्तमान समयको दैत्योंके अनुकूल देखकर वे सबके सब चुप रह गये ॥ ३२ ॥ व्रजमण्डलकी सीमापर बर्हिषद् नामसे प्रसिद्ध एक मनोहर पुर था, जिसे बलवान् दैत्यराज कंसने रंगोजिको दे दिया ॥ ३३ ॥ गोपनायक रंगोजि वहीं निवास करने लगा। श्रीहरिके वरदानसे जालंधरके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ उसी गोपकी पत्नियोंके गर्भसे उत्पन्न हुईं ॥ ३४ ॥ रूप और यौवनसे विभूषित वे गोपकन्याएँ दूसरे-दूसरे गोपजनोंको ब्याह दी गयीं, परंतु वे जारभावसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रगाढ़ प्रेम करने लगीं ॥ ३५ ॥ वृन्दावनेश्वर श्यामसुन्दरने चैत्र मासके महारासमें उन सबके साथ पुण्यमय रमणीय वृन्दावनके भीतर विहार किया ॥ ३६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! व्रजमें शोणपुरके स्वामी नन्द बड़े धनी थे। हे मिथिलेश्वर ! उनके पाँच हजार पत्नियाँ थीं ॥ १ ॥ उनके गर्भमें समुद्रसम्भवा लक्ष्मीजीकी वे सखियाँ उत्पन्न हुईं, जिन्हें मत्स्यावतारधारी भगवान्से वैसा वर प्राप्त हुआ था। हे नरेश्वर ! इनके सिवा और भी, विचित्र ओषधियाँ, जो पृथ्वीके दोहनसे प्रकट हुई थीं, वहाँ गोपीरूपमें उत्पन्न हुईं ॥ २ ॥ बर्हिष्मतीपुरीकी वे नारियाँ भी, जिन्हें महाराज पृथुका वर प्राप्त था, जातिस्मरा गोपियोंके रूपमें व्रजमें उत्पन्न हुई थीं तथा नर-नारायणके वरदानसे अप्सराएँ भी गोपीरूपमें प्रकट हुई थीं ॥ ३ ॥ सुतलवासिनी दैत्यनारियाँ वामनके वरसे तथा नागराजोंकी कन्याएं भगवान् शेषके उत्तम वरसे व्रजमें उत्पन्न हुईं ॥ ४ ॥ दुर्वासा मुनिने उन सबको अद्भुत 'कृष्ण-पञ्चाङ्ग' दिया था, जिससे यमुनाजीकी पूजा करके उन्होंने श्रीपतिका वररूपमें वरण किया ॥ ५ ॥ एक दिनकी बात है—मनोहर वृन्दावनमें दिव्य यमुनातटपर, जहाँ नर-कोकिलोंसे सुशोभित हरे-भरे वृक्ष-समुदाय शोभा दे रहे थे, भ्रमरोंके गुञ्जारवके साथ कोकिलों और सारसोंकी मीठी बोली गूँज रही थी, वासन्ती लताओंसे आवृत तथा शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुसे परिसेवित मधुमासमें, उन गोपाङ्गनाओंके साथ, मदनमोहन श्यामसुन्दर श्रीहरिने कल्पवृक्षोंकी श्रेणीसे मनोरम प्रतीत होनेवाले कदम्बवृक्षके नीचे एकान्तस्थानमें झूला

कालिन्दीजलकल्लोलकोलाहलसमाकुले । तद्दोलाखेलनं चक्रुस्ता गोप्यः प्रेमविह्वलाः ॥ ९ ॥
राधया कीर्तिसुतया चन्द्रकोटिप्रकाशया । रेजे वृन्दावने कृष्णो यथा रत्या रतीश्वरः ॥१०॥
एवं प्राप्ताश्च याः सर्वाः श्रीकृष्णं नंदनंदनम् । परिपूर्णतमं साक्षात्तासां किं वर्ण्यते तपः ॥११॥
नागेन्द्रकन्या याः सर्वाश्चैत्रमासे मनोहरे । बलभद्रं हरिं प्राप्ताः कृष्णातीरे तु ताः शुभाः ॥१२॥
इदं मया ते कथितं गोपीनां चरितं शुभम् । सर्वपापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१३॥

श्रीबहुलाश्व उवाच

यमुनायाश्च पञ्चाङ्गं दत्तं दुर्वाससा मुने ।
गोपीभ्यो येन गोविन्दः प्राप्तस्तद्ब्रूहि मां प्रभो ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः परा भवेत् ॥१५॥
अयोध्याधिपतिः श्रीमान्मांधाता राजसत्तमः । मृगयां विचरन् प्राप्तः सौभरेराश्रमं शुभम् ॥१६॥
वृन्दावने स्थितं साक्षात्कृष्णातीरे मनोहरे । नत्वा जामातरं राजा सौभरिं प्राह मानदः ॥१७॥

मांधातोवाच

भगवन्सर्ववित्साक्षात्त्वं परावरवित्तमः । लोकानां तमसोऽन्धानां दिव्यसूर्य इवापरः ॥१८॥
इह लोके भवेद्राज्यं सर्वसिद्धिसमन्वितम् । अमुत्र कृष्णसारूप्यं येन स्यात्तद्वदाशु मे ॥१९॥

सौभरिरुवाच

यमुनायाश्च पञ्चाङ्गं वदिष्यामि तवाग्रतः । सर्वसिद्धिकरं शश्वत्कृष्णसारूप्यकारकम् ॥२०॥
यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति । तावद्राज्यप्रदं चात्र श्रीकृष्णवशकारकम् ॥२१॥

झूलनेका उत्सव आरम्भ किया। वहाँ यमुनाजलकी उत्ताल तरङ्गोंका कोलाहल फैला हुआ था। वे प्रेम-विह्वला गोपाङ्गनाएँ श्रीहरिके साथ झूला झूलनेकी क्रीड़ा कर रही थीं ॥ ६-९ ॥ जैसे रतिके साथ रति-पति कामदेव शोभा पाते हैं, उसी प्रकार करोड़ों चन्द्रोंसे भी अधिक कान्तिमती कीर्तिकुमारी श्रीराधाके साथ वृन्दावनमें श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे ॥ १० ॥ इस प्रकार जो साक्षात् परिपूर्णतम नन्दनन्दन श्रीकृष्णको प्राप्त हुई थीं, क्या उन समस्त गोपाङ्गनाओंके तपका वर्णन हो सकता है? ॥११॥ नागराजोंकी समस्त सुन्दरी कन्याएँ, जो गोपीरूपमें उत्पन्न हुई थीं, मनोहर चैत्र मासमें यमुनाके तटपर श्रीबलभद्र हरिकी सेवामें उपस्थित थीं ॥ १२ ॥ हे राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो परम पवित्र तथा समस्त पापोंको हर लेनेवाला है। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो? ॥ १३ ॥ राजा बहुलाश्व बोले—हे मुने! हे प्रभो! दुर्वासाका दिया हुआ यमुनाजीका पञ्चांग क्या है, जिससे गोपियोंको गोविन्दकी प्राप्ति हो गयी? उसका मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १४॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन्! इस विषयमें विज्ञजन एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण देते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंकी पूर्णतया निवृत्ति हो जाती है ॥ १५ ॥ अयोध्यामें मांधाता नामसे प्रसिद्ध एक तेजस्वी राजशिरोमणि उस पुरीके अधिपति थे। एक दिन वे शिकार खेलनेके लिये वनमें गये और विचरते हुए, सौभरि मुनिके सुन्दर आश्रमपर जा पहुँचे ॥ १६ ॥ उनका वह आश्रम साक्षात् वृन्दावनमें यमुनाजीके मनोहर तटपर स्थित था। वहाँ अपने जामाता सौभरि मुनिको प्रणाम करके मानदाता मांधाताने कहा ॥ १७ ॥ मांधाता बोले—भगवन्! आप साक्षात् सर्वज्ञ हैं, परावरवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और अज्ञानान्धकारसे अंधे हुए लोगोंके लिये दूसरे दिव्य सूर्यके समान हैं। मुझे शीघ्र ही ऐसा कोई उत्तम साधन बताइये, जिससे इस लोकमें सम्पूर्ण सिद्धियोंसे सम्पन्न राज्य बना रहे और परलोकमें भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त हो ॥ १८ ॥ १९ ॥ सौभरि बोले—हे राजन्! मैं तुम्हारे सामने यमुनाजी-के पञ्चाङ्गका वर्णन करूँगा, जो सदा समस्त सिद्धियोंको देनेवाला तथा श्रीकृष्णके सारूप्यकी प्राप्ति करानेवाला है ॥ २० ॥ यह साधन जहाँसे सूर्यका उदय होता है और जहाँ वह अस्तभावको प्राप्त होता है, वहाँ-

कवचं च स्तवं नाम्नां सहस्रं पटलं तथा । पद्धतिं सूर्यवंशेन्द्र पञ्चाङ्गानि विदुर्बुधाः ॥२२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीसौभरिमांधातृसंवादे बर्हिष्मतीपुरंध्यप्सरःसुनलवासिनी-नागेन्द्रकन्योपाख्यानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

(श्रीयमुना-कवच)

मांधातोवाच

यमुनायाः कृष्णराज्ञ्याः कवचं सर्वतोऽमलम् । देहि मह्यं महाभाग धारयिष्याम्यहं सदा ॥ १ ॥

सौभरिरुवाच

यमुनायाश्च कवचं सर्वरक्षाकरं नृणाम् । चतुष्पदार्थदं साक्षाच्छृणु राजन्महामते ॥ २ ॥
कृष्णां चतुर्भुजां श्यामां पुण्डरीकदलेक्षणाम् । रथस्थां सुन्दरीं ध्यात्वा धारयेत्कवचं ततः ॥ ३ ॥
स्नातः पूर्वमुखो मौनी कृतसंध्यः कुशासने । कुशैर्बद्धशिखो विप्रः पठेद्वै स्वस्तिकासनः ॥ ४ ॥
यमुना मे शिरः पातु कृष्णा नेत्रद्वयं सदा । श्यामा भ्रूभङ्गदेशं च नासिकां नाकवासिनी ॥ ५ ॥
कपोलौ पातु मे साक्षात्परमानन्दरूपिणी । कृष्णवामांससंभूता पातु कर्णद्वयं मम ॥ ६ ॥
अधरौ पातु कालिन्दी चिबुकं सूर्यकन्यका । यमस्वसा कन्धरां च हृदयं मे महानदी ॥ ७ ॥
कृष्णप्रिया पातु पृष्ठं तटिनी मे भुजद्वयम् । श्रोणीतटं च सुश्रोणी कटिं मे चारुदर्शना ॥ ८ ॥
ऊरुद्वयं तु रंभोरुर्जानुनी त्वंघ्रिभेदिनी । गुल्फौ रासेश्वरी पातु पादौ पापप्रहारिणी ॥ ९ ॥
अंतर्बहिरधश्चोर्ध्वं दिशासु विदिशासु च । समंतात्पातु जगतः परिपूर्णतमप्रिया ॥१०॥

तकके राज्यकी प्राप्ति करानेवाला तथा यहाँ श्रीकृष्णको भी वशीभूत करनेवाला है ॥ २१ ॥ हे सूर्यवंशेन्द्र ! किसी भी देवताके कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम, पटल तथा पद्धति—ये पाँच अङ्ग, विद्वानोंने बताये हैं ॥ २२ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

मांधाता बोले—हे महाभाग! आप मुझे श्रीकृष्णको पटरानी यमुनाके सर्वथा निर्मल कवचका उपदेश दीजिये, मैं उसे सदा धारण करूँगा ॥ १ ॥ सौभरि बोले—हे महामते नरेश ! यमुनाजीका कवच मनुष्योंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाला तथा साक्षात् चारों पदार्थोंको देनेवाला है, तुम इसे सुनो—॥ २ ॥ यमुनाजीके चार भुजाएँ हैं। वे श्यामा (श्यामवर्णा एवं षोडश वर्षकी अवस्थासे युक्त) हैं। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमल-दलके समान सुन्दर एवं विशाल हैं। वे परम सुन्दरी हैं और दिव्य रथपर बैठी हुई हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करके कवच धारण करे ॥ ३ ॥ स्नान करके पूर्वाभिमुख हो मौनभावसे कुशासनपर बैठे और कुशों-द्वारा शिखा बाँधकर संध्या-वन्दन करनेके अनन्तर ब्राह्मण (अथवा द्विजमात्र) स्वस्तिकासनसे स्थित हो कवचका पाठ करे ॥ ४ ॥ 'यमुना' मेरे मस्तककी रक्षा करें और 'कृष्णा' सदा दोनों नेत्रोंकी। 'श्यामा' भ्रूभंग-देशकी और 'नाकवासिनी' नासिकाकी रक्षा करें ॥ ५ ॥ 'साक्षात् परमानन्दरूपिणी' मेरे दोनों कपोलोंकी रक्षा करें। 'श्रीकृष्णवामांससम्भूता' (श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई वे देवी) मेरे दोनों कानों-का संरक्षण करें ॥ ६ ॥ 'कालिन्दी' अधरोंकी और 'सूर्यकन्या' चिबुक (ठोढ़ी) की रक्षा करें। 'यमस्वसा' (यमराजकी बहिन) मेरी ग्रीवाकी और 'महानदी' मेरे हृदयकी रक्षा करें ॥ ७ ॥ 'कृष्णप्रिया' पृष्ठभागका और 'तटिनी' मेरी दोनों भुजाओंका रक्षण करें। 'सुश्रोणी' श्रोणीतट (नितम्ब) की और 'चारुदर्शना' मेरे कटिप्रदेशकी रक्षा करें ॥ ८ ॥ 'रम्भोरु' दोनों ऊरुओं (जाँघों) की और 'अङ्घ्रिभेदिनी' मेरे दोनों पाँवोंकी रक्षा करें। 'रासेश्वरी' गुल्फों (घुटनों) का और 'पापापहारिणी' पादयुगलका त्राण करें ॥ ९ ॥ 'परिपूर्ण-तमप्रिया' भीतर-बाहर, नीचे-ऊपर तथा दिशाओं और विदिशाओंमें सब ओरसे मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥

इदं श्रीयमुनायाश्च कवचं परमाद्भुतम् । दशवारं पठेद्भक्त्या निर्धनो धनवान्भवेत् ॥११॥
त्रिभिर्मासैः पठेद्धीमान् ब्रह्मचारी मिताशनः । सर्वराज्याधिपत्यञ्च प्राप्यते नात्र संशयः ॥१२॥
दशोत्तरशतं नित्यं त्रिमासावधि भक्तितः ।
यः पठेत्प्रयतो भूत्वा तस्य किं किं न जायते ॥१३॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय सर्वतीर्थफलं लभेत् । अंते व्रजेत्परं धाम गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥१४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीसौभरिमांधातृसंवादे श्रीयमुनाकवचं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

(श्रीयमुनास्तोत्र)

मांधातोवाच

यमुनायाः स्तवं दिव्यं सर्वसिद्धिकरं परम् । सौभरे मुनिशार्दूल वद मां कृपया त्वरम् ॥ १ ॥

श्रीसौभरिरुवाच

मार्तंडकन्यकायास्तु स्तवं शृणु महामते । सर्वसिद्धिकरं भूमौ चातुर्वर्ग्यफलप्रदम् ॥ २ ॥
कृष्णवामांसभूतायै कृष्णायै सततं नमः ।
नमः श्रीकृष्णरूपिण्यै कृष्णे तुभ्यं नमोनमः ॥ ३ ॥
यः पापपङ्कांबुकलंककुत्सितः कामी कुधीः सत्सु कलिं करोति हि ।
वृन्दावनं धाम ददाति तस्मै नदन्मिलिन्दादिकलिन्दनन्दिनी ॥ ४ ॥
कृष्णे साक्षात्कृष्णरूपा त्वमेव वेगावर्ते वर्तसे मत्स्यरूपी ।
ऊर्मावूर्मौ कूर्मरूपी सदा ते बिंदौ बिंदौ भाति गोविन्ददेवः ॥ ५ ॥

यह श्रीयमुनाका परम अद्भुत कवच है। जो भक्तिभावसे दस बार इसका पाठ करता है, वह निर्धन भी धनवान् हो जाता है ॥ ११ ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक परिमित आहारका सेवन करते हुए तीन मासतक इसका पाठ करेगा, वह सम्पूर्ण राज्योंका आधिपत्य प्राप्त कर लेगा, इसमें संशय नहीं है ॥ १२ ॥ जो तीन महीनेकी अवधितक प्रतिदिन भक्तिभावसे शुद्धचित्त होकर इसका एक सौ दस बार पाठ करेगा, उसको क्या-क्या नहीं मिल जायगा ? जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करेगा, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल मिल जायगा तथा अन्तमें वह योगिदुर्लभ परमधाम गोलोकमें चला जायगा ॥ १३ ॥ १४ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

मांधाता बोले—हे मुनिश्रेष्ठ सौभरे! सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करनेवाला जो यमुनाजीका दिव्य और उत्तम स्तोत्र है, उसका कृपापूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीसौभरि मुनिने कहा—हे महामते! अब तुम सूर्यकन्या यमुनाका स्तोत्र सुनो, जो इस भूतलपर समस्त सिद्धियोंको देनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चारों पुरुषार्थोंका फल देनेवाला है ॥ २ ॥ श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई 'कृष्णा'को सदा मेरा नमस्कार है। हे कृष्णे! तुम श्रीकृष्णस्वरूपिणी हो; तुम्हें बारंबार नमस्कार है ॥३॥ जो पापरूपी पङ्कजलके कलङ्कसे कुत्सित कामी तथा कुबुद्धि मनुष्य सत्पुरुषोंके साथ कलह करता है, उसे भी गूँजते हुए भ्रमर और जलपक्षियोंसे युक्त कलिन्दनन्दिनी यमुना वृन्दावनधाम प्रदान करती हैं ॥ ४ ॥ हे कृष्णे! तुम्हीं साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूपा हो। तुम्हीं प्रलयसिन्धुके वेगयुक्त भँवरमें महामत्स्यरूप धारण करके विराजती हो। तुम्हारी ऊर्मि-ऊर्मिमें भगवान् कूर्मरूपसे निवास करते हैं तथा तुम्हारे बिन्दु-बिन्दुमें श्रीगोविन्ददेवकी आभाका दर्शन

चन्दे लीलावतीं त्वां सघनघननिभां कृष्णवामांसभूतां
वेगं वै वैरजाख्यं सकलजलचयं खण्डयंतीं बलात्स्वात् ।
छित्वा ब्रह्माण्डमारात्सुरनगरनगान्गण्डशैलादिदुर्गान्
भित्त्वा भूखण्डमध्ये तटनिधृतवतीमूर्मिमालां प्रयांतीम् ॥ ६ ॥
दिव्यं कौ नामधेयं श्रुतमथ यमुने दण्डयत्यद्रितुल्यं
पापव्यूहं त्वखण्डं वसतु मम गिरां मण्डले तु क्षणं तत् ।
दण्ड्यांश्चाकार्यदण्ड्यान्सकृदपि वचसा खण्डितं यद्गृहीतं
भ्रातुर्मार्तंडसूनोरटति पुरि दृढस्ते प्रचण्डोऽतिदण्डः ॥ ७ ॥
रज्जुर्वा विषयांधकूपतरणे पापाखुदर्वीकरी
वेण्युष्णिक् च विराजमूर्तिशिरसो मालाऽस्ति वा सुन्दरी ।
धन्यं भाग्यमतः परं भुवि नृणां यत्रादिकृद्वल्लभा
गोलोकेऽप्यतिदुर्लभाऽतिशुभगा भात्यद्वितीया नदी ॥ ८ ॥
गोपीगोकुलगोपकेलिकलिते कालिन्दि कृष्णप्रभे
त्वत्कूले जललोलगोलविचलत्कल्लोलकोलाहलः ।
त्वत्कांतारकुतूहलालिकुलकृज्झंकारकेकाकुलः
कूजत्कोकिलसंकुलो व्रजलतालङ्कारभृत्पातु माम् ॥ ९ ॥
भवंति जिह्वास्तनुरोमतुल्या गिरो यदा भूसिकता इवाशु ।
तदप्यलं यान्ति न ते गुणांतं संतो महांतः किल शेषतुल्याः ॥१०॥

होता है ॥ ५ ॥ हे तटिनि ! तुम लीलावती हो, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। तुम घनीभूत मेघके समान श्याम कान्ति धारण करती हो। श्रीकृष्णके बायें कंधेसे तुम्हारा प्राकट्य हुआ है। सम्पूर्ण जलोंकी राशिरूपा जो विरजा नदीका वेग है, उसको भी अपने बलसे खण्डित करती हुई, ब्रह्माण्डको छेदकर देवनगर, पर्वत, गण्डशैल आदि दुर्गम वस्तुओंका भेदन करके तुम इस भूमिखण्डके मध्यभागमें अपनी तरङ्गमालाओंको स्थापित करके प्रवाहित होती हो ॥ ६ ॥ हे यमुने ! पृथ्वीपर तुम्हारा नाम दिव्य है। वह श्रवणपथमें आकर पर्वताकार पापसमूहको भी दण्डित एवं खण्डित कर देता है। तुम्हारा वह अखण्ड नाम मेरे वाङ्मण्डल—वचनसमूहमें क्षणभर भी स्थित हो जाय। यदि वह एक बार भी वाणीद्वारा गृहीत हो जाय तो समस्त पापोंका खण्डन हो जाता है। उसके स्मरणसे दण्डनीय पापी भी अदण्डनीय हो जाते हैं। तुम्हारे भाई सूर्यपुत्र यमराजके नगरमें तुम्हारा 'प्रचण्डा' यह नाम सुदृढ़ अतिदण्ड बनकर विचरता है ॥ ७ ॥ तुम विषयरूपी अन्धकूपसे पार जानेके लिये रस्सी हो; अथवा पापरूपी चूहोंको निगल जानेवाली काली नागिन हो; अथवा विराट् पुरुषकी मूर्तिकी वेणीको अलंकृत करनेवाला नीले पुष्पोंका गजरा हो या उनके मस्तकपर सुशोभित होनेवाली सुन्दर नीलमणिकी माला हो। जहाँ आदिकर्ता भगवान् श्रीकृष्णकी वल्लभा, गोलोकमें भी अतिदुर्लभा, अति सौभाग्यवती तथा अद्वितीया नदी श्रीयमुना प्रवाहित होती हैं, उस भूतलके मनुष्योंका भाग्य इसी कारणसे धन्य है ॥ ८ ॥ गौओंके समुदाय तथा गोप-गोपियोंकी क्रीडासे कलित कलिन्दनन्दिनी हे यमुने ! हे कृष्णप्रभे ! तुम्हारे तटपर जो जलकी गोलाकार, चपल एवं उत्ताल तरङ्गोंका कोलाहल (कल-कल रव) होता है, वह सदा मेरी रक्षा करे। तुम्हारे दुर्गम कुञ्जोंके प्रति कौतूहल रखनेवाले भ्रमर-समुदायके गुञ्जारव, मयूरोंकी केका तथा कूजते हुए कोकिलोंकी काकलीका शब्द भी उस कोलाहलमें मिला रहता है तथा वह व्रज-लताओंके अलंकारको धारण करनेवाला है ॥ ९ ॥ शरीरमें जितने रोम हैं, उतनी ही जिह्वाएँ हो जायँ, धरतीपर जितने सिकताकण हैं, उतनी ही वाग्देवियाँ आ जायँ और उनके साथ संत-महात्मा भी

कलिन्दगिरिनन्दिनीस्तव उषस्ययं वापरः श्रुतश्च यदि पाठितो भुवि तनोति सन्मङ्गलम् ।
जनोऽपि यदि धारयेत्किल पठेच यो नित्यशः स याति परमं पदं निजनिकुञ्जलीलावृतम् ॥११॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीसौभरिमांधातृसंवादे श्रीयमुनास्तवो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

(यमुनाजीके जप और पूजनके लिये पटल और पद्धतिका वर्णन)

मांधातोवाच

कृष्णायाः पटलं पुण्यं कामदं पद्धतिं तथा । वद मां मुनिशार्दूल त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः ॥ १ ॥

सौभरिरुवाच

पटलं पद्धतिं वक्ष्ये यमुनाया महामते । कृत्वा श्रुत्वाऽथ जप्त्वा वा जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ २ ॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मायाबीजं ततः परम् । रमाबीजं ततः कृत्वा कामबीजं विधानतः ॥ ३ ॥
कालिन्दीति चतुर्थ्यंते देवीपदमतः परम् । नमः पश्चात्संविधार्य जपेन्मंत्रमिमं नरः ॥ ४ ॥
जप्त्वैकादश लक्षाणि मंत्रसिद्धिर्भवेद्भुवि । जनैः प्रार्थ्याश्च ये कामाः सर्वे प्राप्याःस्वतश्च ते॥ ५ ॥
विधाय षोडशदलं पद्मं सिंहासने शुभे । कर्णिकायां च कालिंदीं न्यसेच्छ्रीकृष्णसंयुताम्॥ ६ ॥
जाह्नवीं विरजां कृष्णां चन्द्रभागां सरस्वतीम् । गोमतीं कौशिकीं वेणीं सिंधुं गोदावरीं तथा ॥ ७ ॥
वेदस्मृतिं वेत्रवतीं शतद्रुं सरयूं तथा । पूजयेन्मानवश्रेष्ठ ऋषिकुल्यां ककुद्मिनीम् ॥ ८ ॥
पृथक्पृथक् तद्दलेषु नामोच्चार्य विधानतः । वृन्दावनं गोवर्द्धनं वृन्दां च तुलसीं तथा ॥
चतुर्दिक्षु विधायाशु पूजयेन्नामभिः पृथक् ॥ ९ ॥

शेषनागके समान सहस्रों जिह्वाओंसे युक्त होकर गुणगान करने लग जायँ, तथापि तुम्हारे गुणोंका अन्त कभी नहीं पा सकते ।। १० ।। कलिन्दगिरिनन्दिनी यमुनाका यह उत्तम स्तोत्र यदि उषाकालमें ब्राह्मणके मुखसे सुना जाय अथवा स्वयं पढ़ा जाय तो भूतलपर परम मंगलका विस्तार करता है । जो कोई भी मनुष्य यदि नित्यशः इसका धारण (चिन्तन) करे तो वह भगवान्‌की निज निकुञ्ज-लीलाके द्वारा वरण किये गये परमपदको प्राप्त होता है ॥११॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

मांधाता बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! यमुनाजीके कामपूरक पवित्र पटल तथा पद्धतिका जैसा स्वरूप है, वह मुझे बताइये; क्योंकि आप साक्षात् ज्ञानकी निधि हैं ॥ १ ॥ सौभरिने कहा—हे महामते ! अब मैं यमुनाजीके पटल तथा पद्धतिका भी वर्णन करता हूँ, जिसका अनुष्ठान, श्रवण अथवा जप करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥ पहले प्रणव (ॐ) का उच्चारण करके फिर मायाबीज (ह्रीं) का उच्चारण करे। तत्पश्चात् लक्ष्मीबीज (श्रीं) को रखकर उसके बाद कामबीज (क्लीं) का विधिवत् प्रयोग करे ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर 'कालिन्दी' शब्दका चतुर्थ्यन्त रूप (कालिन्द्यै) रखे। फिर 'देवी' शब्दके चतुर्थ्यन्तरूप (देव्यै) का प्रयोग करके अन्तमें 'नमः' पद जोड़ दे। (इस प्रकार 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिन्द्यै देव्यै नमः।' यह मन्त्र बनेगा।) इस मन्त्रका मनुष्य विधिवत् जप करे ॥ ४ ॥ इस ग्यारह अक्षरवाले मन्त्रका ग्यारह लाख जप करनेसे इस पृथ्वीपर सिद्धि प्राप्त हो सकती है। मनुष्योंद्वारा जिन-जिन काम्य-पदार्थोंके लिये प्रार्थना की जाती है, वे सब स्वतः सुलभ हो जाते हैं ॥ ५ ॥ सुन्दर सिंहासनपर षोडश दल अङ्कित करके उसकी कर्णिकामें श्रीकृष्णसहित कालिन्दीका न्यास (स्थापना) करे ॥ ६ ॥ कमलके सोलह दलोंमें अलग-अलग विधिपूर्वक नाम ले-लेकर मानवश्रेष्ठ साधक क्रमशः गङ्गा, विरजा, कृष्णा, चन्द्रभागा, सरस्वती, गोमती, कौशिकी, वेणी, सिंधु, गोदावरी, वेदस्मृति, वेत्रवती, शतद्रू, सरयू, ऋषिकुल्या तथा ककुद्मिनीका पूजन करे ॥ ७ ॥ ८ ॥ पूर्वादि

ॐनमो भगवत्यै कलिन्दनंदिन्यै सूर्यकन्यकायै यमभगिन्यै श्रीकृष्णप्रियायै यूथीभूतायै स्वाहा ।
अनेन मंत्रेणावाहनादिषोडशोपचारान्समाहित उपाहरेत् ॥१०॥
इत्येवं पटलं विद्धि तुभ्यं वक्ष्यामि पद्धतिम् । यावत्संपूर्णतां याति पुरश्चरणमेव हि ॥११॥
तावद्भवेद्ब्रह्मचारी जपेन्मौनव्रती द्विजः । यवभोजी भूमिशायी पत्रभुग्जितमानसः ॥१२॥
कामं क्रोधं तथा लोभं मोहं द्वेषं विसृज्य सः । भक्त्या परमया राजन् वर्तमानस्तु देशकः ॥१३॥
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय ध्यात्वा देवीं कलिंदजाम् । अरुणोदयवेलायां नद्यां स्नानं समाचरेत् ॥१४॥
मध्याह्ने चापि संध्यायां संध्यावन्दनतत्परः । समाप्ते नियमे राजन् कालिन्दीतीरमास्थितः ॥१५॥
दशलक्षं ब्राह्मणानां सपुत्राणां महात्मनाम् । पूजयित्वा गन्धपुष्पैर्दत्त्वा तेभ्यः सुभोजनम् ॥१६॥
वस्त्रभूषणसौवर्णपात्राणि प्रस्फुरंति च । दक्षिणाश्च शुभा दद्यात्ततः सिद्धिर्भवेत्खलु ॥१७॥
इति ते पद्धतिः प्रोक्ता मया राजन्महामते । कुरु त्वं नियमं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१८॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे सौभरिमांधातृसंवादे पटलपद्धतिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

(यमुना-सहस्रनाम)

मान्धातोवाच

नाम्नां सहस्रं कृष्णायाः सर्वसिद्धिकरं परम् । वद मां मुनिशार्दूल त्वं सर्वज्ञो निरामयः ॥ १ ॥

सौभरिरुवाच

नाम्नां सहस्रं कालिंद्या मान्धातस्ते वदाम्यहम् । सर्वसिद्धिकरं दिव्यं श्रीकृष्णवशकारकम् ॥ २ ॥

चार दिशाओंमें क्रमशः वृन्दावन, गोवर्धन, वृन्दा तथा तुलसीका उनके नामोच्चारणपूर्वक क्रमशः पूजन करे ॥ ९ ॥ तत्पश्चात् 'ॐ नमो भगवत्यै कलिन्दनन्दिन्यै सूर्यकन्यकायै यमभगिन्यै श्रीकृष्णप्रियायै यूथीभूतायै स्वाहा।' इस मन्त्रसे आवाहन आदि सोलह उपचारोंको एकाग्रचित्त होकर अर्पित करे ॥ १० ॥ इस प्रकार यमुनाका पटल जानो ; अब पद्धति बताऊँगा । जबतक पुरश्चरण पूरा न हो जाय, तबतक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुये मौनावलम्बनपूर्वक द्विजको जप करना चाहिये । पुरश्चरणकालमें जौका आटा खाय, पृथ्वीपर शयन करे, पत्तलपर भोजन करे और मनको वशमें रक्खे ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन् ! आचार्यको चाहिये कि काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा द्वेषको त्यागकर परम भक्तिभावसे जपमें प्रवृत्त रहे ॥ १३ ॥ ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर कालिन्दी देवीका ध्यान करे और अरुणोदयकी वेलामें नदीमें स्नान करे ॥ १४ ॥ मध्याह्नकालमें और दोनों संध्याओंके समय संध्या-वन्दन अवश्य किया करे । हे राजन् ! जब अनुष्टान समाप्त हो, तब यमुनाके तटपर जाकर पुत्रोंसहित दस लाख महात्मा ब्राह्मणोंका गन्ध-पुष्पसे पूजन करके उन्हें उत्तम भोजन दे ॥ १५ ॥ १६ ॥ तदनन्तर वस्त्र, आभूषण और सुवर्णमय चमकीले पात्र तथा उत्तम दक्षिणाएँ दे । इससे निश्चय ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ हे महामते नरेश ! इस प्रकार मैंने तुमसे यमुनाजीके जप और पूजनकी पद्धति बतायी है । तुम सारा नियम पूर्ण करो । बताओ; अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

मांधाता बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! यमुनाजीका सहस्रनाम समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला उत्तम साधन है, आप मुझे उसका उपदेश कीजिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ और निरामय (रोग-शोकसे रहित) हैं ॥१॥ सौभरिने कहा—हे मांधाता नरेश ! मैं तुमसे 'कालिन्दी-सहस्रनाम' का वर्णन करता हूँ । वह समस्त सिद्धियों

ॐअस्य श्रीकालिन्दीसहस्रनामस्तोत्रमंत्रस्य सौभरिऋषिः श्रीयमुना देवताः अनुष्टुप् छंदः मायाबीजमिति कीलकम् रमाबीजमिति शक्तिः श्रीकलिंदनन्दिनीप्रसादसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

अथ ध्यानम् ।

श्यामामंभोजनेत्रां सघनघनरुचिं रत्नमञ्जीरकूज-
त्काञ्चीकेयूरयुक्तां कनकमणिमयेबिभ्रतीं कुण्डले द्वे ।
भ्राजच्छ्रीनीलवस्त्रस्फुरदमलचलद्धारभारां मनोज्ञां
ध्यायेन्मार्तंडपुत्रीं तनुकिरणचयोद्दीप्तदीपाभिरामाम् ॥ ३ ॥

इति ध्यानम् ।

ॐकालिन्दी यमुना कृष्णा कृष्णरूपा सनातनी । कृष्णवामांससंभूता परमानन्दरूपिणी ॥ ४ ॥
गोलोकवासिनी श्यामा वृन्दावनविनोदिनी । राधासखी रासलीला रासमंडलमंडनी ॥ ५ ॥
निकुञ्जमाधवीवल्ली रङ्गवल्ली मनोहरा । श्रीरासमण्डलीभूता यूथीभूता हरिप्रिया ॥ ६ ॥
गोलोकतटिनी दिव्या निकुञ्जतलवासिनी । दीर्घोर्मिवेगगंभीरा पुष्पपल्लववाहिनी ॥ ७ ॥
घनश्यामा मेघमाला बलाका पद्ममालिनी । परिपूर्णतमा पूर्णा पूर्णब्रह्मप्रिया परा ॥ ८ ॥
महावेगवती साक्षान्निकुञ्जद्वारनिर्गता । महानदी मंदगतिर्विरजा वेगभेदिनी ॥ ९ ॥

की प्राप्ति करानेवाला, दिव्य तथा श्रीकृष्णको वशीभूत करनेवाला है ॥ २ ॥ विनियोग—ॐ अस्य श्रीकालिन्दीसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य सौभरिर्ऋषिः, श्रीयमुना देवता, अनुष्टुप् छन्दः, मायाबीजमिति कीलकम्, रमाबीजमिति शक्तिः, श्रीकलिन्दनन्दिनीप्रसादसिद्धयर्थे जपे विनियोगः। यह वाक्य पढ़कर सहस्रनाम-पाठके लिये विनियोगका जल छोड़े। जो श्यामा (श्यामवर्णा एवं षोडश वर्षकी अवस्थावाली) हैं, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमल-दलकी शोभाको छीने लेते हैं, घनीभूत मेघके समान जिनकी नील कान्ति है, जो रत्नों द्वारा निर्मित बजते हुए नूपुर और झनकारती हुई करधनी एवं केयूर आदि आभूषणोंसे युक्त हैं तथा कानोंमें सुवर्ण एवं मणिनिर्मित दो कुण्डल धारण करती हैं, दीप्तिमती नीली साड़ीपर चमकते हुए गजमौक्तिकके चञ्चल हारका भार वहन करनेसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं, शरीरसे छिटकती हुई किरणोंकी राशिसे उद्दीप्त होनेके कारण जिनकी प्रज्वलित दीपमालाके समान शोभा हो रही है, उन सूर्यनन्दिनी यमुनाजीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ३ ॥ १. ॐ कालिन्दी=सच्चिदानन्दस्वरूपा कलिन्दगिरिनन्दिनी, २. यमुना=यमकी बहिन, ३. कृष्णा=कृष्णवर्णा, ४. कृष्णरूपा=कृष्णस्वरूपा अथवा कृष्ण रूपवाली, ५. सनातनी=नित्या, ६. कृष्णवामांससम्भूता=श्रीकृष्णके बायें कंधेसे प्रकट हुई, ७. परमानन्दरूपिणी=परमानन्दमयी ॥ ४ ॥ ८. गोलोकवासिनी=गोलोकधाममें निवास करनेवाली, ९. श्यामा=श्यामवर्णा अथवा षोडश वर्षकी अवस्थावाली, १०. वृन्दावनविनोदिनी=वृन्दावनमें मनोरञ्जन करनेवाली, ११. राधासखी=श्रीराधाकी सहचरी, १२. रासलीला=रासमण्डलमें लीलापरायणा अथवा रासलीलास्वरूपा, १३. रासमण्डलमण्डनी=रासमण्डलको अलंकृत करनेवाली ॥ ५ ॥ १४. निकुञ्जवासिनी=निकुञ्जमें निवास करनेवाली, १५. वल्ली=लतास्वरूपा, १६. रङ्गवल्ली=रासरङ्गस्थलोमें वल्लीके समान शोभा पानेवाली अथवा रङ्गवल्ली नामकी राधा-सखी गोपीसे अभिन्नस्वरूपा, १७. मनोहरा=मनको हर लेनेवाली, १८. श्रीः = लक्ष्मीस्वरूपा, १९. रासमण्डलीभूता=रासमण्डलस्वरूपा अथवा मण्डलाकार होकर रासमण्डलको अलंकृत करनेवाली, २० यूथीभूता=अपनी सहचरियोंके यूथसे संयुक्त, २१. हरिप्रिया=श्रीकृष्णकी प्यारी ॥ ६ ॥ २२. गोलोकतटिनी = गोलोकधामकी नदी, २३. दिव्या=दिव्यस्वरूपा, २४. निकुञ्जतलवासिनी=निकुञ्जके भीतर निवास करनेवाली, २५. दीर्घा=बहुत लंबे परिमाणकी, २६. ऊर्मिवेगगम्भीरा=तरंगके वेगसे युक्त एवं गहरी, २७. पुष्पपल्लववाहिनी=फूलों और पल्लवोंको बहानेवाली ॥ ७ ॥ २८. घनश्यामा=मेघके समान श्याम कान्तिवाली, २९. मेघमाला=घनमालास्वरूपा, ३०. बलाका=बकपंक्तिस्वरूपा, ३१. पद्ममालिनी=कमलोंकी मालासे अलंकृत, ३२. परिपूर्णतमा=परिपूर्णतम भगवत्स्वरूपा, ३३. पूर्णा=पूर्णस्वरूपा, ३४ पूर्णब्रह्मप्रिया=पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ३५. परा=परा शक्तिस्वरूपा ॥ ८ ॥ ३६.

अनेकब्रह्मांडगता ब्रह्मद्रवसमाकुला । गङ्गामिश्रा निर्जलाभा निर्मला सरितां वरा ॥१०॥
रत्नबद्धोभयतटी हंसपद्मादिसंकुला । नदी निर्मलपानीया सर्वब्रह्मांडपावनी ॥११॥
वैकुण्ठपरिखीभूता परिखा पापहारिणी । ब्रह्मलोकगता ब्राह्मी स्वर्गा स्वर्गनिवासिनी ॥१२॥
उल्लसन्ती प्रोत्पतंती मेरुमाला महोज्ज्वला । श्रीगङ्गांभःशिखरिणी गंडशैलविभेदिनी ॥१३॥
देशान्पुनन्ती गच्छन्ती वहंती भूमिमध्यगा । मार्तण्डतनुजा पुण्या कलिन्दगिरिनन्दिनी ॥१४॥
यमस्वसा मन्दहासा सुद्विजा रचिताम्बरा । नीलांबरा पद्ममुखी चरंती चारुदर्शना ॥१५॥
रंभोरूः पद्मनयना माधवी प्रमदोत्तमा । तपश्चरंती सुश्रोणी कूजन्नूपुरमेखला ॥१६॥
जलस्थिता श्यामलाङ्गी खाण्डवाभा विहारिणी । गांडीविभाषिणी वन्या श्रीकृष्णं वरमिच्छती ॥१७॥
द्वारकागमना राज्ञी पट्टराज्ञी परङ्गता । महाराज्ञी रत्नभूषा गोमतीतीरचारिणी ॥१८॥
स्वकीया च सुखा स्वार्था स्वभक्तकार्यसाधिनी । नवलाङ्गाऽबला मुग्धा वराङ्गा वामलोचना ॥१९॥

महावेगवती=बड़े वेगवाली, ३७. साक्षान्निकुञ्जद्वारनिर्गता = साक्षात् निकुञ्जके द्वारसे निकली हुई, ३८. महानदी = विशाल सरिता, ३९. मन्दगतिः=मन्दगतिसे बहनेवाली, ४०. विरजावेगभेदिनी = गोलोकधामकी विरजा नदीके वेगका भेदन करनेवाली ॥ ९ ॥ ४१. अनेकब्रह्मांडगता=अनेकानेक ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त, ४२. ब्रह्मद्रवसमाकुला=ब्रह्मद्रवस्वरूपा गङ्गाजीसे मिली हुई, ४३. गङ्गामिश्रा=गङ्गाके जलसे मिश्रित जलवाली, ४४. निर्मलाभा=निर्मल आभावाली, ४५. निर्मला=सब प्रकारके मलोंसे रहित, ४६. सरितां वरा=नदियोंमें श्रेष्ठ ॥ १० ॥ ४७. रत्नबद्धोभयतटी=दोनों किनारोंकी तटभूमि रत्नसे आबद्ध, ४८ हंसपद्मादिसंकुला=हंसादि पक्षियों और कमल आदि पुष्पोंसे व्याप्त, ४९. नदी=अव्यक्त शब्द, कलकल नाद करनेवाली, ५०. निर्मलपानीया=स्वच्छ जलवाली, ५१. सर्वब्रह्माण्डपावनी=समस्त ब्रह्माडोंको पवित्र करनेवाली ॥ ११ ॥ ५२. वैकुण्ठपरिखीभूता=वैकुण्ठधामको चारों ओरसे घेरकर परिखा (खाईं) के समान सुशोभित, ५३. परिखा=खाईंस्वरूपा, ५४. पापहारिणी - पापोंका नाश करनेवाली, ५५. ब्रह्मलोकगता=ब्रह्मलोकमें पहुँची हुई, ५६. ब्राह्मी=ब्रह्मशक्तिस्वरूपा, ५७. स्वर्गा=स्वर्गलोकस्वरूपा, ५८. स्वर्गनिवासिनी=स्वर्गलोकमें निवास करनेवाली ॥ १२ ॥ ५९ उल्लसन्ती=तरङ्गोंद्वारा ऊपरकी ओर उठनेवाली, ६०. प्रोत्पतन्ती=जोरसे उछलनेवाली, ६१. मेरुमाला = मेरुपर्वतको मालाकी भाँति अलंकृत करनेवाली, ६२. महोज्ज्वला=अत्यन्त प्रकाशमाना, ६३. श्रीगङ्गाम्भःशिखरणी=गङ्गाजीके जलको शिखरका रूप देनेवाली, ६४. गण्डशैलविभेदिनी=गण्डशैलोंका भेदन करनेवाली ॥ १३ ॥ ६५. देशान् पुनन्ती=देशोंको पवित्र करनेवाली, ६६. गच्छन्ती=गतिशीला, ६७. वहन्ती = प्रवहमाना, ६८. भूमिमध्यगा=धरतीके भीतर प्रवेश करनेवाली, ६९. मार्तण्डतनुजा=सूर्यपुत्री, ७०. पुण्या=पुण्यप्रदा, ७१. कलिन्दगिरिनन्दिनी=कलिन्द पर्वतकी पुत्री ॥ १४ ॥ ७२ यमस्वसा=यमराजकी बहन, ७३. मन्दहासा = मन्द-मन्द मुसकरानेवाली, ७४. सुद्विजा=सुन्दर दाँतोंवाली, ७५. रचिताम्बरा=धरतीके लिये आच्छादनवस्त्रके रूपमें निर्मित, ७६. नीलाम्बरा=नील वस्त्र धारण करनेवाली, ७७. पद्ममुखी=कमलवदना, ७८. चरन्ती=विचरनेवाली, ७९. चारुदर्शना=मनोहर दृष्टिवाली अथवा देखनेमें मनोहर ॥ १५ ॥ ८०. रम्भोरूः=कदलीके खंभे-जैसे ऊरुद्वय धारण करनेवाली, ८१. पद्मनयना=कमललोचना, ८२. माधवी=माधवप्रिया, ८३. प्रमदा=यौवनशालिनी, ८४. उत्तमा=उत्तम, ८५. तपश्चरन्ती=श्रीकृष्ण-प्राप्तिके लिये तपस्या करनेवाली, ८६. सुश्रोणी=सुन्दर नितम्बको धारण करनेवाली, ८७. कूजन्नूपुरमेखला=बजते हुए नूपुरों और करधनीसे सुशोभित ॥१६॥ ८८. जलस्थिता=पानीमें निवास करनेवाली, ८९. श्यामलाङ्गी=श्यामल अङ्गवाली, ९०. खाण्डवाभा=खाण्डवनकी शोभावाली, ९१. विहारिणी=विहारशीला, ९२. गाण्डीविभाषिणी=अपनी तपस्याका उद्देश्य बतानेके लियेगाण्डीवधारी अर्जुनसे वार्तालाप करनेवाली, ९३. वन्या=बढ़े हुए प्रवाहवाली, ९४. श्रीकृष्णं वरमिच्छती=श्रीकृष्णको पति बनानेकी इच्छावाली ॥ १७ ॥ ९५. द्वारकागमना=द्वारकामें आगमन करनेवाली, ९६. राज्ञी=रानी, ९७. पट्टराज्ञी=पटरानी, ९८. परंगता=परमात्माको प्राप्त, ९९. महाराज्ञी=महारानी, १००. रत्नभूषा=रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित, १०१. गोमती=गौओंके समुदायसे युक्त अथवा गोमती नदीस्वरूपा, १०२. तीरचारिणी=तटपर विचरनेवाली ॥ १८ ॥ १०३. स्वकीया=श्रीकृष्णकी अपनी विवाहिता पत्नी, १०४.

अज्ञातयौवना दीना प्रभाकान्तिर्द्युतिश्छविः । सुशोभा परमा कीर्तिः कुशलाऽज्ञातयौवना ॥२०॥
नवोढा मध्यगा मध्या प्रौढिः प्रौढा प्रगल्भका । धीराऽधीरा धैर्यधरा ज्येष्ठा श्रेष्ठा कुलांगना ॥२१॥
क्षणप्रभा चञ्चलार्चा विद्युत्सौदामिनी तडित् । स्वाधीनपतिका लक्ष्मीः पुष्टा स्वाधीनभर्तृका ॥२२॥
कलहांतरिता भीरुरिच्छाप्रोत्कण्ठिताकुला । कशिपुस्था दिव्यशय्या गोविंदहृतमानसा ॥२३॥
खंडिताखण्डशोभाढ्या विप्रलब्धाभिसारिका । विरहार्ता विरहिणी नारी प्रोषितभर्तृका ॥२४॥
मानिनी मानदा प्राज्ञा मन्दारवनवासिनी । झङ्कारिणी झणत्कारी रणन्मञ्जीरनूपुरा ॥२५॥
मेखलाऽमेखला काञ्ची काञ्चनी काञ्चनामयी । कंचुकी कंचुकमणिः श्रीकण्ठाढ्या महामणिः ॥२६॥
श्रीहारिणी पद्महारा मुक्ता मुक्ताफलार्चिता । रत्नकंकणकेयूरा स्फुरदङ्गुलिभूषणा ॥२७॥

सुखा=सुखस्वरूपा, १०५. स्वार्था=अपने अभीष्ट अर्थको प्राप्त, १०६. स्वभक्तकार्यसाधिनी=अपने भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेवाली, १०७. नवलाङ्गा=नूतन अङ्गोंवाली, १०८, अबला=स्त्रीरूपा, १०९. मुग्धा=भोली-भाली अथवा मुग्धा नायिका, ११०. वराङ्गा=सुन्दर अङ्गोंवाली, १११. वामलोचना=बाँके नयनोंवाली ॥ १९ ॥ ११२. अजातयौवना=अप्राप्त-यौवना, ११३. अदीना=दीनतारहित एवं उदारस्वरूपा, ११४. प्रभा=प्रभास्वरूपा, ११५. कान्तिः=कान्तिस्वरूपा, ११६. द्युतिः=द्युतिस्वरूपा, ११७. छविः=छविस्वरूपा, ११८. सुशोभा=सुन्दर शोभावाली, ११९. परमा=उत्कृष्टस्वरूपा, १२०. कीर्तिः=कीर्तिस्वरूपा, १२१. कुशला=चतुरा, १२२. अज्ञात-यौवना=अपने योवनके आरम्भको न जाननेवाली ॥ २० ॥ १२३. नवोढा = नवविवाहिता नायिका, १२४. मध्यगा=मुग्धा और प्रगल्भाके बीचकी अवस्थावाली, १२५. मध्या=मध्या नायिका, १२६. प्रौढिः = प्रौढतासे युक्त, १२७. प्रौढा=प्रौढस्वरूपा, १२८. प्रगल्भका=प्रगल्भा नायिका, १२९. धीरा=धीरस्वभावा, १३०. अधीरा=भगवद्दर्शनके लिये अधीर रहनेवाली, १३१. धैर्यधरा = धैर्यधारिणी, १३२. ज्येष्ठा = ज्येष्ठ अवस्था-वाली, १३३. श्रेष्ठा = गुणोंसे श्रेष्ठ, १३४. कुलाङ्गना = कुलवधू ॥ २१ ॥ १३५. क्षणप्रभा = विद्युत्के समान कान्तिमती, १३६. चञ्चला=वेगशालिनी, १३७. अर्चा=पूजनीया, १३८. विद्युत्=विद्योतमाना, १३९. सौदा-मनी=विद्युत्स्वरूपा, १४०. तडित् = घनश्यामके अङ्कमें विद्युल्लेखा-सी शोभमाना, १४१. स्वाधीनपतिका = स्नेह और सद्व्यवहारसे पतिको वशमें रखनेवाली, १४२. लक्ष्मी = लक्ष्मीस्वरूपा, १४३. पुष्टा=पुष्ट अङ्गोंवाली अथवा अनुग्रहमयी, १४४. स्वाधीनभर्तृका=स्वाधीनपतिका ॥ २२ ॥ १४५. कलहान्तरिता=प्रेमकलहके कारण कभी-कभी प्रियतमके वियोगका कष्ट सहन करनेवाली नायिका, १४६. भीरुः = भीरु स्वभाववाली, १४७. इच्छा = प्रियतमकी कामनाका विषय अथवा अभिलाषारूपिणी, १४८. प्रोत्कण्ठिता = प्रियके दर्शन या मिलनके लिये उत्सुक रहनेवाली, १४९. आकुला = प्रेमपरिपूर्णा अथवा प्रियतमकी सेवाके कार्यमें व्यस्त, १५०. कशिपुस्था = शय्यापर विराजित रहनेवाली, १५१. दिव्यशय्या = श्यामसुन्दरके लिये दिव्य शय्या प्रस्तुत करनेवाली, १५२. गोविन्दहृतमानसा = श्रीकृष्णका चित्त चुरा लेनेवाली प्रियतमा, ॥ २३ ॥ १५३. खण्डिता = खण्डिता-नायिकास्वरूपा, १५४. अखण्डशोभाढ्या = अविकल शोभासे सम्पन्न, १५५. विप्र-लब्धा=विप्रलब्धा-नायिकास्वरूपा, १५६. अभिसारिका=प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये संकेत-स्थानपर जानेवाली, १५७. विरहार्ता=प्रियतमके विरहकी अनुभूतिसे पीड़ित, १५८. विरहिणी=वियोगिनी, १५९. नारी=नरावतार श्रीकृष्णकी भार्या, १६० प्रोषितभर्तृका=जिसका पति परदेश गया हो, ऐसी नायिका-स्वरूपा ॥ २४॥ १६१. मानिनी=मानवती, १६२. मानदा=मान देनेवाली, १६३. प्राज्ञा=विदुषी, १६४. मन्दारवनवासिनी=कल्पवृक्षके काननमें निवास करनेवाली, १६५. झंकारिणी=चलते-फिरते या नृत्य करते समय आभूषणोंकी झंकार फैलानेवाली, १६६. झणत्कारी=झणत्कार या सिञ्जन-ध्वनि करनेवाली, १६७. रणन्मञ्जीरनूपुरा=बजते हुए नूपुर और मञ्जीर धारण करनेवाली ॥ २५ ॥ १६८. मेखला=वृन्दावनकी नील-मणिमयी करधनीके समान सुशोभित, १६९. अमेखला=साधारण अवस्थामें मेखलासे रहित, १७०. काञ्ची='काञ्ची' नामक आभूषणस्वरूपा, १७१. अकाञ्चनी=काञ्चनरहित, १७२. काञ्चनामयी=सुवर्णस्वरूपा, १७३. कंचुकी=कंचुकधारिणी, १७४. कंचुकमणिः=कंचुकमणिस्वरूपा, १७५. श्रीकण्ठा=शोभायुक्त कण्ठवाली, १७६. आढ्या = (श्रीकृष्णरूप) सम्पत्तिशालिनी, १७७. महामणिः=महामणिस्वरूपा अथवा बहुमूल्य मणि धारण

दर्पणा दर्पणीभूता दुष्टदर्पविनाशिनी । कंबुग्रीवा कंबुधरा ग्रैवेयकविराजिता ॥२८॥
तार्टकिनी दंतधरा हेमकुण्डलमण्डिता । शिखाभूषा भालपुष्पा नासामौक्तिकशोभिता ॥२९॥
मणिभूमिगता देवी रैवताद्रिविहारिणी । वृन्दावनगता वृन्दा वृन्दारण्यनिवासिनी ॥३०॥
वृन्दावनलता माध्वी वृन्दारण्यविभूषणा । सौंदर्यलहरी लक्ष्मीर्मथुरातीर्थवासिनी ॥३१॥
विश्रांतवासिनी काम्या रम्या गोकुलवासिनी । रमणस्थलशोभाढ्या महावनमहानदी ॥३२॥
प्रणता प्रोन्नता पुष्टा भारती भरतार्चिता । तीर्थराजगतिर्गोत्रा गंगासागरसंगमा ॥३३॥
सप्ताब्धिभेदिनी लोला सप्तद्वीपगता बलात् । लुठन्ती शैलान् भिद्यंती स्फुरंती वेगवत्तरा ॥३४॥
काञ्चनी काञ्चनी भूमिः काञ्चनीभूमिभाविता । लोकदृष्टिर्लोकलीला लोकालोकाचलार्चिता ॥३५॥
शैलोद्गता स्वर्गगता स्वर्गार्चा स्वर्गपूजिता । वृन्दावनी वनाध्यक्षा रक्षा कक्षा तटीपटी ॥३६॥

करनेवाली ॥२६॥ १७८. श्रीहारिणी=श्रीहारधारिणी, १७९. पद्महारा=कमलोंकी मालासे अलंकृत, १८०. मुक्ता=नित्य-मुक्त, १८१. मुक्ताफलार्चिता=मुक्ताफलोंसे पूजित, १८२. रत्नकङ्कणकेयूरा=रत्ननिर्मित कंगन और केयूर (भुजबंद) धारण करनेवाली, १८३. स्फुरदङ्गुलिभूषणा=जिनकी अङ्गुलियोंके भूषण उद्भासित हो रहे हैं ॥ २७ ॥ १८४. दर्पणा=दर्पणस्वरूपा, १८५. दर्पणीभूता=अपने जलको निर्मलताके कारण दर्पणका काम देनेवाली, १८६. दुष्टदर्पविनाशिनी=दुष्टोंके घमंडको चूर करनेवाली, १८७. कम्बुग्रीवा=शङ्खके समान सुन्दर कण्ठवाली, १८८. कम्बुधरा=शङ्खनिर्मित आभूषण धारण करनेवाली, १८९. ग्रैवेयकविराजिता=कण्ठभूषणसे सुशोभित ॥ २८ ॥ १९०. तार्टङ्किनी='ताटङ्क (तरकी)' नामक आभूषणविशेषको धारण करनेवाली, १९१. दन्तधरा=दन्तधारिणी, १९२. हेमकुण्डलमण्डिता=काञ्चन-निर्मित कुण्डलोंसे अलंकृत, १९३. शिखाभूषा=अपनी चोटीको विभूषित करनेवाली, १९४. भालपुष्पा=ललाट-देशमें पुष्पमय शृङ्गार धारण करनेवाली, १९५. नासामौक्तिकशोभिता=नाकमें मोतीकी बुलाकसे शोभित, ॥ २९ ॥ १९६. मणिभूमिगता=मणिमयी भूमिपर विचरनेवाली, १९७. देवी=दिव्यस्वरूपा, १९८. रैवताद्रिविहारिणी = श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें रैवतक पर्वतपर विहार करनेवाली, १९९. वृन्दावनगता=वृन्दावनमें विद्यमान, २००. वृन्दा=वृन्दावनकी अधिष्ठातृदेवी-स्वरूपा, २०१. वृन्दारण्यनिवासिनी=वृन्दावनमें निवास करनेवाली, ॥ ३० ॥ २०२. वृन्दावनलता=वृन्दावनकी लताओंके साथ तादात्म्यको प्राप्त हुई, २०३. माध्वी=मकरन्दस्वरूपा, २०४. वृन्दारण्यविभूषणा=वृन्दावनको विभूषित करनेवाली, २०५. सौन्दर्यलहरी लक्ष्मीः=सुन्दरताकी तरङ्गोंसे युक्त लक्ष्मीस्वरूपा, २०६. मथुरातीर्थवासिनी=मथुरापुरीरूप तीर्थमें निवास करनेवाली, ॥ ३१ ॥ २०७. विश्रान्तवासिनी='विश्रान्त' तीर्थ (विश्रामघाट) में वास करनेवाली, २०८. काम्या=कमनीया, २०९. रम्या=रमणीया, २१०. गोकुलवासिनी=गोकुलमें निवास करनेवाली, २११. रमणस्थलशोभाढ्या=रमणस्थलीकी शोभा बढ़ानेवाली, २१२. महावनमहानदी='महावन' नामक वनमें प्रवाहित होनेवाली महती नदी, ॥ ३२ ॥ २१३. प्रणता=भक्तजनोंद्वारा वन्दिता, २१४. प्रोन्नता=अत्यन्त उत्कृष्ट गोलोकधाममें स्थित, अथवा ऊँची लहरोंके कारण उन्नत, २१५. पुष्टा=प्रेमानुग्रहसे परिपुष्ट, २१६. भारती=भारतवर्षकी नदी, २१७. भरतार्चिता=भरतके द्वारा पूजित, २१८. तीर्थराजगतिः=तीर्थराज प्रयागकी आश्रयभूता, २१९. गोत्रा=गौओंका त्राण करनेवाली अथवा गिरिस्वरूपा, २२०. गङ्गासागरसंगमा=गङ्गा तथा सागरसे संगत, ॥ ३३ ॥ २२१. सप्ताब्धिभेदिनी=सात समुद्रोंका भेदन करनेवाली, २२२. लोला=लोल लहरोंवाली, २२३. बलात्सप्तद्वीपगता=बलपूर्वक सातों द्वीपोंमें जानेवाली, २२४. लुठन्ती=धरतीपर लोटनेवाली, २२५. शैलान्भिद्यन्ती=पर्वतोंका भेदन करनेवाली, २२६. स्फुरन्ती=स्फुरणशीला अथवा अपनी दिव्य प्रभा बिखेरनेवाली, २२७. वेगवत्तरा=अतिशय वेगशालिनी, ॥ ३४ ॥ २२८. काञ्चनी=स्वर्णमयी, २२९. काञ्चनीभूमिः=गोलोककी स्वर्णमयी भूमिपर प्रवाहित होनेवाली, २३०. काञ्चनीभूमिभाविता=स्वर्णमयी भूमिपर प्रकट, २३१. लोकदृष्टिः=जगत्को दिव्यदृष्टि प्रदान करनेवाली, २३२. लोकलीला=लोकमें लीला करनेवाली, २३३. लोकालोकाचलार्चिता=लोकालोकपर्वतपर पूजित होनेवाली, ॥ ३५ ॥ २३४. शैलोद्गता=कलिन्दपर्वतसे निकली हुई, २३५. स्वर्गगता=मन्दाकिनीरूपसे स्वर्गमें गयी हुई, २३६. स्वर्गार्चा=स्वर्गमें अर्चित होनेवाली, २३७. स्वर्गपूजिता=स्वर्गलोकमें पूजित, २३८. वृन्दावनी=वृन्दावनकी अधिष्ठातृस्वरूपा देवी, २३९. वनाध्यक्षा=

असिकुण्डगता कच्छा स्वच्छन्दोच्छलितादिजा । कुहरस्था रथप्रस्था प्रस्था शांततराऽऽतुरा ॥३७॥
अंबुच्छटा शीकराभा दर्दुरा दार्दुरीधरा । पापाङ्कुशा पापसिंही पापद्रुमकुठारिणी ॥३८॥
पुण्यसंघा पुण्यकीर्तिः पुण्यदा पुण्यवर्द्धिनी । मधोर्वननदी मुख्याऽतुला तालवनस्थिता ॥३९॥
कुमुद्वननदी कुब्जा कुमुदांभोजवर्द्धिनी । प्लवरूपा वेगवती सिंहसर्पादिवाहिनी ॥४०॥
बहुली बहुदा बह्वी बहुला वनवन्दिता । राधाकुण्डकलाराध्या कृष्णकुण्डजलाश्रिता ॥४१॥
ललिताकुण्डगा घंटा विशाखाकुण्डमंडिता । गोविन्दकुण्डनिलया गोपकुण्डतरंगिणी ॥४२॥
श्रीगंगा मानसी गंगा कुसुमांबरभाविनी । गोवर्धिनी गोधनाढ्या मयूरी वरवर्णिनी ॥४३॥
सारसी नीलकंठाभा कूजत्कोकिलपोतकी । गिरिराजप्रसूर्भूरिरातपत्रातपत्रिणी ॥४४॥

वनकी स्वामिनी, २४०. रक्षा=रक्षिता या रक्षारूपा, २४१. कक्षा=वृन्दावनके लिये मेखलारूपा, २४२. तटी-पटी=तटभूमिको वस्त्रकी भाँति ढकनेवाली, ॥ ३६ ॥ २४३. असिकुण्डगता=असिकुण्डमें प्राप्त, २४४. कच्छा=कछारकी भूमिस्वरूपा, २४५. स्वच्छन्दा = स्वच्छन्दगामिनी, २४६. उच्छलिता = वेगसे उछलनेवाली, २४७. आदिजा=आदिभूत श्रीकृष्णके वामांससे उद्भूत (अथवा 'अद्रिजा' पाठ माना जाय तो पर्वतसे उत्पन्न हुई)' २४८. कुहरस्था=सरस्वतीरूपसे भूछिद्रमें अथवा भोगवतीरूपसे पाताल-विवरमें स्थित, २४९. रथप्रस्था=श्रीकृष्णकी पटरानीके रूपमें रथपर यात्रा करनेवाली, २५०. प्रस्था=प्रस्थानशीला, २५१. शान्ततरा=परम शान्तिमयी, २५२. आतुरा=श्रीकृष्णदर्शनके लिये आतुर रहनेवाली, ॥ ३७ ॥ २५३. अम्बुच्छटा=जलकी छटासे शोभित, २५४. शीकराभा=फुहरोंसे सुशोभित होनेवाली, २५५. दर्दुरा=मेढकोंका आश्रय, अथवा बादलके समान श्याम कान्तिवाली, २५६. दार्दुरीधरा=अपने जलके कल-कल निनादसे दादुरोंकी-सी ध्वनि धारण करनेवाली, २५७. पापांकुशा=पापोंको नष्ट करनेके लिये अङ्कुशस्वरूपा, २५८. पापसिंही=पापरूपी गजराजको नष्ट करनेके लिए सिंहीके तुल्य, २५९. पापद्रुमकुठारिणी=पापरूपी वृक्षका उच्छेद करनेके लिये कुठाररूपा ॥ ३८ ॥ २६०. पुण्यसंघा=पुण्यसमुदायरूपा, २६१. पुण्यकीर्तिः=पवित्र कीर्तिवाली अथवा जिसका पुण्य वांछा प्रदान करनेवाला है, २६२. पुण्यदा=पुण्यदायिनी, २६३. पुण्यवर्द्धिनी=अपने दर्शनसे पुण्यकी वृद्धि करनेवाली, २६४. मधुवननदी=मधुवनमें बहनेवाली नदी, २६५. मुख्या=एक प्रधान नदी, २६६. अतुला=तुलनारहित, २६७. तालवनस्थिता=तालवनमें स्थित रहनेवाली ॥३९॥ २६८. कुमुद्वननदी=कुमुदवनकी नदी, २६९. कुब्जा=टेढ़ी-मेढ़ी, २७०. कुमुदा=भगवती दुर्गास्वरूपा, २७१. अम्भोजवर्द्धिनी=अपने जलमें कमलोंको बढ़ानेवाली, २७२. प्लवरूपा=संसारसागरसे पार होनेके लिये नौकास्वरूपा, २७३. वेगवती=वेगशालिनी, २७४. सिंहसर्पादिवाहिनी=अपने जलकी धारामें सिंहों तथा सर्पादि जन्तुओंको बहा ले जानेवाली, ॥ ४० ॥ २७५. बहुली=बहुलरूपवाली, २७६. बहुदा=बहुत देनेवाली, २७७. बह्वी=भूमा (ब्रह्म) स्वरूपा, २७८. बहुला=गोरूपा, २७९. वनवन्दिता=वनोंद्वारा वन्दित, २८०. राधाकुण्डकला=अपनी कलासे राधाकुण्डमें स्थित, २८१. आराध्या=आराधनके योग्य, २८२. कृष्णकुण्डजलाश्रिता=कृष्णकुण्डके जलमें निवास करनेवाली ॥ ४१ ॥ २८३. ललिताकुण्डगा=ललिताकुण्डमें व्याप्त, २८४. घण्टा=घण्टा-ध्वनिके सदृश अनुरणनात्मक शब्द करनेवाली, २८५. विशाखा=विशाखा-सखी-स्वरूपा, २८६. कुण्डमण्डिता=कुण्डों (ह्रदों) से सुशोभित, २८७. गोविन्दकुण्डनिलया=गोविन्दकुण्डमें निवास करनेवाली, २८८ गोपकुण्डतरंगिणी=गोपकुण्डमें तरंगित होनेवाली ॥ ४२ ॥ २८९. श्रीगङ्गा=श्रीगङ्गा-स्वरूपा, २९०. मानसीगङ्गा=मानसी-गङ्गास्वरूपा, २९१. कुसुमाम्बरभाविनी=पुष्पमय वस्त्रसे सुशोभित अथवा कुसुम-सरोवरके आकाशमें प्रकट होनेवाली, २९२. गोवर्द्धिनी=गोवर्धननाथकी शक्ति अथवा गौओंकी वृद्धि करनेवाली, २९३. गोधनाढ्या=गोधनसे सम्पन्न, २९४. मयूरवरवर्णिनी=मोरोंके समान सुन्दर वर्णवाली ॥४३॥ २९५. सारसी=सरोवरोंकी जल-सम्पत्ति अथवा सारस पक्षियोंकी आश्रयभूता, २९६. नीलकण्ठाभा=नील-कण्ठ या मयूरकी-सी आभावाली, २९७. कूजत्कोकिलपोतकी=जहाँ कोकिल-कुमारियोंके कल-कूजन होते रहते हैं, ऐसी, २९८. गिरिराजप्रसूः=गिरिराज हिमालयके कलिन्दपर्वतसे प्रकट, २९९. भूरिः=बहुवैभव-शालिनी, ३००. आतपत्रा=तटपर रहनेवाले लोगोंकी धूपके कष्टसे रक्षा करनेवाली, ३०१. आतपत्रिणी=

गोवर्द्धनांका गोदंती दिव्यौषधिनिधिः सृतिः । पारदी पारदमयी नारदी शारदी भृतिः ॥४५॥
श्रीकृष्णचरणांकस्था कामा कामवनाञ्चिता । कामाटवी नन्दिनी च नन्दग्राममहीधरा ॥४६॥
बृहत्सानुद्युतिः प्रोता नन्दीश्वरसमन्विता । काकली कोकिलमयी भांडीरकुशकौशला ॥४७॥
लोहार्गलप्रदा कारा काश्मीरवसनावृता । बर्हिषदी शोणपुरी शूरक्षेत्रपुराधिका ॥४८॥
नानाऽऽभरणशोभाढ्या नानावर्णसमन्विता । नानानारीकदंबाढ्या रंगा रंगमहीरुहा ॥४९॥
नानालोकगताभ्यर्चिर्नानाजलसमन्विता । स्त्रीरत्नं रत्ननिलया ललनारत्नरञ्जिनी ॥५०॥
रंगिणी रंगभूमाढ्या रंगा रंगमहीरुहा । राजविद्या राजगुह्या जगत्कीर्तिर्घनाऽघना ॥५१॥
विलोलघंटा कृष्णांगा कृष्णदेहसमुद्भवा । नीलपङ्कजवर्णाभा नीलपङ्कजहारिणी ॥५२॥
नीलाभा नीलपद्माढ्या नीलांभोरुहवासिनी । नागवल्ली नागपुरी नागवल्लीदलार्चिता ॥५३॥

पटरानीके रूपमें छत्र धारण करनेवाली ॥ ४४ ॥ ३०२. गोवर्द्धनाङ्कगा=गोवर्द्धनगिरिकी गोदमें मोदमाना, ३०३. गोदन्ती=हरतालके समान रंगवाले केसर आदिसे आमोदित, ३०४. दिव्यौषधिनिधिः=दिव्य ओषधियोंकी निधि, ३०५. सृतिः=सद्गतिकी राह, ३०६. पारदी=भवसागरसे पार कर देनेवाली दिव्य शक्ति, ३०७. पारदमयी=पारदस्वरूपा, ३०८. नारदी=नार अर्थात् जल प्रदान करनेवाली, ३०९. शारदी=शरत्कालीन शोभारूपा, ३१०. भृतिः=भरण-पोषणका साधन बनी हुई ॥ ४५ ॥ ३११. श्रीकृष्णचरणाङ्कस्था=भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंके अंकमें विराजित, ३१२. अकामा=लौकिक कामनाओंसे हित (अथवा 'कामा' कामस्वरूपा), ३१३. कामवनाञ्चिता=कामवनमें पूजित, ३१४. कामाटवी=कामवनरूपा, ३१५. नन्दिनी=सबको आनन्दित करनेवाली, ३१६. नन्दग्राममही=नन्दग्रामस्थित भूमिरूपा, ३१७. धरा=पृथ्वीरूपा ॥ ४६ ॥ ३१८. बृहत्सानुद्युतिप्रोता='बृहत्सानु' पर्वतके शिखरकी शोभासे संयुक्त, ३१९. नन्दीश्वरसमन्विता=नन्दगाँवके नन्दीश्वरगिरिसे समन्विता, ३२०. काकली=कोयलोंकी कुहू-ध्वनिरूपमें स्थित, ३२१. कोकिलमयी=कोयलसे व्याप्त ३२२. भाण्डीरकुशकौशला=भाण्डीरवनमें कुशोत्पाटनके कौशलसे युक्त ॥ ४७ ॥ ३२३. लोहार्गलप्रदा=श्रीकृष्णके लिये अपने प्रेमके द्वारा लोहकी अर्गला लगा देनेवाली, ३२४. कारा=(श्रीकृष्णको अपने प्रेमके द्वारा रोके रखनेके लिये) कारारूपा, ३२५. काश्मीरवसना=केसरके रंगमें रँगे हुए वस्त्र धारण करनेवाली, ३२६. वृता=श्रीकृष्णके द्वारा स्वीकृता, ३२७. बर्हिषदी=बर्हिषदीपुरीरूपा, ३२८. शोणपुरी=शोणपुरीरूपा, ३२९. शूरक्षेत्रपुराधिका = शूरक्षेत्रपुरसे भी अधिक माहात्म्यवाली ॥ ४८ ॥ ३३०. नानाभरणशोभाढ्या=विविध प्रकारके आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न, ३३१. नानावर्णसमन्विता=नाना प्रकारके रंगोंसे युक्त, ३३२. नानानारीकदम्बाढ्या=नाना प्रकारकी स्त्रियोंके समुदायसे युक्त, ३३३. नानारङ्गमहीरुहा=तटवर्ती विविध रंगके वृक्षोंसे सुशोभित ॥ ४९ ॥ ३३४. नानालोकगता=नाना लोकोंमें पहुँची हुई, ३३५. अभ्यर्चिः=जिनकी तेजोराशि सब ओर फैली हुई है, ऐसी, ३३६. नानाजलसमन्विता = नाना नदियोंके मिले हुए जलसे युक्त, ३३७. स्त्रीरत्नम्=स्त्रियोंमें रत्नस्वरूपा, ३३८. रत्ननिलया=रत्ननिर्मित गृहमें निवास करनेवाली, ३३९. ललना=श्रीकृष्णकामिनी, ३४०. रत्नरञ्जिनी = रत्नोंके द्वारा विविध रंगोंका प्रकाश फैलानेवाली ॥ ५० ॥ ३४१. रङ्गिणी = रङ्गस्थलमें रासके रंगमें रँगी रहनेवाली, ३४२. रंगभूमाढ्या = रंगके बाहुल्यसे युक्त, ३४३. रंगा = हर्षयुक्ता अथवा रंगानाम्नी नदीस्वरूपा, ३४४. रंगमहीरुहा = रंगीन वृक्षोंसे युक्त, ३४५. राजविद्या = विद्याओंकी स्वामिनी, ३४६. राजगुह्या = गुह्य वस्तुओंमें सबसे श्रेष्ठ, ३४७. जगत्कीर्तिः = जगत्के लिये कीर्तिमयी अथवा कीर्तनीया, ३४८. घना = सघन प्रेमयुक्ता अथवा श्रीकृष्णके वंशीवादनके समय हिमवत् घनीभूत हो जानेवाली, ३४९. अघना = प्रवहणशीला ॥ ५१ ॥ ३५०. विलोलघण्टा = चञ्चल घंटाके समान नाद करनेवाली, ३५१. कृष्णांगा = कृष्णके समान अंगवाली अथवा श्यामांगी, ३५२. कृष्णदेहसमुद्भवा = श्रीकृष्णके शरीरसे उत्पन्न, ३५३. नीलपंकजवर्णाभा = नील कमलके समान वर्ण एवं आभासे युक्त, ३५४. नीलपंकजहारिणी = नील कमलकी माला धारण करनेवाली ॥ ५२ ॥ ३५५. नीलाभा = नील कान्तिमती, ३५६. नीलपद्माढ्या = नील कमलोंकी सम्पदासे भरी-पूरी, ३५७. नीलाम्भोरुहवासिनी = नील कमलमें निवास करनेवाली, ३५८. नागवल्ली = ताम्बूललतास्वरूपा, ३५९. नागपुरी = नागोंकी नगरी (अर्थात् कालिय

तांबूलचर्चिता चर्चा मकरन्दमनोहरा । सकेसरा केसरिणी केशपाशाभिशोभिता ॥५४॥
कज्जलाभा कज्जलाक्ता कज्जली कलिताञ्जना । अलक्तचरणा ताम्रा लाला ताम्रीकृतांबरा ॥५५॥
सिन्दूरिताऽलिप्तवाणी सुश्रीः श्रीखंडमंडिता । पाटीरपङ्कवसना जटामांसीरुचाम्बरा ॥५६॥
आगर्य्यगुरुगन्धाक्ता तगराश्रितमारुता । सुगन्धितैलरुचिरा कुन्तलालिः सकुन्तला ॥५७॥
शकुन्तलाऽपांसुला च पातिव्रत्यपरायणा । सूर्यप्रभा सूर्यकन्या सूर्यदेहसमुद्भवा ॥५८॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशा सूर्यजा सूर्यनन्दिनी । संज्ञा संज्ञासुता स्वेच्छा संज्ञा मोदप्रदायिनी ॥५९॥
संज्ञापुत्री स्फुरच्छाया तपती तापकारिणी । सावर्ण्यानुभवा वेदी वडवा सौख्यदायिनी ॥६०॥
शनैश्चरानुजा कीला चन्द्रवंशविवर्द्धिनी । चन्द्रवंशवधूश्चन्द्रा चन्द्रावलिसहायिनी ॥६१॥
चन्द्रावती चन्द्रलेखा चन्द्रकांतानुगांशुका । भैरवी पिंगलाशंकी लीलावत्यागरीमयी ॥६२॥

आदि नागोंकी निवासभूमि), ३६०. नागवल्लीदलार्चिता=ताम्बूलपत्रसे पूजित ॥ ५३ ॥ ३६१. ताम्बूलचर्चिता=ताम्बूलसे रञ्जित, ३६२. चर्चा=कस्तूरी-चन्दनादि आलेपमयी, ३६३, मकरन्दमनोहरा=कमलादिके मकरन्दसे मनको हर लेनेवाली, ३६४. सकेशरा=केसरवती, ३६५. केशरिणी=केसर धारण करनेवाली, ३६६. केशपाशाभिशोभिता=केशपाशद्वारा सब ओरसे सुशोभित ॥ ५४ ॥ ३६७. कज्जलाभा=काजलकी-सी काली आभावाली, ३६८ कज्जलाक्ता=नेत्रोंमें काजलकी शोभासे युक्त अथवा काजलसे रँगी हुई, ३६९. कज्जली=काजलके समान काली, ३७०. कलिताञ्जना=नेत्रोंमें अञ्जन धारण करनेवाली, ३७१. अलक्तचरणा=चरणोंमें महावरका रंग लगानेवाली, ३७२. ताम्रा=ताम्रवर्णा, ३७३. लाला=लालनीया, ३७४. ताम्रीकृताम्बरा=ताँबेके समान लाल रंगके वस्त्र धारण करनेवाली ॥ ५५ ॥ ३७५ सिन्दूरिता=सीमन्तमें सिन्दूर धारण करनेवाली, ३७६. अलिप्तवाणी=जिसकी वाणी किसी दोषसे लिप्त नहीं होती, ऐसी, ३७७. सुश्री=उत्तम शोभासे युक्त, ३७८. श्रीखण्डमण्डिता=चन्दनसे अलंकृत, ३७९. पाटीरपंकवसना=चन्दनपंकमय वस्त्र धारण करनेवाली, ३८०. जटामांसी = जटामांसीके रूपमें स्थित, ३८१. स्रगम्बरा=पुष्पमालाओंको वस्त्ररूपमें धारण करनेवाली ॥ ५६ ॥ ३८२. आगरी=आगर (अमावास्या) के समान (कृष्ण) वर्णवाली, ३८३. अगुरुगन्धाक्ता=अगुरुकी गन्धसे अभिषिक्त, ३८४. तगराश्रितमारुता=जिसकी हवामें तगरकी सुगन्ध समायी हुई है, ऐसी, ३८५. सुगन्धितैलरुचिरा=सुगन्धित तैल (इत्र आदि) से मनोहर, ३८६. कुन्तलालिः=जिनकी अलकोंपर (सुगन्धसे आकृष्ट) भ्रमर मँडराते रहते हैं, ऐसी, ३८७. सकुन्तला=कुन्तल-राशिसे युक्त ॥ ५७ ॥ ३८८. शकुन्तला=शकुन्तों—पक्षियोंका स्वागत करनेवाली, ३८९. अपांसुला=पतिव्रता, ३९०. पातिव्रत्यपरायणा=पतिव्रताधर्मके पालनमें तत्पर, ३९१. सूर्यप्रभा=सूर्यके समान उद्भासित होनेवाली, ३९२. सूर्यकन्या=सूर्यकी पुत्री, ३९३. सूर्यदेहसमुद्भवा=सूर्यके शरीरसे उत्पन्ना ॥ ५८ ॥ ३९४. कोटिसूर्यप्रतीकाशा=करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्विनी, ३९५. सूर्यजा=सूर्यपुत्री, ३९६. सूर्यनन्दिनी=सूर्यदेवको आनन्द प्रदान करनेवाली, ३९७. संज्ञा=सम्यक् ज्ञानस्वरूपा, ३९८. संज्ञासुता=संज्ञाकी पुत्री ३९९. स्वेच्छा=स्वाधीना, ४००. असंज्ञा=(प्रियतमके प्रेममें) बेसुध हो जानेवाली, ४०१. संज्ञा=चेतनारूपा, ४०२. मोदप्रदायिनी=आनन्द प्रदान करनेवाली ॥ ५९ ॥ ४०३. संज्ञापुत्री=संज्ञाकी बेटी, ४०४. स्फुरच्छाया=उद्भासित कान्तिवाली, ४०५. तपतीतापकारिणी=(सौतेली बहिन) तपतीको ताप देनेवाली, ४०६. सावर्ण्यानुभवा=श्रीकृष्णके साथ वर्ण-सादृश्यका अनुभव करनेवाली, ४०७ देवी=देवकन्या, ४०८. वडवा=वडवारूपा, ४०९. सौख्यदायिनी=सौख्य प्रदान करनेवाली ॥ ६० ॥ ४१०. शनैश्चरानुजा=शनैश्चरकी छोटी बहिन, ४११. कीला=ज्वालामयी, ४१२. चन्द्रवंशविवर्द्धिनी=चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाली ४१३. चन्द्रवंशवधूः=चन्द्रवंशकी बहू, ४१४. चन्द्रा=आह्लाद प्रदान करनेवाली, ४१५. चन्द्रावलिसहायिनी=चन्द्रावली सखीकी सहायता करनेवाली ॥ ६१ ॥ ४१६. चन्द्रावती=चन्द्रावतीस्वरूपा, ४१७. चन्द्रलेखा=चन्द्रलेखास्वरूपा, ४१८. चन्द्रकान्ता=चन्द्रमाके समान कान्तिमती, ४१९. अनुगा=(सदा) प्रियतमका अनुगमन करनेवाली, ४२०. अंशुका=उज्ज्वल-वस्त्रधारिणी, ४२१. भैरवी=भैरवप्रिया, ४२२. पिङ्गलाशंकी=

धनश्रीर्देवगान्धारी स्वर्मणिर्गुणवर्द्धिनी । व्रजमल्ला वन्धकारी विचित्रा जयकारिणी ॥६३॥
गान्धारी मञ्जरी टोडी गुर्ज्जर्य्यासावरी जया । कर्णाटी रागिणी गौरी वैराटी गौरवाटिका ॥६४॥
चतुश्चन्द्रा कला हेरी तैलंगी विजयावती । ताली तलस्वरा गाना क्रियामात्रप्रकाशिनी ॥६५॥
वैशाखी चाचला चारुर्माचारी घूघटी घटा । वैहागरी सोरठीशा कैदारी जलधारिका ॥६६॥
कामाकरश्रीः कल्याणी गौडकल्याणमिश्रिता । राजसंजीविनी हेला मन्दारी कामरूपिणी ॥६७॥
सारंगी मारुती होढा सागरी कामवादिनी । वैभासी मंगला चान्द्री रासमंडलमंडना ॥६८॥
कामधेनुः कामलता कामदा कमनीयका । कल्पवृक्षस्थली स्थूला सुधासौधनिवासिनी ॥६९॥
गोलोकवासिनी सुभ्रूर्यष्टिभृद्द्वारपालिका । शृंगारप्रकरा शृंगा स्वच्छा शय्योपकारिका ॥७०॥
पार्षदा सुसखीसेव्या श्रीवृन्दावनपालिका । निकुञ्जभृत्कुंजपुञ्जा गुञ्जाभरणभूषिता ॥७१॥
निकुञ्जवासिनी प्रोष्या गोवर्द्धनतटीभवा । विशाखा ललिता रामा नीरुजा मधुमाधवी ॥७२॥

सूर्यके पारिपार्श्वक पिंगलसे आशंकित होनेवाली ४२३. लीलावती = भाँति-भाँतिकी लीला करनेवाली, ४२४. आगरीमयी = अगरकी सुगन्धसे व्याप्त ॥६२॥ ४२५. धनश्री = धनलक्ष्मी या रागिनीविशेष, ४२६. देवगान्धारी = रागिनीविशेष, ४२७. स्वर्मणिः = स्वर्गलोककी मणि, ४२८. गुणवर्द्धिनी = गुणोंकी वृद्धि करनेवाली, ४२९. व्रजमल्ला = व्रजमण्डलमें मल्लस्वरूपा, ४३०. वन्धकारी = विरोधियोंको बन्धनमें डालनेवाली, ४३१. विचित्रा = विचित्र रूप और शक्तिसे सम्पन्न, ४३२. जयकारिणी = विजय प्राप्त करानेवाली ॥६३॥ ४३३. गान्धारी, ४३४. मञ्जरी, ४३५. टोडी, ४३६. गुर्जरी, ४३७. आसावरी, ४३८. जया, ४३९. कर्णाटी = गान्धारीसे लेकर कर्णाटीतक विशेष रागिनियोंके नाम हैं। ये समस्त रागिनियाँ यमुनाजीसे अभिन्न हैं, ४४०. रागिणी = रागिनीस्वरूपा, ४४१. गौरी = गौरी नामकी रागिनी, ४४२. वैराटी = रागिनीविशेष, ४४३. गौरवाटिका=रागिनी-विशेष अथवा गौरतेजः-स्वरूपा श्रीराधाके लिये उद्यानरूपिणी ॥ ६४ ॥ ४४४. चतुश्चन्द्रा, ४४५. कलाहेरी, ४४६. तैलङ्गी, ४४७. विजयावती, ४४८. ताली=चतुश्चन्द्रासे लेकर तालीतक राग-रागिनियों और तालके नाम हैं, ४४९. तलस्वरा=ताली बजाकर स्वरकी सूचना देनेवाली, ४५०. गाना = गानस्वरूपा, ४५१. क्रियामात्रप्रकाशिनी= तालके क्रियामात्रको प्रकाशित करनेवाली ॥ ६५ ॥ ४५२. वैशाखी, ४५३. चञ्चला, ४५४. चारुः, ४५५. माचारी, ४५६. घूघटी, ४५७. घटा, ४५८. वैरागरी, ४५९. सोरठी, ४६०. ईशा, ४६१. कैदारी, ४६२. जलधारिका—वैशाखीसे लेकर जलधारिकापर्यन्त सभी नामविशेष रागिनी आदिके सूचक हैं ॥ ६६ ॥ ४६३. कामाकरश्री, ४६४. कल्याणी, ४६५. गौड़कल्याणमिश्रिता, ४६६. राजसंजीविनी, ४६७. हेला, ४६८. मन्दारी, ४६९. कामरूपिणी—ये सब भी विशेष प्रकारकी रागिनियाँ हैं ॥ ६७ ॥ ४७०. सारङ्गी, ४७१. मारुती, ४७२ होढा, ४७३. सागरी, ४७४. कामवादिनी, ४७५. वैभासी, ४७६. मङ्गला—ये भी रागनियोंके ही नाम हैं। ४७७. चान्द्री=रासपूर्णिमांकी चाँदनीस्वरूपा, ४७८. रासमण्डलमण्डना=रास-मण्डलको मण्डित करनेवाली ॥ ६८ ॥ ३७९. कामधेनुः=कामधेनुकी भाँति व्यक्तिकी मनोवाञ्छित कामनाको पूर्ण करनेवाली, ४८०. कामलता=कामना पूर्ण करनेवाली कल्पलतास्वरूपा, ४८१. कामदा=अभीष्ट मनोरथ देनेवाली, ४८२. कामनीयका = कमनीया, ४८३. कल्पवृक्षस्थली=कल्पवृक्षोंकी स्थानभूता, ४८४. स्थूला = स्थूलरूपिणी, ४८५. क्षुधा=बुभुक्षास्वरूपिणी, ४८६. सौधनिवासिनी=महलमें रहनेवाली ॥ ६९ ॥ ४८७. गोलोकवासिनी=गोलोकधाममें निवास करनेवाली, ४८८. सुभ्रूः=सुन्दर भौंहोंवाली, ४८९. यष्टिभृत्=छड़ी धारण करनेवाली, ४९०. द्वारपालिका=द्वाररक्षिका, ४९१. शृङ्गारप्रकरा = शृङ्गार-साधन-सामग्री-समुदयरूपा, ४९२. शृङ्गा=मन्मथोद्भेदस्वरूपा, ४९३. स्वच्छा=विमलस्वरूपा, ४९४. शय्योपकारिका= प्रियाप्रियतमके लिये शय्या सुसज्जित करनेमें उपकारिणी ॥ ७० ॥ ४९५. पार्षदा=श्रीराधा-कृष्णकी पार्षद-स्वरूपा, ४९६. सुसखीसेव्या = सुन्दर सखियोंद्वारा सेवनीया, ४९७. श्रीवृन्दावनपालिका=श्रीवृन्दावनकी रक्षा करनेवाली, ४९८. निकुञ्जभृत्=निकुञ्जका पोषण करनेवाली, ४९९. कुञ्जपुञ्जा=कुञ्जसमुदायस्वरूपा, ५०० गुञ्जाभरणभूषिता = गुञ्जाके आभूषणोंसे विभूषित ॥ ७१ ॥ ५०१. निकुञ्जवासिनी = निकुञ्जमें निवास

एका नैकसखी शुक्ला सखीमध्या महामनाः । श्रुतिरूपा ऋषिरूपा मैथिलाः कौशलाः स्त्रियः ॥७३॥
अयोध्यापुरवासिन्यो यज्ञसीताः पुलिंदकाः । रमावैकुण्ठवासिन्यः श्वेतद्वीपसखीजनाः ॥७४॥
ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिन्यो दिव्याऽजितपदाश्रिताः । श्रीलोकाचलवासिन्यः श्रीसख्यः सागरोद्भवाः ७५॥
दिव्या अदिव्या दिव्यांगा व्याप्तास्त्रिगुणवृत्तयः । भूमिगोप्यो देवनार्यो लता ओषधिवीरुधः ॥७६॥
जालंधर्य्यः सिन्धुसुताः पृथुबर्हिष्मतीभवाः । दिव्यांबरा अप्सरसः सौतला नागकन्यकाः ॥७७॥
परं धाम परं ब्रह्म पौरुषा प्रकृतिः परा । तटस्था गुणभूर्गीता गुणागुणमयी गुणा ॥७८॥
चिद्घना सदसन्माला दृष्टिर्दृश्या गुणाकरी । महत्तत्त्वमहंकारो मनो बुद्धिः प्रचेतना ॥७९॥
चेतो वृत्तिः स्वांतरात्मा चतुर्थी चतुरक्षरा । चतुर्व्यूहा चतुर्मूर्तिर्व्योमवायुरदो जलम् ॥८०॥

करनेवाली, ५०२. प्रोष्या=प्रवासिनी, ५०३. गोवर्धनतटीभवा=गोवर्धनकी उपत्यकामें मानसी गङ्गाके रूपमें प्रकट, ५०४. विशाखा=विशाखा-सखीस्वरूपा, ५०५. ललिता=ललिता-सखीस्वरूपा अथवा लालित्य-शालिनी, ५०६. रामा=श्रीकृष्णरमणी, ५०७. नीरुजा=रोगरहित, ५०८. मधुमाधवी=मधुमासकी माधवी लतारूपिणी ॥ ७२ ॥ ५०९. एका=अद्वितीया, ५१०. नैकसखी=अनेक सखियोंवाली, ५११. शुक्ला=शुद्ध-स्वरूपा, ५१२. सखीमध्या=सखियोंके मध्यमें विराजमान, ५१३. महामनाः=विशालहृदया, ५१४. श्रुति-रूपा=गोपीरूपमें श्रुतिस्वरूपा, ५१५. ऋषिरूपा=ऋषिस्वरूपा गोपी, ५१६. मैथिलाः=गोपीरूपमें उत्पन्न मिथिलावासिनी स्त्रियाँ, ५१७. कौशलाः स्त्रियः=गोपीरूपमें उत्पन्न कोशलवासिनी स्त्रियाँ ॥ ७३ ॥ ५१८. अयोध्यापुरवासिन्यः=गोपीरूपमें उत्पन्न अयोध्या नगरकी स्त्रियाँ, ५१९. यज्ञसीताः=यज्ञसीतास्वरूपा गोपियाँ, ५२० पुलिन्दकाः=गोपीभावको प्राप्त पुलिन्द-कन्याएँ, ५२१. रमावैकुण्ठवासिन्यः=लक्ष्मीजीके वैकुण्ठमें निवास करनेवाली स्त्रियाँ (जो गोपीरूपको प्राप्त हुई थीं), ५२२. श्वेतद्वीपसखीजनाः=श्वेतद्वीप-निवासिनी सखियाँ ॥ ७४ ॥ ५२३. ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिन्यः=ऊर्ध्ववैकुण्ठमें वास करनेवाली सखियाँ, ५२४. दिव्याजितपदाश्रिताः=दिव्य अजित पदके आश्रित सखियाँ, ५२५. श्रीलोकाचलवासिन्यः=श्रीलोकाचलमें निवास करनेवाली सखियाँ, ५२६. सागरोद्भवाः श्रीसख्यः=समुद्रसे उत्पन्न श्रीलक्ष्मीजीकी सखियाँ ॥ ७५ ॥ ५२७. दिव्याः=दिव्यरूपा गोपियाँ, ५२८. अदिव्याः=मानवरूपिणी गोपियाँ, ५२९. दिव्याङ्गाः=दिव्य अङ्गोंवाली, ५३०. व्याप्ताः=सर्वव्यापिनी, ५३१. त्रिगुणवृत्तयः=त्रिगुणात्मक वृत्ति स्वरूपा, ५३२. भूमि-गोप्यः=भूतलपर उत्पन्न गोपियाँ, ५३३. देवनार्यः=देवाङ्गनास्वरूपा गोपियाँ, ५३४ लताः=लतारूपिणी गोपियाँ, ५३५. ओषधिवीरुधः=ओषधि एवं लता-झाड़ी आदिस्वरूपा गोपाङ्गनाएँ ॥ ७६ ॥ ५३६. जालं-धर्यः=गोपीभावको प्राप्त जालंधरी स्त्रियाँ, ५३७. सिन्धुसुताः=समुद्रकन्याएँ ५३८. पृथुबर्हिष्मतीभवाः=राजा पृथुकी बर्हिष्मतीपुरीमें उत्पन्न स्त्रियाँ, जो गोपीभावको प्राप्त हुई थीं, ५३९. दिव्याम्बराः=दिव्यवस्त्र-धारिणी गोपियाँ, ५४०. अप्सरसः=गोपीभावको प्राप्त अप्सराएँ, ५४१. सौतलाः=सुतललोकवासिनी असु-राङ्गनाएँ, जिन्हें गोपीभावकी प्राप्ति हुई थी, ५४२. नागकन्यकाः=नागकन्यास्वरूपा गोपियाँ ॥ ७७ ॥ ५४३. परंधाम=परमधामस्वरूपा, ५४४. परं ब्रह्म=परब्रह्मस्वरूपा, ५४५. पौरुषा=पुरुषार्थस्वरूपा, ५४६. प्रकृतिः परा=पराप्रकृतिस्वरूपा, ५४७. तटस्था=तटस्था शक्तिस्वरूपा, ५४८. गुणभूः=गुणोंकी जन्मभूमि, ५४९. गीता=सबके द्वारा जिसका यशोगान होता हो वह, अथवा भगवद्गीतास्वरूपा, ५५०. गुणागुणमयी=गुणागुणस्वरूपा, ५५१. गुणा=दिव्यगुणात्मिका ॥ ७८ ॥ ५५२. चिद्घना=चिदानन्दघनस्वरूपा, ५५३. सदसन्माला=सदसत्-समूहात्मिका, ५५४. दृष्टिः=ज्ञानस्वरूपा, दर्शनस्वरूपा, ५५५. दृश्या=दृश्यस्वरूपा, ५५६. गुणाकरी=गुणोंकी निधिरूपा, ५५७. महत्तत्त्वम्=समष्टि बुद्धिरूपा, ५५८. अहंकारः=अहंकारस्वरूपा, ५५९. मनः=मनःस्वरूपा, ५६०. बुद्धिः=बुद्धिरूपा, ५६१. प्रचेतना=प्रकृष्ट चेतनास्वरूपा ॥ ७९ ॥ ५६२. चेतः=चित्तरूपा, ५६३. वृत्तिः=व्यवहारस्वरूपा, ५६४. स्वान्तरात्मा = निजान्तरात्मस्वरूपा, ५६५. चतुर्थी=जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिसे अतीत तुरीयावस्थारूपा, ५६६. चतुरक्षरा=प्रणवके चार अक्षर—अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा—ये जिसके स्वरूप हैं, वह, ५६७. चतुर्व्यूहा=वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार व्यूह जिसके स्वरूप हैं, वह, ५६८. चतुर्मूर्तिः=एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी

महो शब्दो रसो गन्धः स्पर्शो रूपमनेकधा । कर्मेन्द्रियं कर्ममयी ज्ञानं ज्ञानेन्द्रियं द्विधा ॥८१॥
त्रिधाधिभूतमध्यात्ममधिदैवमधिस्थितम् । ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः सर्वदेवाधिदेवता ॥८२॥
तत्त्वसंघा विराण्मूर्तिर्धारणा धारणामयी । श्रुतिः स्मृतिर्वेदमूर्तिः संहिता गर्गसंहिता ॥८३॥
पाराशरी सैव सृष्टिः पारहंसी विधातृका । याज्ञवल्की भागवती श्रीमद्भागवतार्चिता ॥८४॥
रामायणमयी रम्या पुराणपुरुषप्रिया । पुराणमूर्तिः पुण्यांगा शास्त्रमूर्तिर्महोन्नता ॥८५॥
मनीषा धिषणा बुद्धिर्वाणी धीः शेमुषी मतिः । गायत्री वेदसावित्री ब्राह्मणी ब्रह्मलक्षणा ॥८६॥
दुर्गाऽपर्णा सती सत्या पार्वती चंडिकांबिका । आर्या दाक्षायणी दाक्षी दक्षयज्ञविघातिनी ॥८७॥
पुलोमजा शचीन्द्राणी देवी देववरार्पिता । वायुना धारिणी धन्या वायवी वायुवेगगा ॥८८॥

और चतुष्पदी—इन चार मूर्तियोंवाली गायत्री अथवा चतुर्व्यूहस्वरूपा, ५६९. व्योम=आकाशरूपा, ५७०. वायुः=वायुरूपा, ५७१. अदः=दृश्य प्रपञ्चके रूपमें स्थित, ५७२. जलम्=जलस्वरूपा ॥ ८० ॥ ५७३. मही=पृथ्वीरूपा, ५७४. शब्दः=शब्दस्वरूपा, ५७५. रसः=रसस्वरूपा, ५७६. गन्धः=गन्धस्वरूपा, ५७७. स्पर्शः=स्पर्शस्वरूपा, ५७८. रूपम्=रूपस्वरूपा, ५७९. अनेकधा=नाना रूपवाली, ५८०. कर्मेन्द्रियम्=कर्मेन्द्रियस्वरूपा, ५८१. कर्ममयी=कर्मस्वरूपा, ५८२. ज्ञानम्=ज्ञानमयी, ५८३. ज्ञानेन्द्रियम्=ज्ञानेन्द्रियस्वरूपा ५८४. द्विधा=प्रकृति-पुरुषरूप दो शरीरवाली अथवा ज्ञानेन्द्रिय-भेदसे द्विविध इन्द्रियरूपा ॥ ८१ ॥ ५८५. त्रिधा=क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम—त्रिविध रूपवाली, ५८६. अधिभूतम्=भौतिक सृष्टिमें व्याप्त, ५८७. अध्यात्मम्=अध्यात्मस्वरूपा, ५८८. अधिदैवम्=आधिदैविकरूपवाली, ५८९. अधिष्ठितम्=सर्वरूपोंमें अधिष्ठित, ५९०. ज्ञानशक्तिः=ज्ञाशक्ति, ५९१. क्रियाशक्तिः=क्रियाशक्ति, ५९२. सर्वदेवाधिदेवता=समस्त देवताओंकी अधिदेवी ॥ ८२ ॥ ५९३. तत्त्वसंघा=तत्त्वसमूहरूपा, ५९४. विराण्मूर्तिः=विराट्स्वरूपा, ५९५. धारणा=धारणाशक्ति, ५९६. धारणामयी=धारणाशक्तिरूपा, ५९७. श्रुतिः=वेदरूपा, ५९८. स्मृतिः=धर्मशास्त्ररूपा, ५९९. वेदमूर्तिः=वेदात्मिका, ६००. संहिता=संहितास्वरूपा, ६०१. गर्गसंहिता=गर्गसंहितारूपा ॥ ८३ ॥ ६०२. पाराशरी=पाराशरसंहिता (विष्णुपुराण)—रूपा, ६०३. सृष्टिः=सृष्टिरूपा अथवा पाराशरी-रचनारूपा, ६०४. पारहंसी=परमहंस-विद्यारूपा अथवा परमहंससंहिता, ६०५. विधातृका=विधातृस्वरूपा अथवा ब्रह्मसंहिता, ६०६. याज्ञवल्की=याज्ञवल्क्यस्मृतिरूपा, ६०७. भागवती=भगवान्‌की शक्ति अथवा वैष्णवागमरूपा, ६०८. श्रीमद्भागवतार्चिता = श्रीमद्भागवतके द्वारा पूजित-प्रशंसित ॥ ८४ ॥ ६०९. रामायणमयी = वाल्मीकिरामायण अथवा प्राचेतससंहिता अथवा रामचरितस्वरूपा, ६१०. रम्या=रमणीया, ६११. पुराणपुरुषप्रिया=पुराणपुरुष श्रीकृष्णकी प्रिया, ६१२. पुराणमूर्तिः=पुराणस्वरूपा, ६१३. पुण्याङ्गा=पुण्यशरीरवाली, ६१४. शास्त्रमूर्तिः=शास्त्रस्वरूपा, ६१५. महोन्नता=परम उन्नत ॥ ८५ ॥ ६१६. मनीषा=बुद्धिरूपा, ६१७. धिषणा=प्रज्ञारूपा, ६१८. बुद्धिः=मेधारूपा, ६१९. वाणी=वाग्देवता, ६२०. धीः=बुद्धिरूपा, ६२१. शेमुषी=बुद्धिरूपा, ६२२. मतिः=निश्चयरूपा, ६२३. गायत्री=गायत्रीमन्त्रस्वरूपा, ६२४. वेदसावित्री=वेदोक्त गायत्री, ६२५. ब्रह्माणी=ब्रह्मशक्ति, ६२६. ब्रह्मलक्षणा=वेद-मन्त्रों द्वारा लक्षित होनेवाली ॥ ८६ ॥ ६२७. दुर्गा=दुर्गम्या अथवा दुर्गादेवी, ६२८. अपर्णा=तपस्विनी पार्वती, ६२९. सती=दक्षकन्या सती, ६३०. सत्या=सत्यस्वरूपा अथवा सत्यभामा, ६३१. पार्वती=गिरिराज हिमालयकी पुत्री, ६३२. चण्डिका=असुरसंहारिणी शक्ति, ६३३. अम्बिका=जगन्माता, ६३४. आर्या=श्रेष्ठस्वरूपा, ६३५. दाक्षायणी=दक्ष-प्रजापतिकी कन्या, ६३६. दाक्षी=दक्षपुत्री, ६३७. दक्षयज्ञविघातिनी=दक्ष-यज्ञविध्वंसमें कारणभूता ॥ ८७ ॥ ६३८. पुलोमजा=पुलोम दानवकी पुत्री शचीस्वरूपा, ६३९. शची=इन्द्रपत्नी, ६४०. इन्द्राणी=शची, ६४१. देवी=प्रकाशमाना, ६४२. देववरार्पिता=देवेश्वर इन्द्रको अर्पित, ६४३. वायुना धारिणी=वायुके द्वारा धारण करनेवाली अथवा यमुना=ज्ञानस्वरूपा और धारिणी=धारणशक्ति, ६४४. धन्या=धन्यवादके योग्य, ६४५. वायवी=वायुशक्ति, ६४६. वायुवेगगा=वायुवेगसे चलनेवाली ॥ ८८ ॥ ६४७. यमानुजा=यमकी छोटी बहिन, ६४८. संयमनी=संयमनशक्ति अथवा संयमनीपुरी, ६४९. संज्ञा=सूर्यप्रिया

यमानुजा संयमनी संज्ञा छाया स्फुरद्द्युतिः । रत्नदेवी रत्नवृन्दा तारा तरणिमण्डला ॥८९॥
रुचिः शान्तिः क्षमा शोभा दया दक्षा द्युतिस्त्रपा। तलतुष्टिर्विभा पुष्टिः सन्तुष्टिः पुष्टभावना ॥९०॥
चतुर्भुजा चारुनेत्रा द्विभुजाऽष्टभुजाऽबला । शङ्खहस्ता पद्महस्ता चक्रहस्ता गदाधरा ॥९१॥
निषंगधारिणी चर्मखड्गपाणिर्धनुर्द्धरा । धनुष्टङ्कारणी योध्री दैत्योद्भटविनाशिनी ॥९२॥
रथस्था गरुडारूढा श्रीकृष्णहृदयस्थिता । वंशीधरा कृष्णवेषा स्रग्विणी वनमालिनी ॥९३॥
किरीटधारिणी याना मन्दमन्दगतिर्गतिः । चन्द्रकोटिप्रतीकाशा तन्वी कोमलविग्रहा ॥९४॥
भैष्मी भीष्मसुता भीमा रुक्मिणी रुक्मरूपिणी । सत्यभामा जांबवती सत्या भद्रा सुदक्षिणा ॥९५॥
मित्रविन्दा सखीवृन्दा वृन्दारण्यध्वजोर्ध्वगा । शृंगारकारिणी शृङ्गा शृङ्गभूः शृङ्गदा खगा ॥९६॥
तितिक्षेक्षा स्मृतिःस्पर्धा स्पृहा श्रद्धा स्वनिर्वृतिः। ईशा तृष्णा भिदा प्रीतिर्हिंसायाश्चाक्लमा कृषिः ॥९७॥

संज्ञास्वरूपा, ६५०. छाया = संज्ञाकी छायाभूता सवर्णा, ६५१. स्फुरद्द्युतिः = उद्दीप्त कान्तिवाली, ६५२. रत्नवेदी=रत्नवेदिकारूपा, ६५३. रत्नवृन्दा=रत्नसमूहरूपा, ६५४. तारा = तारामण्डलरूपा, ६५५. तरणि-मण्डला=सूर्यमण्डलस्वरूपा ॥ ८९ ॥ ६५६. रुचिः=प्रभा, ६५७. शान्तिः=शान्तिरूपा, ६५८. क्षमा=तितिक्षा-मयी अथवा पृथ्वी, ६५९. शोभा = छविमयी, ६६०. दया=करुणामयी, ६६१. दक्षा=कुशला या चतुरा, ६६२. द्युतिः=कान्तिमयी, ६६३ त्रपा=लज्जा, ६६४. तलतुष्टिः=ताली बजानेसे संतुष्ट होनेवाली, ६६५. विभा= प्रभा, ६६६. पुष्टिः=पुष्टिरूपा, ६६७. संतुष्टिः=संतोषमयी, ६६८. पुष्टभावना=सुदृढ़ भावनावाली ॥ ९० ॥ ६६९. चतुर्भुजा=चार भुजाएँ धारण करनेवाली (लक्ष्मी), ६७०. चारुनेत्रा=सुन्दर नेत्रोंवाली, ६७१. द्विभुजा= दो बाहुवाली (कालिन्दी या श्रीराधा), ६७२. अष्टभुजा=आठ भुजावाली (सरस्वती), ६७३. अबला= बलका प्रदर्शन न करनेवाली, ६७४ शङ्खहस्ता=हाथमें शङ्ख धारण करनेवाली (वैष्णवी मूर्ति), ६७५. पद्महस्ता=हाथमें कमल धारण करनेवाली (लक्ष्मी), ६७६. चक्रहस्ता = हाथमें चक्र धारण करनेवाली वैष्णवी मूर्ति, ६७७. गदाधरा=गदा धारण करनेवाली ॥ ९१ ॥ ६७८. निषङ्गधारिणी=तरकस धारण करने-वाली, ६७९. चर्मखड्गपाणिः=हाथमें ढाल-तलवार लेनेवाली, ६८०. धनुर्धरा=धनुष धारण करनेवाली, ६८१. धनुष्टंकारिणी=(दुर्गाके रूपमें) धनुषका टंकार करनेवाली, ६८२. योद्ध्री=युद्ध करनेवाली, ६८३. दैत्योद्भटविनाशिनी=दैत्यसेनाके उद्भट योद्धाओंका विनाश करनेवाली ॥ ९२ ॥ ६८४. रथस्था = रथपर बैठनेवाली, ६८५. गरुडारूढा=गरुडपर आरूढ होनेवाली, ६८६. श्रीकृष्णहृदयस्थिता = श्रीकृष्णके हृदयरूपी सिंहासनपर आसीन, ६८७. वंशीधरा = कृष्णरूपसे वंशी धारण करनेवाली, ६८८. कृष्णवेषा=श्रीकृष्णका वेषं धारण करनेवाली, ६८९. स्रग्विणी=पुष्पोंके हारोंसे अलंकृत, ६९०, वनमालिनी=वनमाला धारण करनेवाली ॥ ९३ ॥ ६९१. किरीटधारिणी=मस्तकपर किरीट धारण करनेवाली, ६९२. याना=यानस्वरूपा, ६९३. मन्दमन्दगतिः=धीरे-धीरे चलनेवाली, ६९४. गतिः=सद्गतिस्वरूपा अथवा गमनशक्तिरूपा, ६९५. चन्द्रकोटिप्रतीकाशा=कोटिचन्द्रतुल्या, ६९६. तन्वी=कृशाङ्गी, ६९७. कोमलविग्रहा=मृदुल शरीरवाली ॥ ९४ ॥ ६९८. भैष्मी=भीष्मपुत्री रुक्मिणीरूपा, ६९९. भीष्मसुता=राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी, ७००. अभीमा= अभयंकर—सौम्यरूपवाली, ७०१. रुक्मिणी = श्रीकृष्णकी प्रमुख पटरानी, ७०२. रुक्मरूपिणी = सुनहले रूपवाली, ७०३. सत्यभामा=सत्राजित्की पुत्री, श्रीकृष्णप्रिया, ७०४. जाम्बवती = जाम्बवान् द्वारा पोषित एवं उन्हींसे प्राप्त दिव्यरूपा पटरानी, ७०५. सत्या='सत्या' नामवाली श्रीकृष्णकी पटरानी. ७०६. भद्रा= 'भद्रा' नामवाली पटरानी, ७०७. सुदक्षिणा=परम उदारस्वरूपा श्रीकृष्णकी पटरानी ॥ ९५ ॥ ७०८. मित्रविन्दा='मित्रविन्दा' नामवाली पटरानी, ७०९. सखी=राधारानीकी सखी, ७१०. वृन्दा = वृन्दावनकी अधिदेवी, ७११. 'वृन्दारण्यध्वजोर्ध्वगा=वृन्दावनकी ध्वजतुल्या—ऊर्ध्वगामिनी, ७१२. शृङ्गारकारिणी = शृङ्गार करनेवाली, ७१३. शृङ्गा = शृङ्गस्वरूपा, ७१४. शृङ्गभूः=शिखरभूमि, ७१५. शृङ्गदा=शिखरपर स्थान देनेवाली, ७१६. खगा = आकाशचारिणी ॥ ९६ ॥ ७१७. तितिक्षा = क्षमा, ७१८. ईक्षा = ईक्षणस्वरूपा, ७१९. स्मृतिः=स्मरण-शक्ति, ७२०. स्पर्धा = स्पर्धारूपा, ७२१. स्पृहा = अभिलाषा, ७२२. श्रद्धा=आस्तिक्य-बुद्धिस्वरूपा, ७२३. स्वनिर्वृतिः = निजानन्दस्वरूपा, ७२४. ईशा=ईशनकर्त्री, ७२५. तृष्णा = कामना, ७२६.

आशा निद्रा योगनिद्रा योगिनी योगदाऽयुगा। निष्ठा प्रतिष्ठा शमितिः सत्त्वप्रकृतिरुत्तमा ॥९८॥
तमःप्रकृतिदुर्मर्षी रजःप्रकृतिरानतिः। क्रियाऽक्रिया कृतिर्ग्लानिः सात्त्विक्याध्यात्मिकी वृषा।
सेवाशिखामणिर्वृद्धिराहूतिः पिंगलोद्भवा। नागभाषा नागभूषा नागरी नगरी नगा ॥१००॥
नौर्नौका भवनौर्भाव्या भवसागरसेतुका। मनोमयी दारुमयी सैकती सिकतामयी ॥१०१॥
लेख्या लेप्या मणिमयी प्रतिहेमविनिर्मिता। शैली शैलभवा शीला शीकराभा चलाऽचला ॥१०२॥
अस्थिता स्वस्थिता तूली वैदिकी तांत्रिकी विधिः। संध्या संध्याभ्रवसना वेदसंधिः सुधामयी ॥१०३॥
सायंतनी शिखा वेध्या सूक्ष्मा जीवकलाकृतिः। आत्मभूता भाविताऽण्वी प्रह्वी कमलकर्णिका १०४॥
नीराजनी महाविद्या कंदली कार्यसाधनी। पूजा प्रतिष्ठा विपुला पुनंती पारलौकिकी ॥१०५॥

भिदा = भेदस्वरूपा, ७२७. प्रीतिः = प्रेम या प्रसन्नता, ७२८. हिंसा = हिंसावृत्तिरूपा, ७२९. याच्ञा = याचनारूपा, ७३०. क्लमा = क्लान्तिरूपा अथवा अक्लमा—क्लमरहिता, ७३१. कृषिः = कृषि (वार्ताका एक भेद) ॥ ९७ ॥ ७३२. आशा = आशारूपिणी, ७३३. निद्रा=निद्राकी अधिष्ठात्री या निद्रारूपा, ७३४. योगनिद्रा=योगनिद्रा, जिसका आश्रय लेकर भगवान् विष्णु चार मासतक शयन करते हैं, ७३५. योगिनी= योगिनीरूपा, ७३६. योगदा = योगदायिनी, ७३७. युगा=युगस्वरूपा, ७३८. निष्ठा = परम गति, आश्रय-शक्ति अथवा आधारस्वरूपा, ७३९. प्रतिष्ठा = प्रतिष्ठास्वरूपा, आश्रय अथवा अवलम्ब, ७४०. शमितिः= शमनस्वरूपा, ७४१. सत्त्वप्रकृतिः=सत्त्वगुणमयी प्रकृतिवाली, ७४२. उत्तमा = उत्कृष्टस्वरूपा ॥ ९८ ॥ ७४३. तमःप्रकृतिदुर्मर्षी = तमोगुणमय स्वभावको दुःखसे सहन करनेवाली, ७४४. रजःप्रकृतिः=रजोगुण-प्रधान प्रकृतिरूपा, ७४५. आनतिः=सब ओरसे नमनशीला, ७४६. क्रिया = क्रियाशक्ति, ७४७. अक्रिया= निष्क्रिय, ७४८. कृतिः=प्रयत्नरूपा, ७४९. ग्लानिः = ग्लानिरूपिणी, ७५०. सात्त्विकी=सत्त्वप्रधाना शक्ति, ७५१. आध्यात्मिकी = आध्यात्मिक शक्ति, ७५२. वृषा=धर्मस्वरूपा ॥ ९९ ॥ ७५३. सेवा = सेवारूपिणी, ७५४. शिखा=नदियोंकी शिखाभूता, ७५५. मणिः=मणि-रत्नस्वरूपा, ७५६. वृद्धिः = अभ्युदयकी हेतुभूता, ७५७. आहूतिः = आह्वानस्वरूपा, ७५८. पिङ्गलोद्भवा=पिङ्गला नाड़ीसे उत्पन्न, ७५९. नागभाषा=नागोंकी भाषाको जाननेवाली अथवा नागोंसे भाषण करनेवाली, ७६०. नागभूषा=नागोंसे भूषित, ७६१. नागरी=नागरी अर्थात् चतुरा, ७६२. नगरी=नगरस्वरूपा, ७६३. नगा=वृक्ष अथवा गिरिरूपा ॥ १०० ॥ ७६४. नौः = नाव, ७६५. नौका = नाव, ७६६. भवनौः = संसारसागरसे पार उतारनेवाली नौका, ७६७. भाव्या = मनमें भावना (ध्यान) करनेयोग्य, ७६८. भवसागरसेतुका = भवसागरसे पार जानेके लिये सेतुरूपा, ७६९. मनोमयी = मनःस्वरूपा, ७७०. दारुमयी = काष्ठकी बनी, ७७१. सैकती = सिकतासे निर्मित ७७२. सिकतामयी = बालुकासे परिपूर्ण या बालुकामयी ॥ १०१ ॥ ७७३. लेख्या = चित्रमयी, ७७४. लेप्या = मिट्टीकी प्रतिमा, ७७५. मणिमयी = मणिनिर्मित प्रतिमा, ७७६. प्रतिमा हेमनिर्मिता = सोनेकी बनी प्रतिमा, ७७७. शैली = शिलामयी प्रतिमा, ७७८. शैलभवा = पर्वतसे प्रकट प्रतिमा, ७७९. शीला = शीलयुक्ता अथवा शीलस्वरूपा, ७८०. शीकराभा = जलकणों अथवा जलकी फुहारोंसे शोभित, ७८१. चला = चलस्वरूपा, ७८२. अचला = अचलस्वरूपा ॥ १०२ ॥ ७८३. अस्थिता = अस्थिर, ७८४. सुस्थिता=सुस्थिर, ७८५. तूली = तूलिका, ७८६. वैदिकी = वेदोक्त पद्धति, ७८७. तान्त्रिकी = तन्त्रोक्त पद्धति, ७८८. विधिः = विधिवाक्यस्वरूपा, ७८९. संध्या = रात और दिनकी संधिवेला, ७९०. संध्यावसना = संध्या-कालिक बादल या आकाशकी भाँति लाल वस्त्रवाली, ७९१. वेदसंधिः = वेदमन्त्रोंमें संधि (संहिता) स्वरूपा, ७९२. सुधामयी = अमृतमयी ॥ १०३ ॥ ७९३. सायंतनी = सायंकालिकी शोभा, ७९४. शिखा = ज्वालामयी, ७९५. अवेध्या = अभेदनीया, ७९६. सूक्ष्मा = सूक्ष्मस्वरूपा, ७९७. जीवकला = जीवरूपा भगवत्कला, ७९८. कृतिः=कृतिरूपा, ७९९. आत्मभूता = सबकी आत्मस्वरूपा, ८००. भाविता = ध्यान या भावनाकी विषयभूता, ८०१. अण्वी = सूक्ष्मस्वरूपा ८०२. प्रह्वी = विनयशीला, ८०३. कमलकर्णिका = हृदय-कमलकी कर्णिकामें ध्येया ॥ १०४ ॥ ८०४. नीराजनी = आरती, ८०५. महाविद्या=तत्त्व-साक्षात्कार करानेवाली महावाक्यबोधात्मिका महाविद्या, अथवा ब्रह्मविद्यारूपा महा-

शुक्लशुक्तिमौक्तिकी च प्रतीतिः परमेश्वरी । विरजोष्णिग् विराड्वेणी वेणुका वेणुनादिनी १०६॥
आवर्तिनी वार्तिकदा वार्ता वृत्तिर्विमानगा । रासाढ्या रासिनी रासा रासमण्डलवर्तिनी ॥१०७॥
गोपगोपीश्वरी गोपी गोपीगोपालवन्दिता । गोचारिणी गोपनदी गोपानन्दप्रदायिनी ॥१०८॥
पशव्यदा गोपसेव्या कोटिशो गोगणावृता । गोपानुगा गोपवती गोविन्दपदपादुका ॥१०९॥
वृषभानुसुता राधा श्रीकृष्णवशकारिणी । कृष्णप्राणाधिका शश्वद्रसिका रसिकेश्वरी ॥११०॥
अवटोदा ताम्रपर्णी कृतमाला विहायसी । कृष्णा वेणी भीमरथी तापी रेवा महापगा ॥१११॥
वैयासकी च कावेरी तुङ्गभद्रा सरस्वती । चन्द्रभागा वेत्रवती ऋषिकुल्या ककुद्मिनी ॥११२॥
गौतमी कौशिकी सिन्धुर्बाणगङ्गाऽतिसिद्धिदा । गोदावरी रत्नमाला गंगा मन्दाकिनी बला ॥११३॥
स्वर्णदी जाह्नवी वेला वैष्णवी मंगलालया । बाला विष्णुपदी प्रोक्ता सिन्धुसागरसंगता ॥११४॥

विद्या, ८०६. कन्दली = सुखकी अंकुरस्वरूपा, ८०७. कार्यसाधनी = भक्तजनोंके अभीष्ट कार्यको सिद्ध करनेवाली, ८०८. पूजा = अर्चना, ८०९. प्रतिष्ठा = स्थापना, ८१०. विपुला = विपुलस्वरूपा, ८११. पुनन्ती=पवित्र करनेवाली, ८१२. पारलौकिकी = परलोकके लिये हितकारिणी ॥ १०५ ॥ ८१३. शुक्लशुक्तिः = श्वेत सीपी या सुतुहीकी उपलब्धिका स्थान, ८१४. मौक्तिकी = मुक्तास्वरूपा, ८१५. प्रतीतिः = प्रतीतिस्वरूपा, ८१६. परमेश्वरी = परमेश्वरप्रिया, ८१७. विरजा = निर्मला, ८१८. उष्णिक् = वैदिक छन्द-विशेष, ८१९, विराट्=विराट्स्वरूपा, ८२०. वेणी = त्रिवेणीरूपा, ८२१. वेणुका = वंशीरूपिणी, ८२२. वेणुनादिनी=वेणुनाद करनेवाली—बाँसुरीकी तान छेड़नेवाली ॥ १०६ ॥ ८२३. आवर्तिनी = भँवरोंसे युक्ता, ८२४. वार्तिकदा = वार्तिकदायिनी, ८२५. वार्ता = कृषि, गोरक्षा और वाणिज्यके भेदसे त्रिविध वार्ता, ८२६. वृत्तिः = जीविकारूपा, ८२७. विमानगा = विमानपर यात्रा करनेवाली, ८२८. रासाढ्या = रासजनित सुखसे सम्पन्न, ८२९. रासिनी = रासपरायणा, ८३०. रासा = रासस्वरूपा, ८३१. रासमण्डलवर्तिनी = रासमण्डलमें वर्तमान ॥ १०७ ॥ ८३२. गोपगोपीश्वरी = गोपों तथा गोपांगनाओंकी आराध्या ईश्वरी, ८३३. गोपी = गोपीरूपा, ८३४. गोपीगोपालवन्दिता = गोपियों और ग्वालोंसे वन्दित, ८३५. गोचारिणी = अपने तटपर गौओंको चरनेके लिये स्थान और सुविधा देनेवाली, ८३६. गोपनदी = गोपोंकी नदी, ८३७. गोपानन्दप्रदायिनी = गोपोंको आनन्द प्रदान करनेवाली ॥ १०८ ॥ ८३८. पशव्यदा = पशुओंके लिये हितकर घास प्रदान करनेवाली, ८३९. गोपसेव्या = गोपोंके द्वारा सेवनीया, ८४०. कोटिशो गोगणावृता = करोड़ों गौओंके समुदायसे घिरी हुई, ८४१. गोपानुगा = गोपगण जिनका अनुगमन करते हैं या गोप जिनके सेवक हैं, ऐसी, ८४२. गोपवती = गोपोंसे युक्त, ८४३. गोविन्दपदपादुका = गोविन्द-चरणोंकी पादुकास्वरूपा ॥ १०९ ॥ ८४४. वृषभानुसुता = वृषभानुनन्दिनी राधासे अभिन्न, ८४५. राधा = श्रीकृष्णकी आराध्या राधास्वरूपा, ८४६. श्रीकृष्णवशकारिणी = श्रीकृष्णको वशमें कर लेनेवाली, ८४७. कृष्णप्राणाधिका = श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय, ८४८. शश्वद्रसिका = नित्यरसिका, ८४९. रसिकेश्वरी = रसिकोंकी ईश्वरी ॥ ११० ॥ ८५०. अवटोदा = अवटोदा नामकी नदी, ८५१. ताम्रपर्णी = ताम्रपर्णी नामकी नदी, ८५२. कृतमाला = इसी नामवाली नदी, ८५३. विहायसी = विहायसी नदी, ८५४. कृष्णा = कृष्णा नदी, ८५५. वेणा = वेणा नामकी नदी, ८५६. भीमरथी = भीमा नामकी नदी, ८५७. तापी = तापती नामकी नदी, ८५८. रेवा = नर्मदा, ८५९. महापगा = विशाल नदी, अथवा महानदी नामकी नदी ॥ १११ ॥ ८६०. वैयासकी = वैयासकी (व्यास) नदी, ८६१. कावेरी = कावेरी नदी, ८६२. तुङ्गभद्रा = तुङ्गभद्रा नामकी नदी, ८६३. सरस्वती=सरस्वती नदी, ८६४. चन्द्रभागा=इसी नामकी नदी, ८६५. वेत्रवती = बेतवा नदी, ८६६. ऋषिकुल्या = इसी नामकी नदी, ८६७. ककुद्मिनी = ककुद्मिनी नदी ॥ ११२ ॥ ८६८ गौतमी = गोदावरी, ८६९. कौशिकी = कोसी नदी, ८७०. सिन्धुः = सिन्धु नद, ८७१. बाणगङ्गा = अर्जुनके बाणसे प्रकट हुई पातालगंगा, ८७२. अतिसिद्धिदा = अत्यन्त सिद्धि प्रदान करनेवाली, ८७३. गोदावरी = गौतमी, ८७४. रत्नमाला = रत्नमाला नदी, ८७५. गंगा = गंगा नदी, ८७६. मन्दाकिनी = आकाशगंगा, ८७७. बला = बला नामकी नदी ॥ ११३ ॥ ८७८. स्वर्णदी = स्वर्गलोककी नदी गङ्गा, ८७९. जाह्नवी = जह्नुनन्दिनी गङ्गा, ८८०. वेला = वेला नदी, ८८१. वैष्णवी = विष्णुकुल्या, ८८२. मङ्गलालया = मङ्गलका आवास,

गंगासागरशोभाढ्या सामुद्री रत्नदा धुनी । भागीरथी स्वर्धुनी भूः श्रीवामनपदच्युता ॥११५॥
लक्ष्मी रमा रमणीया भार्गवी विष्णुवल्लभा । सीताऽर्चिर्जानकी माता कलंकरहिता कला ॥११६॥
कृष्णपादाब्जसंभूता सर्वा त्रिपथगामिनी । धरा विश्वंभराऽनन्ता भूमिर्धात्री क्षमामयी ॥११७॥
स्थिरा धरित्री धरणी उर्वी शेषफणस्थिता । अयोध्या राघवपुरी कौशिकी रघुवंशजा ॥११८॥
मथुरा माथुरी पंथा यादवी ध्रुवपूजिता । मयायुर्बिल्वनीलोदा गङ्गाद्वारविनिर्गता ॥११९॥
कुशावर्तमयी ध्रौव्या ध्रुवमण्डलमध्यगा । काशी शिवपुरी शेषा विंध्या वाराणसी शिवा ॥१२०॥
अवंतिका देवपुरी प्रोज्ज्वलोज्जयिनी जिता । द्वारावती द्वारकामा कुशभूता कुशस्थली ॥१२१॥
महापुरी सप्तपुरी नन्दिग्रामस्थलस्थिता । शालग्रामशिलादित्या शंभलग्राममध्यगा ॥१२२॥
वंशगोपालिनी क्षिप्रा हरिमन्दिरवर्तिनी । बर्हिष्मती हस्तिपुरी शक्रप्रस्थनिवासिनी ॥१२३॥
दाडिमी सैंधवी जंबूः पौष्करी पुष्करप्रसूः । उत्पलावर्तगमना नैमिषी नैमिषावृता ॥१२४॥

---

८८३. वाला = वाला नदी, ८८४. विष्णुपदी = गंगा, ८८५. सिन्धुसागरसंगता = गंगासागर-संगम-स्वरूपा ॥ ११४ ॥ ८८६. गंगासागरशोभाढ्या = गंगा और सागरके संगमकी शोभासे सम्पन्न, ८८७. सामुद्री = समुद्रप्रिया, ८८८. रत्नदा = रत्न प्रदान करनेवाली, ८८९ धुनी = नदीरूपा, ८९०. भागीरथी = राजा भगीरथके द्वारा लायी गयी गंगा, ८९१. स्वर्धुनीभूः = गंगाके प्राकट्यकी भूमि, ८९२. श्रीवामनपदच्युता = श्रीवामनके चरणोंसे च्युत हुई ॥ ११५ ॥ ८९३. लक्ष्मीः = लक्ष्मीस्वरूपा, ८९४. रमा = पद्मा, ८९५ रमणीया = रमणीयतासे युक्त, ८९६. भार्गवी = भृगुपुत्री, ८९७. विष्णुवल्लभा = भगवान् विष्णुकी प्रिया, ८९८. सीता = सीतास्वरूपा, ८९९. अर्चिः = अग्निज्वालारूपिणी, ९००. जानकी = जनकनन्दिनी, ९०१. माता = जगज्जननी, ९०२. कलंकरहिता = निष्कलंका, ९०३. कला = भगवत्कलास्वरूपा ॥ ११६ ॥ ९०४. कृष्णपादाब्जसम्भूता = श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई, ९०५. सर्वा = सर्वस्वरूपा, ९०६. त्रिपथगामिनी = त्रिपथगा गंगा, ९०७. धरा = धरणीस्वरूपा, ९०८. विश्वम्भरा = विश्वका भरण-पोषण करनेवाली, ९०९. अनन्ता = अन्तरहिता, ९१०. भूमिः = आधारभूमिस्वरूपा, ९११. धात्री = धाय, ९१२. क्षमामयी = क्षमास्वरूपा ॥ ११७ ॥ ९१३. स्थिरा = स्थिरस्वरूपा, ९१४. धरित्री = धारण करनेवाली, ९१५. धरणी = लोकधारिणी पृथ्वी, ९१६. उर्वी = भूमि, ९१७. शेषफणस्थिता = शेषनागके फणोंपर रहनेवाली, ९१८. अयोध्या = जिसके साथ युद्ध न किया जा सके, ऐसी अजेय पुरी, ९१९. राघवपुरी = राघवेन्द्रकी नगरी, ९२०. कौशिकी = कुशिकवंशजा, ९२१. रघुवंशजा = रघुकुलमें उत्पन्न होनेवाली ॥११८॥ ९२२. मथुरा = मथुरा नगरी, ९२३. माथुरी = मथुरामंडलमें प्रकट, ९२४. पन्था = मार्गस्वरूपा, ९२५. यादवी = यदुवंशियोंकी नगरी, ९२६. ध्रुवपूजिता = ध्रुवसे प्रशंसित, ९२७. मयायुः = मयासुरको आयु प्रदान करनेवाली, ९२८. विल्वनीलोदा = बिल्वके समान नील रंगके जलवाली, ९२९. गंगाद्वारविनिर्गता = हरद्वारसे निकली हुई ॥ ११९ ॥ ९३०. कुशावर्तमयी = कुशावर्तनामक तीर्थस्वरूपा, ९३१. ध्रौव्या = ध्रुवत्वसे युक्त, ९३२. ध्रुवमण्डलमध्यगा = ध्रुवमण्डलके बीचसे निकली हुई, ९३३. काशी = वाराणसी, ९३४. शिवपुरी = शिवकी नगरी, ९३५. शेषा = शेषस्वरूपा ९३६. विन्ध्या = विन्ध्यस्वरूपा, ९३७. वाराणसी = काशी, ९३८. शिवा = शिवस्वरूपा ॥ १२० ॥ ९३९. अवन्तिका = मालव प्रदेशकी राजधानी और महाकालकी नगरी, ९४०. देवपुरी = देवनगरी, ९४१. प्रोज्ज्वला = प्रकृष्ट शोभासे सम्पन्न, ९४२. उज्जयिनी = उज्जैन, ९४३. जिता = जितस्वरूपा, ९४४. द्वारावती = द्वारकापुरी, ९४५. द्वारकामा = द्वारकी कामनावाली, ९४६. कुशभूता = कुशके प्रकट होनेका स्थान, ९४७. कुशस्थली = कुशोंकी उत्पत्ति स्थली द्वारका ॥ १२१ ॥ ९४८. महापुरी = महानगरी, ९४९. सप्तपुरी = सप्तपुरीस्वरूपा, ९५०. नन्दिग्रामस्थलस्थिता = नन्दिग्रामके स्थलमें स्थित सरयू अथवा यमुना, ९५१. शालग्रामशिलादित्या = शालग्रामशिलाकी उत्पत्तिका स्थान गण्डकी नदी, ९५२. शम्भलग्राममध्यगा = शम्भल ग्रामके मध्यमें गयी हुई ॥१२२॥ ९५३. वंशगोपालिनी = वंशगोपाल मन्त्रसे युक्त, ९५४. क्षिप्रा = क्षिप्रस्वरूपा, ९५५. हरिमन्दिरवर्तिनी = भगवान्के मन्दिरमें विद्यमान, ९५६. बर्हिष्मती = बर्हिष्मती नामकी नगरी, ९५७. हस्तिपुरी = हस्तिनापुर नगरी,

कुरुजांगलभूः काली हैमवत्यर्बुदी बुधा । शूकरक्षेत्रविदिता श्वेतवाराहधारिता ॥१२५॥
सर्वतीर्थमयी तीर्था तीर्थानां तीर्थकारिणी । हारिणी सर्वदोषाणां दायिनी सर्वसम्पदाम् ॥१२६॥
वर्द्धिनी तेजसां साक्षाद्गर्भवासनिकृंतनी । गोलोकधामधनिनी निकुञ्जनिजमंजरी ॥१२७॥
सर्वोत्तमा सर्वपुण्या सर्वसौंदर्य्यशृङ्खला । सर्वतीर्थोपरिगता सर्वतीर्थाधिदेवता ॥१२८॥
श्रीदा श्रीशा श्रीनिवासा श्रीनिधिः श्रीविभावना । स्वक्षा स्वङ्गा शतानन्दा नन्दा ज्योतिर्गणेश्वरी१२९॥
नाम्नां सहस्रं कालिंद्याः कीर्तिदं कामदं परम् । महापापहरं पुण्यमायुर्वर्द्धनमुत्तमम् ॥१३०॥
एकवारं पठेद्रात्रौ चौरेभ्यो न भयं भवेत् । द्विवारं प्रपठेन्मार्गे दस्युभ्यो न भयं क्वचित् ॥१३१॥
द्वितीयां तु समारभ्य पठेत्पूर्णावधिं द्विजः । दशवारमिदं भक्त्या ध्यात्वा देवीं कलिंदजाम् ॥१३२॥
रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात् । गुर्विणी जनयेत्पुत्रं विद्यार्थी पंडितो भवेत् ॥१३३॥
मोहनं स्तंभनं शश्वद्वशीकरणमेव च । उच्चाटनं घातनं च शोषणं दीपनं तथा ॥१३४॥
उन्मादनं तापनं च निधिदर्शनमेव च । यद्यद्वांच्छति चित्तेन तत्तत्प्राप्नोति मानवः ॥१३५॥
ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः । वैश्यो निधिपतिर्भूयाच्छूद्रः श्रुत्वा तु निर्मलः॥१३६॥

---

९५८. शक्रप्रस्थनिवासिनी = इन्द्रप्रस्थ (देहली) में निवास करनेवाली ॥ १२३ ॥ ९५९. दाडिमी = दाडिम-फलस्वरूपा, ९६०. सैन्धवी = सिन्धुप्रिया, ९६१. जम्बूः = जम्बूनदीरूपा, ९६२. पौष्करी = पुष्करद्वीपसे सम्बन्ध रखनेवाली, ९६३. पुष्करप्रसूः = पुष्करकी उत्पत्तिका स्थान, ९६४. उत्पलावर्तगमना = उत्पलावर्त तीर्थमें जानेवाली, ९६५. नैमिषी = नैमिषारण्यवासिनी ॥ १२४ ॥ ९६६. अनिमिषादृता = देवपूजिता, ९६७. कुरु-जांगलभूः = कुरुजांगल देशमें प्रकट, ९६८. काली = कृष्णवर्णा अथवा कालीगंगा, ९६९. हैमवती = हिमालयसे उत्पन्न, ९७०. आर्बुदी = आबूमें प्रकट, ९७१. बुधा = विदुषी, ९७२. शूकरक्षेत्रविदिता = शूकरक्षेत्रमें प्रसिद्ध, ९७३. श्वेतवाराहधारिता = श्वेतवाराहके द्वारा धारित ॥ १२५ ॥ ९७४. सर्वतीर्थमयी = सर्वतीर्थस्वरूपा, ९७५. तीर्था = तीर्थभूता, ९७६. तीर्थानां तीर्थकारिणी = तीर्थोंको तीर्थ बनानेवाली, ९७७. हारिणी सर्वदोषा-णाम् = सब दोषोंको हर लेनेवाली, ९७८. दायिनी सर्वसम्पदाम् = सब सम्पत्तियोंको देनेवाली ॥ १२६ ॥ ९७९. वर्धिनी तेजसाम् = तेजको बढ़ानेवाली, ९८०. साक्षात् = प्रत्यक्ष प्रकट, ९८१. गर्भवासनिकृन्तनी = माताके गर्भमें वास करनेके कष्टका उच्छेद करनेवाली, ९८२. गोलोकधाम = गोलोककी प्रकाशरूपा, ९८३. धनिनी= धनसे सम्पन्न, ९८४. निकुञ्जनिजमञ्जरी = निकुञ्जमें अपनी मञ्जरियोंके साथ रहनेवाली ॥ १२७ ॥ ९८५. सर्वो-त्तमा = सबसे उत्तम, ९८६. सर्वपुण्या=सर्वाधिक पुण्यशालिनी, ९८७. सर्वसौन्दर्यशृङ्खला = सम्पूर्ण सुन्दरताको बाँध रखनेवाली, ९८८. सर्वतीर्थोपरिगता=सब तीर्थोंके ऊपर पहुँची हुई, ९८९ सर्वतीर्थाधिदेवता=सम्पूर्ण तीर्थोंकी अधिदेवी ॥ १२८ ॥ ९९०. श्रीदा=धनदात्री, ९९१. श्रीशा=लक्ष्मीकी अधिष्ठात्रीं, ९९२. श्रीनिवासा = लक्ष्मीकी आश्रयरूपा, ९९३. श्रीनिधिः = लक्ष्मीकी निधि, ९९४. श्रीविभावना = लक्ष्मीका चिन्तन करनेवाली, ९९५. स्वक्षा = सुन्दर नयनोंवाली, ९९६. स्वङ्गा = सुन्दर अंगोंवाली, ९९७. शतानन्दा = सैकड़ों प्रकारके आनन्दसे भरपूर, ९९८. नन्दा = आनन्ददात्री, ९९९. ज्योतिः = ज्योतिस्वरूपा, १०००. गणेश्वरी = निज गणोंकी अधीश्वरी ॥ १२९ ॥ कालिन्दीके सहस्रनामका वर्णन कीर्ति देनेवाला तथा उत्तम कामपूरक है। यह बड़े-बड़े पापोंको हर लेता, पुण्य देता और आयुको बढ़ानेवाला श्रेष्ठ साधन है ॥ १३० ॥ रातमें एक बार इसका पाठ कर ले तो चोरोंसे भय नहीं होता। रास्तेमें दो बार पढ़ ले तो डाकुओं और लुटेरोंसे कहीं भय नहीं होता ॥ १३१ ॥ द्विजको चाहिये कि वह द्वितीयासे पूर्णिमातक प्रतिदिन कालिन्दी देवीका ध्यान करके भक्ति-भावसे दस बार इस सहस्रनामका पाठ करे, ऐसा करनेसे यदि रोगी हो तो रोगसे छूट जाता है, कैदमें पड़ा हो तो वहाँके बन्धनसे मुक्त हो जाता है, गर्भिणी नारी हो तो वह पुत्र पैदा करती है और विद्यार्थी हो तो वह पण्डित होता है ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ मोहन, स्तम्भन, वशीकरण, उच्चाटन, मारण, शोषण, दीपन, उन्मादन, तापन, निधिदर्शन आदि जो-जो वस्तु मनुष्य मनमें चाहता है, उस-उसको वह इससे प्राप्त कर लेता है ॥१३४॥ ॥ १३५ ॥ इसके पाठसे ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होता है, क्षत्रिय पृथ्वीका आधिपत्य प्राप्त करता है, वैश्य

पूजाकाले तु यो नित्यं पठते भक्तिभावतः। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥१३७॥
शतवारं पठेन्नित्यं वर्षावधिमतः परम्। पटलं पद्धतिं कृत्वा स्तवं च कवचं तथा ॥१३८॥
सप्तद्वीपमहीराज्यं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥१३९॥
निष्कारणं पठेद्यस्तु यमुनाभक्तिसंयुतः। त्रैवर्ग्यमेत्य सुकृती जीवन्मुक्तो भवेदिह ॥१४०॥
निकुंजलीलाललितं मनोहरं कलिंदजाकूललताकदम्बकम्।
वृन्दावनोन्मत्तमिलिंदशब्दितं व्रजेत्स गोलोकमिदं पठेच्च यः ॥१४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीसौभरिमांधातृसंवादे श्रीयमुनासहस्रनामकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

(श्रीबलदेवजीके हाथों प्रलम्बवध)

श्रीनारद उवाच

इति कृष्णास्तवं श्रुत्वा मान्धाता नृपसत्तमः। अयोध्यां प्रययौ वीरो नत्वा श्रीसौभरिं मुनिम्॥ १ ॥
इदं मया ते कथितं गोपीनां चरितं शुभम्। महापापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २ ॥

बहुलाश्व उवाच

श्रुतं तव मुखाद्ब्रह्मन्गोपीनां वर्णनं परम्। यमुनायाश्च पञ्चाङ्गं महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥
श्रीकृष्णः सबलः साक्षाद्गोलोकाधिपतिः प्रभुः। अग्रे चकार कां लीलां ललितां व्रजमंडले ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच

एकदा चारयन्गाः स्वाः सबलो गोपबालकैः। भांडीरे यमुनातीरे बाललीलां चकार ह ॥ ५ ॥
विहारं कारयन्बालैर्वाह्यवाहकलक्षणम्। विजहार वने कृष्णो दर्शयन्गा मनोहराः ॥ ६ ॥

खजानेका मालिक होता है और शूद्र इसको सुनकर निर्मल—शुद्ध हो जाता है ॥ १३६ ॥ जो पूजाकालमें प्रतिदिन भक्तिभावसे इसका पाठ करता है, वह जलसे अलिप्त रहनेवाले कमलपत्रकी भाँति पापोंसे कभी लिप्त नहीं होता ॥ १३७ ॥ जो लोग एक वर्षतक पटल और पद्धतिकी विधिका पालन करके प्रतिदिन इस सहस्र-नामका सौ बार पाठ करते हैं और उसके बाद स्तोत्र और कवच पढ़ते हैं, वे सातों द्वीपोंसे युक्त पृथिवीका राज्य प्राप्त कर लेते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥१३८॥१३९॥ जो यमुनाजीमें भक्तिभाव रखकर निष्कामभावसे इसका पाठ करता है, वह पुण्यात्मा धर्म-अर्थ-काम—इस त्रिवर्गको पाकर इस जीवनमें ही जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ १४० ॥ जो इस प्रसङ्गका पाठ करता है, वह निकुञ्जलीलासे ललित, मनोहर तथा कालिन्दीतटके लता-समुदायोंसे विलसित वृन्दावनके मतवाले भ्रमरोंसे अनुनादित गोलोकधाममें पहुँच जाता है ॥ १४१ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार यमुनाजीका सहस्रनामस्तोत्र सुनकर वीरभूप-शिरोमणि मांधाता सौभरि मुनिको नमस्कार करके अयोध्यापुरीको चले गये ॥ १ ॥ यह मैंने गोपियोंके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो महान् पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यप्रद है। बताओ, और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २ ॥ बहुलाश्व बोले—हे ब्रह्मन्! मैंने आपके मुखसे गोपियोंके चरित्रका उत्तम वर्णन सुना। साथ ही यमुनाके पञ्चाङ्गका भी श्रवण किया, जो बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है ॥ ३ ॥ साक्षात् गोलोकके अधिपति भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ व्रजमण्डलमें आगे कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं, यह बताइये ॥ ४ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन्! एक दिन श्रीबलराम और ग्वाल-बालोंके साथ अपनी गौएँ चराते हुए श्रीकृष्ण भाण्डीरवनमें यमुनाजीके तटपर बालोचित खेल खेलने लगे ॥ ५ ॥ बालकोंसे वाह्य-वाहकका खेल

तत्रागतो गोपरूपी प्रलंबः कंसनोदितः । न ज्ञातो बालकैः सोपि हरिणा विदितोऽभवत् ॥ ७ ॥
विहारे विजयं रामं नेतुं कोपि न मन्यते । उवाह तं प्रलंबोऽसौ भांडीराद्यमुनातटम् ॥ ८ ॥
अवरोहणतो दैत्यो मथुरां गंतुमुद्यतः । दधार घनवद्रूपं गिरीन्द्र इव दुर्गमः ॥ ९ ॥
बभौ बलो दैत्यपृष्ठे सुन्दरो लोलकुण्डलः । आकाशस्थः पूर्णचन्द्रः सतडिज्जलदो यथा ॥१०॥
दैत्यं भयंकरं वीक्ष्य बलदेवो महाबलः । रुषाऽहनन्मुष्टिना तं शिरस्यद्रिं यथाऽद्रिभित् ॥११॥
विशीर्णमस्तको दैत्यो यथा वज्रहतो गिरिः । पपात भूमौ सहसा चालयन्वसुधातलम् ॥१२॥
तज्ज्योतिर्निर्गतं दीर्घं बले लीनं बभूव ह । तदैव ववृषुर्देवाः पुष्पैर्नन्दनसंभवैः ॥१३॥
अभूज्जयजयारावो दिवि भूमौ नृपेश्वर । एवं श्रीबलदेवस्य चरितं परमाद्भुतम् ॥
मया ते कथितं राजन्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१४॥

बहुलाश्व उवाच

कोऽयं दैत्यः पूर्वकाले प्रलंबो रणदुर्मदः । बलदेवस्य हस्तेन मुक्तिं प्राप कथं मुने ॥१५॥

श्रीनारद उवाच

शिवस्य पूजनार्थं हि यक्षराट् स्ववने शुभे । कारयामास पुष्पाणां रक्षां यक्षैरितस्ततः ॥१६॥
तदप्यस्यापि जगृहुः पुष्पाणि प्रस्फुरंति च । ततः क्रुद्धो ददौ शापं यक्षराड् धनदो बली ॥१७॥
ये गृह्णंत्यस्य पुष्पाणि स्वे चान्ये सुरमानवाः । भवितारोऽसुराः सर्वे मच्छापात्सहसा भुवि ॥१८॥

करवाते हुए श्रीकृष्ण मनोहर गौओंकी देख-भाल करते हुए वनमें विहार करते थे। (इस खेलमें कुछ लड़के वाहन—घोड़ा आदि बनते और कुछ उनकी पीठपर सवारी करते थे।) ॥ ६ ॥ उस समय वहाँ कंसका भेजा हुआ असुर प्रलम्ब गोपरूप धारण करके आया। दूसरे ग्वाल-बाल तो उसे न पहचान सके, किंतु भगवान् श्रीकृष्णसे उसकी माया छिपी न रही ॥ ७ ॥ खेलमें हारनेवाला बालक जीतनेवालेको पीठपर चढ़ाता था; किंतु जब बलरामजी जीत गये, तब उन्हें कोई भी पीठपर चढ़ानेको तैयार नहीं हुआ। उस समय प्रलम्बासुर ही उन्हें भाण्डीरवनसे यमुनातटतक अपनी पीठपर चढ़ाकर ले जाने लगा ॥ ८ ॥ एक निश्चित स्थान था, जहाँ ढोकर ले जानेवाला बालक अपनी पीठपर चढ़े हुए बालकको उतार देता था; परन्तु प्रलम्बासुर उतारनेके स्थानपर पहुँचकर भी उन्हें उतारे बिना ही मथुरातक ले जानेको उद्यत हो गया। उसने बादलोंकी घोर घटाकी भाँति भयानक रूप धारण कर लिया और विशाल पर्वतके समान दुर्गम्य हो गया ॥ ९ ॥ उस दैत्यकी पीठपर बैठे हुए सुन्दर बलरामजीके कानोंमें कान्तिमान् कुण्डल हिल रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि मानो आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा उदित हुए हों अथवा मेघोंकी घटामें बिजली चमक रही हो ॥ १० ॥ उस भयानक दैत्यको देखकर महाबली बलदेवजीको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने उसके मस्तकपर कसके एक ऐसा मुक्का मारा, मानो इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्रका प्रहार किया हो ॥ ११ ॥ उस दैत्यका मस्तक वज्रसे आहत पहाड़की तरह फट गया और वह सहसा पृथ्वीको कम्पित करता हुआ धराशायी हो गया ॥ १२ ॥ उसके शरीरसे एक विशाल ज्योति निकली और बलरामजीमें विलीन हो गयी। उस समय देवता बलरामजीके ऊपर नन्दन वनके फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ १३ ॥ हे नृपेश्वर! पृथ्वीपर और आकाशमें भी जय-जयकार होने लगी। हे राजन्! इस प्रकार श्रीबलदेवजीके परम अद्भुत चरित्रका मैंने तुम्हारे समक्ष वर्णन किया, अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ १४ ॥ राजा बहुलाश्वने पूछा—हे मुने! वह रण-दुर्मद दैत्य प्रलम्ब पूर्वजन्ममें कौन था? और बलदेवजीके हाथसे उसकी मुक्ति क्यों हुई? ॥ १५ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन्! यक्षराज कुबेरने अपने सुन्दर वनमें भगवान् शिवकी पूजाके लिये फुलवारी लगा रक्खी थी और इधर-उधर यक्षोंको तैनात करके उन फूलोंकी रक्षाका प्रबन्ध करवाया था ॥ १६ ॥ तथापि उस पुष्पवाटिकाके सुन्दर एवं चमकीले फूल लोग तोड़ लिया करते थे। इससे कुपित होकर बलवान् यक्षराज कुबेरने यह शाप दिया—॥१७॥ 'जो यक्ष इस फुलवारीके फूल लेंगे अथवा दूसरे भी जो देवता और मनुष्य आदि फूल तोड़नेका अपराध करेंगे, वे सब सहसा

हूहूसुतोऽथ विजयो विचरँस्तीर्थभूमिषु । वनं चैत्ररथं प्राप्तो गायन् विष्णुगुणान्पथि ॥१९॥
वीणापाणिरजानन्वं गन्धर्वः सुमनांसि च । गृहीत्वा सोऽसुरो जातो गन्धर्वत्वं विहाय तत् ॥२०॥
तदैव शरणं प्राप्तः कुबेरस्य महात्मनः । नत्वा तत्प्रार्थनां चक्रे कृतांजलिपुटः शनैः ॥२१॥
तस्मै प्रसन्नो राजेन्द्र कुबेरोऽपि वरं ददौ । त्वं विष्णुभक्तः शांतात्मा मा शोकं कुरु मानद ॥२२॥
द्वापरांते च ते मुक्तिर्बलदेवस्य हस्ततः । भविष्यति न सन्देहो भांडीरे यमुनातटे ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

हूहूसुतः स गन्धर्वः प्रलंबोऽभून्महासुरः । कुबेरस्य वराद्राजन्परं मोक्षं जगाम ह ॥२४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे प्रलम्बवधो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

(गोपों और गौओंकी दावाग्निसे मुक्ति और विप्रपत्नियोंको भगवद्दर्शन)

श्रीनारद उवाच

अथ क्रीडाप्रसक्तेषु गोपेषु सबलेषु च । तृणलोभेन विविशुर्गावः सर्वा महद्वनम् ॥ १ ॥
ता आनेतुं गोपबालाः प्राप्ता मुंजाटवीं पराम् । संभूतस्तत्र दावाग्निः प्रलयाग्निसमो महान् ॥ २ ॥
गोभिर्गोपाः समेतास्ते श्रीकृष्णं सबलं हरिम् । वदन्तः पाहि पाहीति भयार्ताः शरणं गताः ॥ ३ ॥
वीक्ष्य वह्निभयं स्वानां कृष्णो योगेश्वरेश्वरः । न्यमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ४ ॥
तथाभूतेषु गोपेषु तमग्निं भयकारकम् । अपिबद्भगवान्देवो देवानां पश्यतां नृप ॥ ५ ॥
एवं पीत्वा महावह्निं नीत्वा गोपालगोगणम् । प्राप्तोऽभूद्यमुनापारे शुभाशोकवने हरिः ॥ ६ ॥

मेरे शापसे भूतलपर असुर हो जायँगे।' ॥ १८ ॥ एक दिन हूहू नामक गन्धर्वका बेटा 'विजय' तीर्थभूमियोंमें विचरता तथा मार्गमें भगवान् विष्णुके गुणोंको गाता हुआ चैत्ररथ वनमें आया ॥ १९ ॥ उसके हाथमें वीणा थी। बेचारा गन्धर्व शापकी बातको नहीं जानता था, अतः उसने वहाँसे कुछ फूल ले लिये। फूल लेते ही वह गन्धर्वरूपको त्यागकर असुर हो गया ॥ २० ॥ फिर तो वह तत्काल महात्मा कुबेरकी शरणमें गया और नमस्कार करके दोनों हाथ जोड़कर धीरे-धीरे शापसे छूटनेके लिये प्रार्थना करने लगा ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र! तब उसपर प्रसन्न होकर कुबेरने भी वर दिया—'हे मानद! तुम भगवान् विष्णुके भक्त तथा शान्तचित्त महात्मा हो, इसलिये शोक न करो ॥ २२ ॥ द्वापरके अन्तमें भाण्डीर वनमें यमुनाके तटपर बलदेवजीके हाथसे तुम्हारी मुक्ति होगी, इसमें सन्देह नहीं है' ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! हूहूका पुत्र वह विजय नामक गन्धर्व ही महान् असुर प्रलम्ब हुआ और कुबेरके वरसे उसको परम मोक्षकी प्राप्ति हुई ॥ २४ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! तदनन्तर श्रीबलराम सहित समस्त ग्वाल-बाल खेलमें आसक्त हो गये। उधर सारी गौएँ घासके लोभसे विशाल वनमें प्रवेश कर गयीं ॥१॥ उनको लौटा लानेके लिये ग्वाल-बाल बहुत बड़े मूँजके वनमें जा पहुँचे। सहसा वहाँ प्रलयाग्निके समान महान् दावानल प्रकट हो गया ॥ २ ॥ उस समय गौओं सहित समस्त ग्वाल-बाल एकत्र हो बलराम सहित श्रीकृष्णको पुकारने लगे और भयसे आर्त हो, उनकी शरण ग्रहण करके 'बचाओ, बचाओ!' यों कहने लगे ॥ ३ ॥ अपने सखाओंके ऊपर अग्निका महान् भय देखकर योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्णने कहा—'डरो मत; अपनी आँखें बन्द कर लो' ॥ ४ ॥ हे नरेश्वर! जब गोपोंने ऐसा कर लिया, तब देवताओंके देखते-देखते भगवान् गोविन्ददेव उस भयकारक अग्निको पी गये ॥ ५ ॥ इस प्रकार उस महान् अग्निको पीकर ग्वालों और गौओंको साथ ले श्रीहरि यमुनाके उस पार

तत्र क्षुत्पीडिता गोपाः श्रीकृष्णं सबलं हरिम् । कृतांजलिपुटा ऊचुः क्षुधार्ताः स्मो वयं प्रभो ॥ ७ ॥
तदा तान्प्रेषयामास यज्ञ आंगिरसे हरिः । ते गत्वा तं यज्ञवरं नत्वोचुर्विमलं वचः ॥ ८ ॥

गोपा ऊचुः

गोपालबालैः सबलः समागतो गाश्चारयञ्छ्रीव्रजराजनन्दनः ।
क्षुत्संयुतोऽस्मै सगणाय भूसुराः प्रयच्छताश्वन्नमनंगमोहिने ॥ ९ ॥

श्रीनारद उवाच

न किंचिदूचुस्ते सर्वे वचः श्रुत्वा द्विजा नृप । गोपा निराशा आगत्य इत्यूचुः सबलं हरिम् ॥१०॥

गोपा ऊचुः

त्वमस्यधीशो व्रजमंडले बली श्रीगोकुले नन्दपुरोऽग्रदण्डधृक् ।
न वर्तते दण्डमलं मधोः पुरि प्रचंडचंडांशुमहस्तव स्फुरत् ॥११॥

श्रीनारद उवाच

पुनस्तान्प्रेषयामास तत्पत्नीभ्यो हरिः स्वयम् । यज्ञवाटं पुनर्गत्वा नत्वा विप्रप्रियास्तदा ॥
कृतांजलिपुटा ऊचुर्गोपाः कृष्णप्रणोदिताः ॥१२॥

गोपा ऊचुः

गोपालबालैः सबलः समागतो गाश्चारयन् श्रीव्रजराजनन्दनः ।
क्षुत्संयुतोऽस्मै सगणाय चांगनाः प्रयच्छताश्वन्नमनंगमोहिने ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

कृष्णं समागतं श्रुत्वा कृष्णदर्शनलालसाः ।
चक्रुस्तथाऽन्नं पात्रेषु नीत्वा सर्वा द्विजांगनाः ॥१४॥
त्यक्त्वा सद्यो लोकलज्जां कृष्णपार्श्वं समाययुः ।
अशोकानां वने रम्ये कृष्णातीरे मनोहरे ॥१५॥

अशोकवनमें जा पहुँचे ॥ ६ ॥ वहाँ भूखसे पीड़ित ग्वाल-बाल बलराम सहित श्रीकृष्णसे हाथ जोड़कर बोले—'हे प्रभो ! हमें बहुत भूख सता रही है' ॥ ७ ॥ तब भगवान्‌ने उनको आंगिरस यज्ञमें भेजा। वे उस श्रेष्ठ यज्ञमें जाकर नमस्कार करके निर्मल वचन बोले ॥ ८ ॥ गोपोंने कहा—हे ब्राह्मणो ! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण गौएँ चराते हुए इधर आ निकले हैं, उन सबको भूख लगी है। अतः आप सखाओं सहित उन मदनमोहन श्रीकृष्णके लिये शीघ्र ही अन्न प्रदान करें ॥ ९ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे नरेश्वर ! ग्वाल-बालोंकी वह बात सुनकर वे ब्राह्मण कुछ नहीं बोले। तब ग्वाल-बाल निराश लौट पड़े और आकर बलराम सहित श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले ॥ १० ॥ गोपोंने कहा—हे सखे ! तुम व्रज-मण्डलमें ही अधीश बने हुए हो। गोकुलमें ही तुम्हारा बल चलता है और नन्दबाबाके आगे ही तुम कठोर दण्डधारी बने हुए हो। प्रचण्ड सूर्यके समान तेजस्वी तुम्हारा प्रकाशमान दण्ड निश्चय ही मथुरापुरीमें अपना प्रभाव नहीं प्रकट करता ॥ ११ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तब श्रीहरिने उन ग्वाल-बालोंको पुनः यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंकी पत्नियोंके पास भेजा। तब वे पुनः यज्ञशालामें गये और ब्राह्मण-पत्नियोंको नमस्कार करके वे श्रीकृष्णके भेजे हुए ग्वाल हाथ जोड़कर बोले ॥ १२ ॥ गोपोंने कहा—हे ब्राह्मणी देवियों ! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ गाय चराते हुए श्रीव्रजराजनन्दन कृष्ण इधर आ गये हैं, उन्हें भूख लगी है। सखाओंसहित उन मदनमोहनके लिये आपलोग शीघ्र ही अन्न प्रदान करें ॥ १३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! श्रीकृष्णका शुभागमन सुनकर उन समस्त विप्रपत्नियोंके मनमें उनके दर्शनकी लालसा जाग उठी। उन्होंने विभिन्न पात्रोंमें भोजनकी सामग्री रख ली और तत्काल लोक-लाज छोड़कर वे श्रीकृष्णके पास चली गयीं। रमणीय अशोकवनमें यमुनाके मनोरम तटपर विप्रपत्नियोंने श्रीहरिका अद्भुत रूप जैसा

यथा श्रुतं तथा दृष्टं श्रीहरेः रूपमद्भुतम् ।
प्राप्यानंदं गताः सर्वास्तुरीयं योगिनो यथा ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

धन्या यूयं दर्शनार्थमागता हे द्विजांगनाः ।
प्रतियात गृहाञ्छीघ्रं निःशङ्का भूमिदेवताः ॥१७॥
युष्माकं तु प्रभावेण पतयो वो द्विजातयः ।
सद्यो यज्ञफलं प्राप्य युष्माभिः सह निर्मलाः ॥१८॥
गमिष्यंति परं धाम गोलोकं प्रकृतेः परम् ।
अथ नत्वा हरिं सर्वा आजग्मुर्यज्ञमण्डले ॥१९॥

श्रीनारद उवाच

ता दृष्ट्वा ब्राह्मणाः सर्वे स्वात्मानं धिक् प्रचक्रिरे ।
दिदृक्षवस्ते श्रीकृष्णं कंसाद्भीता न चागताः ॥२०॥
भुक्त्वाऽन्नं सबलः कृष्णो गोपालैः सह मैथिल ।
गाः पालयन्नाजगाम वृन्दारण्यं मनोहरम् ॥२१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे दावाग्निमोक्षविप्रपत्नीदर्शनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

(नन्द आदि गोपोंका वैकुण्ठधामदर्शन)

श्रीनारद उवाच

एकदा नंदराजोऽसौ कृत्वा चैकादशीव्रतम् । द्वादश्यां यमुनां स्नातुं गोपालैर्जलमाविशत् ॥ १ ॥
तं गृहीत्वा पाशिभृत्यः पाशिलोकं जगाम ह । तदा कोलाहले जाते गोपानां मैथिलेश्वर ॥ २ ॥
आश्वास्य सर्वान्भगवान्गतवान् वारुणीं पुरीम् । भस्मीचकार सहसा पुरीदुर्गं हरिः स्वयम् ॥ ३ ॥

सुना था, वैसा ही देखा । दर्शन पाकर वे सब उसी प्रकार परमानन्दमें निमग्न हो गयीं, जैसे योगीजन तुरीय ब्रह्मका साक्षात्कार करके आनन्दित हो उठते हैं ॥ १४–१६ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे विप्रपत्नियो ! तुमलोग धन्य हो, जो मेरे दर्शनके लिये यहाँतक चली आयीं; अब शीघ्र ही घर लौट जाओ । ब्राह्मणलोग तुमपर कोई संदेह नहीं करेंगे ॥ १७ ॥ तुम्हारे ही प्रभावसे तुम्हारे पति-देवता ब्राह्मणलोग तत्काल यज्ञका फल पाकर निर्मल हो, तुम्हारे साथ प्रकृतिसे परे विद्यमान परमधाम गोलोकको चले जायँगे ॥ १८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—तब श्रीहरिको नमस्कार करके वे सब स्त्रियाँ यज्ञशालामें चली आयीं, उन्हें देखकर सब ब्राह्मणोंने अपने-आपको धिक्कारा । वे कंसके डरसे स्वयं श्रीकृष्णको देखनेके लिये नहीं जा सके थे ॥ १९ ॥ २० ॥ हे मैथिल ! ग्वाल-बालों और बलरामजीके साथ वह अन्न खाकर श्रीकृष्ण गौओंको चराते हुए मनोहर वृन्दावनमें चले गये ॥ २१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—एक दिनकी बात है, नन्दराज एकादशीका व्रत करके द्वादशीको निशीथ-कालमें ही ग्वालोंके साथ यमुना-स्नानके लिये गये और जलमें उतरे ॥ १ ॥ वहाँ वरुणका एक सेवक उन्हें पकड़कर वरुणलोकमें ले गया । हे मैथिलेश्वर ! उस समय ग्वालोंमें कुहराम मच गया ॥ २ ॥ तब उन

कोटिमार्तंडसंकाशं दृष्ट्वा प्रकुपितं हरिम् । नत्वा कृतांजलिः पाशी परिक्रम्याह धर्षितः ॥ ४ ॥

वरुण उवाच

नमः श्रीकृष्णचंद्राय परिपूर्णतमाय च ।
असंख्यब्रह्मांडभृते गोलोकपतये नमः ॥ ५ ॥
चतुर्व्यूहाय महसे नमस्ते सर्वतेजसे ।
नमस्ते सर्वभावाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥ ६ ॥
केनापि मूढेन ममानुगेन कृतं परं हेलनमद्य एव ।
तत्क्षम्यतां भोः शरणं गतं मां परेश भूमन् परिपाहि पाहि ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

इति प्रसन्नो भगवान् नंदं नीत्वा सुजीवितम् । सौख्यं प्रकाशयन्बंधून् व्रजमंडलमाययौ ॥ ८ ॥
नन्दराजमुखाच्छ्रुत्वा प्रभावं श्रीहरेस्तु तम् । गोपीगोपगणा ऊचुः श्रीकृष्णं नंदनंदनम् ॥ ९ ॥
यदि त्वं भगवान्साक्षाल्लोकपालैः सुपूजितः ।
दर्शयाशु परं लोकं वैकुण्ठं तर्हि नः प्रभो ॥१०॥
नीत्वा सर्वांस्ततः कृष्ण एत्य वैकुण्ठमंदिरम् ।
दर्शयामास रूपं स्वं ज्योतिर्मंडलमध्यगम् ॥११॥
सहस्रभुजसंयुक्तं किरीटकटकोज्ज्वलम् । शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम् ॥१२॥
असंख्यकोटिमार्तंडसंकाशं शेषसंस्थितम् । चामरांदोलदिव्याभं ब्रह्माद्यैः परिसेवितम् ॥१३॥
तदैव तान्गोपगणान्पार्षदास्ते गदाधराः ।
ऋजुं कृत्वा नतिं धृत्वा दूरे स्थाप्य प्रयत्नतः ॥१४॥

सबको आश्वासन दे भगवान् श्रीहरि वरुणपुरीमें पधारे और उन्होंने सहसा उस पुरीके दुर्गको भस्म कर दिया ॥ ३ ॥ करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी श्रीहरिको अत्यन्त कुपित देख वरुणने तिरस्कृत होकर उन्हें नमस्कार किया और उनकी परिक्रमा करके हाथ जोड़कर कहा ॥ ४ ॥ वरुण बोले—श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है । परिपूर्णतम परमात्मा तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंका भरण-पोषण करनेवाले गोलोकपतिको नमस्कार है ॥ ५ ॥ चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट तेजोमय श्रीहरिको नमस्कार है । सर्वतेजःस्वरूप आप परमेश्वरको नमस्कार है । सर्वस्वरूप आप परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है ॥ ६ ॥ मेरे किसी मूर्ख सेवकने यह पहली बार आपकी अवहेलना की है; उसके लिये आप मुझे क्षमा करें । हे परेश ! हे भूमन् ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ; आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ७ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यह सुनकर प्रसन्न हुए भगवान् श्रीकृष्ण नन्दजीको जीवित लेकर अपने बन्धुजनोंको सुख प्रदान करते हुए व्रजमण्डलमें लौट आये ॥ ८ ॥ नन्दराजके मुखसे श्रीहरिके उस प्रभावको सुनकर गोपी और गोप-समुदाय नन्दनन्दन श्रीकृष्णसे बोले—॥ ९ ॥ 'हे प्रभो ! यदि आप लोकपालोंसे पूजित साक्षात् भगवान् हैं तो हमें शीघ्र ही उत्तम वैकुण्ठलोकका दर्शन कराइये ।' ॥ १० ॥ तब उन सबको लेकर श्रीकृष्ण वैकुण्ठधाममें गये और वहां उन्होंने ज्योतिर्मण्डलके मध्यमें विराजमान अपने स्वरूपका उन्हें दर्शन कराया ॥ ११ ॥ उनके सहस्र भुजाएं थीं, किरीट और कटक आदि आभूषणोंसे उनका स्वरूप और भी भव्य दिखायी देता था । वे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे सुशोभित थे ॥ १२ ॥ असंख्य कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी स्वरूपसे वे शेषनागकी शय्यापर पौढ़े थे । चँवर डुलाये जानेसे उनकी आभा और भी दिव्य जान पड़ती थी । ब्रह्मा आदि देवता उनकी सेवामें लगे थे ॥ १३ ॥ उस समय भगवान्‌के गदाधारी पार्षदोंने उन गोपगणोंको सीधे करके उनसे प्रणाम करवाकर उन्हें प्रयत्नपूर्वक दूर खड़ा किया और उन्हें चकित-सा देख वे पार्षद बोले—'अरे

चकितानिव तान्वीक्ष्य प्रोचुस्ते पार्षदा गिरा ।
रे रे तूष्णीं प्रभवत मा वक्तव्यं वनेचराः ॥१५॥
भाषणं मा प्रकुरुत न दृष्टा किं सभा हरेः । वेदा वदंति चात्रैव साक्षाद्देवे स्थिते प्रभौ ॥१६॥
इति शिक्षां गता गोपा हर्षिता मौनमास्थिताः । मनस्यूचुरयं कृष्ण उच्चसिंहासने स्थितः ॥१७॥
अस्मान्दूरादधःकृत्वाऽस्माभिर्वक्ति न कर्हिचित् ।
तस्माद्व्रजाद्वरं नास्ति कोपि लोको न सौख्यदः ॥१८॥
यत्रानेन स्वभ्रात्रापि वार्ता स्याद्धि परस्परम् । इति प्रवदतस्तान्वै नीत्वा श्रीभगवान् हरिः ॥
व्रजमागतवान् राजन् परिपूर्णतमः प्रभुः ॥१९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे नन्दादिवैकुंठदर्शनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

(सुदर्शनोपाख्यान)

श्रीनारद उवाच

एकदा नृप गोपालाः शकटै रत्नपूरितैः । वृषभानूपनन्दाद्या आजग्मुश्चांबिकावनम् ॥ १ ॥
भद्रकालीं पशुपतिं पूजयित्वा विधानतः ।
ददुर्दानं द्विजातिभ्यः सुप्तास्तत्र सरित्तटे ॥ २ ॥
तत्रैको निर्गतो रात्रौ सर्पो नन्दं पदेऽग्रहीत् ।
कृष्ण कृष्णेति चुक्रोश नन्दोऽतिभयविह्वलः ॥ ३ ॥
तदोल्मुकैर्गोपबालास्तोदुराजगरं नृप । पदं सोऽपि न तत्याज सर्पोऽथ स्वमणिं यथा ॥ ४ ॥
तताड स्वपदा सर्पं भगवाँल्लोकपावनः । त्यक्त्वा तदैव सर्पत्वं भूत्वा विद्याधरः कृती ॥
नत्वा कृष्णं परिक्रम्य कृतांजलिपुटोऽवदत् ॥ ५ ॥

वनचरो ! चुप हो जाओ । यहाँ वक्तृता न दो, भाषण न करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ क्या तुमने श्रीहरिकी सभा कभी नहीं देखी है ? यहाँ सबके प्रभु देवाधिदेव साक्षात् भगवान् स्थित होते हैं और वेद उनके गुण गाते हैं ।' ॥ १६ ॥ इस प्रकार शिक्षा देनेपर वे गोप हर्षसे भरकर चुपचाप खड़े हो गये । अब वे मन-ही-मन कहने लगे—'अरे ! यह ऊँचे सिंहासनपर बैठा हुआ हमारा श्रीकृष्ण ही तो है । हम समीप खड़े हैं, तो भी हमें नीचे खड़ा करके ऊँचे बैठ गया है और हमसे क्षणभरके लिये बाततक नहीं करता । इसलिये व्रजसे बढ़कर न कोई श्रेष्ठ लोक है और न उससे बढ़कर दूसरा कोई सुखदायक स्थान है ॥ १७ ॥ १८ ॥ क्योंकि व्रजमें तो यह हमारा भाई रहा है और इसके साथ हमारी परस्पर बातचीत होती रही है ।' हे राजन् ! इस प्रकार कहते हुए उन गोपोंके साथ परिपूर्णतम प्रभु भगवान् श्रीहरि व्रजमें लौट आये ॥ १९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

नारदजी कहते हैं—हे नरेश्वर ! एक समय वृषभानु और उपनन्द आदि गोपगण रत्नोंसे भरे हुए छकड़ोंपर सवार होकर अम्बिकावनमें आये ॥ १ ॥ वहाँ भगवती भद्रकाली और भगवान् पशुपतिका विधिपूर्वक पूजन करके उन्होंने ब्राह्मणोंको दान दिया और रातको वहीं नदीके तटपर सो गये ॥ २ ॥ वहाँ रातमें एक सर्प निकला और उसने नन्दका पैर पकड़ लिया । नन्द अत्यन्त भयसे विह्वल हो 'कृष्ण-कृष्ण' पुकारने लगे ॥ ३ ॥ हे नरेश्वर ! उस समय ग्वाल-बालोंने जलती हुई लकड़ियाँ लेकर उसीसे अजगरको मारना शुरू किया, तो भी उसने नन्दका पाँव उसी तरह नहीं छोड़ा, जैसे मणिधर साँप

सुदर्शन उवाच

अहं सुदर्शनो नाम विद्याधरवरः प्रभो ।
अष्टावक्रं मुनिं दृष्ट्वा हसितोऽस्मि महाबलः ॥ ६ ॥
मह्यं शापं ददौ सोऽपि त्वं सर्पो भव दुर्मते ।
तच्छापादद्य मुक्तोऽहं कृपया तव माधव ॥ ७ ॥
त्वत्पादपद्ममकरंदरजःकणानां स्पर्शेन दिव्यपदवीं सहसागतोऽस्मि ।
तस्मै नमो भगवते भुवनेश्वराय यो भूरिभारहरणाय भुवोऽवतारः ॥ ८ ॥

श्रीनारद उवाच

इति नत्वा हरिं कृष्णं राजन् विद्याधरस्तु सः ।
जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥ ९ ॥
नंदाद्या विस्मिताः सर्वे ज्ञात्वा कृष्णं परेश्वरम् ।
अंबिकावनतः शीघ्रमाययुर्व्रजमंडलम् ॥१०॥
इदं मया ते कथितं श्रीकृष्णचरितं शुभम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११॥

बहुलाश्व उवाच

अहो श्रीकृष्णचंद्रस्य चरितं परमाद्भुतम् ।
श्रुत्वा मनो मे तच्छ्रोतुमतृप्तं पुनरिच्छति ॥१२॥
अग्रे चकार कां लीलां लीलया व्रजमंडले ।
हरिर्व्रजेशः परमो वद देवर्षिसत्तम ॥१३॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां श्रीमाधुर्यखंडे नारदबहुलाश्वसंवादे सुदर्शनोपाख्यानं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अपनी मणिको नहीं छोड़ता ॥ ४ ॥ तब लोकपावन भगवान्‌ने उस सर्पको तत्काल पैरसे मारा। पैरसे मारते ही वह सर्पका शरीर त्यागकर कृतकृत्य विद्याधर हो गया। उसने श्रीकृष्णको नमस्कार करके उनकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर कहा ॥ ५ ॥ सुदर्शन बोला—हे प्रभो! मेरा नाम सुदर्शन है, मैं विद्याधरोंका मुखिया हूँ। मुझे अपने बलका बड़ा घमंड था और मैंने अष्टावक्र मुनिको देखकर उनकी हँसी उड़ायी थी ॥ ६ ॥ तब उन्होंने मुझे शाप दिया—'हे दुर्मते! तू सर्प हो जा।' हे माधव! उनके उस शापसे आज मैं आपकी कृपासे मुक्त हुआ हूँ ॥ ७ ॥ आपके चरण-कमलोंके मकरन्द एवं परागके कणोंका स्पर्श पाकर मैं सहसा दिव्य पदवीको प्राप्त हो गया। जो भूतलका भूरि-भार-हरण करनेके लिये यहाँ अवतीर्ण हुए हैं, उन भगवान् भुवनेश्वरको बारंबार नमस्कार है ॥ ८ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके वह विद्याधर सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित वैष्णव लोकको चला गया ॥ ९ ॥ उस समय श्रीकृष्णको परमेश्वर जानकर नन्द आदि गोप बड़े विस्मित हुए। फिर वे शीघ्र ही अम्बिका-वनसे व्रजमण्डलको चले गये ॥ १० ॥ इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णके शुभ चरित्रका वर्णन किया, जो पुण्यप्रद तथा सर्वपापहारी है। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ११ ॥ बहुलाश्व बोले—अहो! श्रीकृष्ण-चन्द्रका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है, उसे सुनकर मेरा मन पुनः उसे सुनना चाहता है ॥ १२ ॥ हे देवर्षि-सत्तम! व्रजेश्वर परमात्मा श्रीहरिने व्रजमण्डलमें आगे चलकर कौन-सी लीला की? ॥ १३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

(अरिष्टासुर और व्योमासुरका वध तथा माधुर्यखंडका उपसंहार)

श्रीनारद उवाच

एकदा शैलदेशेषु सबलो भगवान्हरिः । कृत्वा विलापनक्रीडां चौरपालकलक्षणाम् ॥ १ ॥
तत्र व्योमासुरो दैत्यो बालान्मेषायितान्बहून् । नीत्वा नीत्वाऽद्रिदर्यां च विनिक्षिप्य पुनः पुनः ॥ २ ॥
शिलया पिदधे द्वारं मयपुत्रो महाबलः ।
सत्यचौरं च तं ज्ञात्वा भगवान्मधुसूदनः ॥ ३ ॥
गृहीत्वा पातयामास भुजाभ्यां भूमिमंडले ॥ ४ ॥
तदा मृत्युं गतो दैत्यस्तज्ज्योतिर्निर्गतं स्फुरत् ।
दशदिक्षु भ्रमद्राजन् श्रीकृष्णे लीनतां गतम् ॥ ५ ॥
तदा जयजयारावो दिवि भूमौ बभूव ह ।
पुष्पाणि ववृषुर्देवाः परमानंदसंप्लुताः ॥ ६ ॥

बहुलाश्व उवाच

कोऽयं पूर्वं कुशलकृद्व्योमो नामाथ तद्वद ।
येन कृष्णे घनश्यामे लीनोऽभूद्दामिनी यथा ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

आसीत्काश्यां भीमरथो राजा दानपरायणः । यज्ञकृन्मानदो धन्वी विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ८ ॥
राज्ये पुत्रं सन्निवेश्य जगाम मलयाचलम् । तपस्तत्र समारेभे वर्षाणां लक्षमेव हि ॥ ९ ॥
तस्याश्रमे पुलस्त्योऽसौ शिष्यवृन्दैः समागतः । तं दृष्ट्वा नोत्थितो मानी राजर्षिर्न नतोऽभवत् ॥ १० ॥
शापं ददौ पुलस्त्योऽपि दैत्यो भव महाखल । ततस्तच्चरणोपांते पतितं शरणागतम् ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! एक दिन गोवर्धनके आस-पास बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्ण आँखमिचौनीका खेल खेलने लगे—जिसमें कोई चोर बनता है और कोई रक्षक ॥ १ ॥ वहाँ व्योमासुर नामक दैत्य आया। उस खेलमें कुछ लड़के भेड़ बनते थे और कोई चोर बनकर उन भेड़ोंको ले जाकर कहीं छिपाता था। व्योमासुरने भेड़ बने हुए बहुत-से गोप-बालकोंको बारी-बारीसे ले जाकर पर्वतकी कन्दरामें रक्खा और एक शिलासे उनका द्वार बंद कर दिया। वह मयासुरका महान् बलवान् पुत्र था। यह तो सचमुच चोर निकला, यह जानकर भगवान् मधुसूदनने उसे दोनों भुजाओंद्वारा पकड़ लिया और पृथ्वीपर दे मारा ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ उसी समय दैत्य मृत्युको प्राप्त हो गया और उसके शरीरसे निकला हुआ प्रकाशमान तेज दसों दिशाओंमें घूमकर श्रीकृष्णमें लीन हो गया ॥ ५ ॥ उस समय स्वर्गमें और पृथ्वीपर जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। देवता लोग परम आनन्दमें मग्न होकर फूल बरसाने लगे ॥ ६ ॥ बहुलाश्वने पूछा—हे मुने ! यह व्योम नामक असुर पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्यात्मा मनुष्य था, जिसने श्याम घनमें बिजलीकी भाँति श्रीकृष्णमें विलय प्राप्त किया ॥ ७ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! काशीमें भीमरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जो सदा दान-पुण्यमें लगे रहते थे। वे यज्ञकर्ता, दूसरोंको मान देनेवाले, धनुर्धर तथा विष्णुभक्तिपरायण थे ॥ ८ ॥ वे राज्यपर अपने पुत्रको बिठाकर स्वयं मलयाचलपर चले गये और वहाँ तपस्या आरम्भ करके एक लाख वर्षतक उसीमें लगे रहे ॥ ९ ॥ उनके आश्रममें एक समय महर्षि पुलस्त्य शिष्योंके साथ आये। उनको देखकर भी वे मानी राजर्षि न तो उठकर खड़े हुए और न उनके सामने प्रणत ही हुए ॥ १० ॥ तब पुलस्त्यने उन्हें शाप दे दिया—'ओ महादुष्ट भूपाल ! तू दैत्य हो जा ।' तदनन्तर

उवाच मुनिशार्दूलः पुलस्त्यो दीनवत्सलः । द्वापरान्ते माथुरे च पुण्ये श्रीव्रजमंडले ॥१२॥
यदुवंशपतेः साक्षाच्छ्रीकृष्णस्य भुजौजसा ।
ईप्सिता योगिभिर्मुक्तिर्भविष्यति न संशयः ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

सोऽयं भीमरथो राजा मयदैत्यसुतोऽभवत् । श्रीकृष्णभुजवेगेन मुक्तिं प्राप विदेहराट् ॥१४॥
एकदा गोपबालेषु दैत्योऽरिष्टो महाबलः । आगतो नादयन् खं गां तटाञ्छृङ्गैर्विदारयन् ॥१५॥
गोप्यो गोपा गोगणाश्च वीक्ष्य तं दुद्रुवुर्भयात् ।
भगवान्दैत्यहा देवो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥१६॥
गृहीत्वा तं तु शृङ्गेषु नोदयामास माधवः ।
सोऽपि तं नोदयामास श्रीकृष्णं योजनद्वयम् ॥१७॥
पुच्छे गृहीत्वा तं कृष्णो भ्रामयित्वा भुजौजसा । भूपृष्ठे पोथयामास कमण्डलुमिवार्भकः ॥१८॥
अरिष्टः पुनरुत्थाय क्रोधसंरक्तलोचनः । शृङ्गैश्च रोहितं शैलं समुत्पाट्य महाखलः ॥१९॥
गर्जयन्घनवद्वीरः कृष्णोपरि समाक्षिपत् ।
कृष्णः शैलं संगृहीत्वा तस्योपरि समाक्षिपत् ॥२०॥
शैलस्यापि प्रहारेण किंचिद्व्याकुलमानसः । भूमौ तताड शृङ्गाग्रान्निर्गतं तैर्जलं भुवः ॥२१॥
श्रीकृष्णस्तं च शृङ्गेषु गृहीत्वा भ्रामयन्मुहुः । भूपृष्ठे पोथयामास वातः पद्ममिवोद्धृतम् ॥२२॥
तदैव वृषरूपत्वं त्यक्त्वा विप्रवपुर्धरः । नत्वा श्रीकृष्णपादाब्जं प्राह गद्गदया गिरा ॥२३॥

द्विज उवाच

बृहस्पतेश्च शिष्योऽहं वरतंतुर्द्विजोत्तमः । बृहस्पतिसमीपे च पठितुं गतवानहम् ॥२४॥

राजा जब उनके चरणोंमें पड़कर शरणागत हो गये, तब दीनवत्सल मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यने उनसे कहा—'द्वापरके अन्तमें मथुरा जनपदके पवित्र व्रजमण्डलमें साक्षात् यदुवंशराज श्रीकृष्णके बाहुबलसे तुम्हें ऐसी मुक्ति प्राप्त होगी, जिसकी योगीलोग अभिलाषा रखते हैं—इसमें संशय नहीं है' ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे विदेहराज! वही यह राजा भीमरथ मय दैत्यका पुत्र होकर श्रीकृष्णके बाहुवेगसे मोक्षको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ एक दिन गोप-बालकोंके बीचमें महाबली दैत्य अरिष्ट आया। वह अपने सिंहनादसे पृथ्वी और आकाशको गुँजा रहा था और सींगोंसे पर्वतीय तटोंको विदीर्ण कर रहा था ॥ १५ ॥ उसे देखते ही गोपियाँ, गोप तथा गौओंके समुदाय भयसे इधर-उधर भागने लगे। दैत्योंके नाशक भगवान् श्रीकृष्णने उन सबको अभय करते हुए कहा—'डरो मत।' ॥ १६ ॥ माधवने उसके सींग पकड़ लिये और उसे पीछे ढकेल दिया। उस राक्षसने भी श्रीकृष्णको ढकेलकर दो योजन पीछे कर दिया ॥ १७ ॥ तब श्रीकृष्णने उसकी पूँछ पकड़ ली और बाहुवेगसे घुमाते हुए उसे उसी प्रकार पृथ्वीपर पटक दिया, जैसे छोटा बालक कमण्डलुको फेंक दे ॥ १८ ॥ अरिष्ट फिर उठा। क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो रहे थे। उस महादुष्ट वीरने सींगोंसे लाल पत्थर उखाड़कर मेघकी भाँति गर्जना करते हुए श्रीकृष्णके ऊपर फेंका। श्रीकृष्णने उस प्रस्तरको पकड़कर उलटे उसीपर दे मारा ॥ १९ ॥ २० ॥ उस शिलाखण्डके प्रहारसे वह मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। उसने अपने सींगोंके अग्रभागको पृथ्वीपर रगड़ना प्रारम्भ किया, इससे पृथ्वीके भीतरसे पानी निकल आया ॥ २१ ॥ तब श्रीकृष्णने उसके सींग पकड़कर बार-बार घुमाते हुए उसे पृथ्वीपर उसी प्रकार दे मारा, जैसे हवा कमलको उठाकर फेंक देती है ॥ २२ ॥ उसी समय वह वृषभका रूप त्यागकर ब्राह्मणशरीरधारी हो गया और श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके गद्गद वाणीमें बोला ॥ २३ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे भगवन्! मैं बृहस्पतिका शिष्य द्विजश्रेष्ठ वरतन्तु हूँ। मैं बृहस्पतिजीके समीप पढ़ने गया था ॥ २४ ॥

पादौ कृत्वा स्थितोऽभूवं पश्यतस्तस्य संमुखे । तदा रुषाऽऽह स मुनिर्वृषवत्त्वं स्थितः पुरः ॥२५॥
गुरुहेलनकृत्तस्मात्त्वं वृषो भव दुर्मते । तस्य शापाद्वृषोऽभूवं वङ्गदेशेषु माधव ॥२६॥
असुराणां प्रसङ्गेनासुरत्वं गतवानहम् । त्वत्प्रसादाद्विमुक्तोऽहं शापतोऽसुरभावतः ॥२७॥
श्रीकृष्णाय नमस्तुभ्यं वासुदेवाय ते नमः । प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमो नमः ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा साक्षाच्छिष्यो बृहस्पतेः । द्योतयन्भुवनं राजन्विमानेन दिवं ययौ ॥२९॥
इदं मया ते कथितं खण्डं माधुर्य्यमद्भुतम् । सर्वपापहरं पुण्यं कृष्णप्राप्तिकरं परम् ॥३०॥
कामदं पठतां शश्वत्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे व्योमासुरारिष्टासुरवधो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

उस समय उनकी ओर पाँव फैलाकर उनके सामने बैठ गया था। इससे वे मुनि रोषपूर्वक बोले—'तू मेरे आगे बैलकी भाँति बैठा है, इससे गुरुकी अवहेलना हुई है। अतः अरे दुर्बुद्धे! तू बैल हो जा।' हे माधव! उस शापसे मैं वङ्गदेशमें बैल हो गया ॥ २५ ।' २६ ॥ असुरोंके सङ्गमें रहनेसे मुझमें आसुरभाव आ गया था। अब आपके प्रसादसे मैं शाप और आसुरभावसे मुक्त हो गया ॥ २७ ॥ आप श्रीकृष्णको नमस्कार है। आप भगवान् वासुदेवको प्रणाम है। प्रणतजनोंके क्लेशका नाश करनेवाले आप गोविन्दको बारंबार नमस्कार है ॥ २८ ॥ श्री नारदजी कहते हैं—हे राजन्! यों कह और श्रीहरिको नमस्कार करके बृहस्पतिके साक्षात् शिष्य वरतन्तु भुवनको प्रकाशित करते हुए विमानसे दिव्यलोकको चले गये ॥ २९ ॥ इस प्रकार मैंने अद्भुत माधुर्यखण्डका तुमसे वर्णन किया, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यदायक तथा श्रीकृष्णकी प्राप्ति करनेवाला उत्तम साधन है ॥ ३० ॥ जो सदा इसका पाठ करते हैं, उनकी समस्त कामनाओंको यह देनेवाला है। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ३१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां माधुर्यखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

* इति चतुर्थो माधुर्यखण्डः समाप्तः *